राष्ट्रभाषा
का
शुद्ध रूप

राष्ट्रभाषा-पतंजलि
निगमानन्द परमहंस

प्रकाशक
शब्दलोक प्रकाशन
४७ लाजपत नगर
वाराणसी–२

प्रकाशक
शब्दलोक प्रकाशन
४७ लाजपत नगर
वाराणसी—२

*

प्रथम संस्करण
२ अक्तूबर, १९६७

*

कापीराइट
निगमानन्द परमहंस
मु० भगवानपुरा, पो० तलवंडी मलिक
वाया—भवानीगढ़, जि० पटियाला
(पंजाब)

*

मुद्रक
चन्द्रप्रकाश प्रेस
४७ लाजपत नगर
वाराणसी—२

मूल्य : ६.००

राष्ट्रभाषा का संस्कार एवं परिष्कार
करने में जिन्होंने अपना समस्त
जीवन समर्पित कर दिया, उन
आचार्यद्वयी
रामचन्द्र वर्म्मा
तथा
किशोरीदास वाजपेयी
को

विषय सूची

दो शब्द—पद्मश्री रामचन्द्र वर्म्मा

सारस्वत धर्म (भूमिका)

(क) भाग

१. सरस्वती श्रुति-महती…संस्कृत भाषा ही हिन्दी का अखण्ड स्रोत ३
२. आँखें मूँद न…हिन्दी में अशुद्ध शब्दों का प्रचलन १४
३. सोच-समझ तुम…डा० विन्त्सेन्त्स पोरीज के प्रश्नों का उत्तर २३
४. निज भाषा-उन्नति…राष्ट्रभाषा ही भावनात्मक एकता पैदा कर सकती है। ३३
५. नवीने भाजने लग्नः…आरम्भ से ही राष्ट्रभाषा का किया हुआ प्रचार स्थायी होगा। ३६
६. समानशील…श्री बाजपेयीजी के सिद्धान्तों से मतभेद ४०
७. नागरी लिपि ६६
८. वर्तनी की एक रूपता ६९
९. मानक हिन्दी व्याकरण पर एक दृष्टि ७४
१०. कुछ प्रश्न एवं उनके उत्तर ७९

(ख) भाग

१. एकः शब्दः…हिन्दी शब्द-विभाग १०३
२. मुखं व्याकरणं…व्याकरण की उपादेयता ११०
३. अज्ञात कुलशीलस्य…शब्दों के तीन भेद—रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़ ११७
४. लेख को पन्थ…विराम चिह्न, तथा कुछ शब्दों के अर्थ १२०
५. न केवला…सोदाहरण विभक्तियाँ १३१
६. यन्नव्येति…अव्यय (केवल, मात्र, भर, भी) १४२
७. सम्भवव्यभि…विशेषण १४५
८. ज्ञानंभारः…क्रियाओं का अर्थ १५०
९. वाक्यं स्यात्…वाक्य और उसके भेद १५६
१०. किमिह न…भाषा में स्वाभाविकता १६२
११. वाक्यापकर्षका:…दूषित वाक्यों का वर्गीकरण १६६

१२. वाच्या दोषाः...भाषा की छानबीन
१३. नमस्तुभ्यम्···हिन्दी के वेश में अंग्रेजी
१४. नहि ज्ञानेन···कुछ उच्च भूमिका पर से शब्दों के अर्थ

परिशिष्ट

(क) कहाँ कहाँ क्या
(ख) शुद्धि पत्र

———

दो शब्द

मेरे प्रिय मित्र श्री स्वामी निगमानन्द जी का प्रबल आग्रह है कि मैं उनकी इस पुस्तक के लिए 'दो शब्द' अवश्य लिखूँ। उन्होंने यह भी बतलाया कि इसके लिए उन्होंने विद्वद्वर पण्डित किशोरीदास जी वाजपेयी से निवेदन किया था; परन्तु श्री वाजपेयी जी न जाने क्यों ऐसा न कर सके। कुछ इस कारण से भी और कुछ अन्य कारणों से मैं भी इस कार्य के लिए सहमत नहीं हो सका था; परन्तु एक तो स्वामी जी के प्रबल आग्रह के सामने मुझे झुकना पड़ा और दूसरे एक अन्य कारण से भी मैं ये पंक्तियाँ लिखने के लिए विवश हुआ हूँ।

भाषा-संस्कार मेरे अधिकतर जीवन का सबसे प्रिय और सर्वोपरि व्यसन रहा है। इस क्षेत्र में जो काम होता है वह मुझे दूसरे बहुत से कामों की तुलना में अधिक आवश्यक, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है। ऐसे कामों से मैं भी यथा-साध्य लाभ उठाता हूँ; और समझता हूँ कि इससे भाषिक दृष्टि से हिन्दी का विशेष उपकार हो रहा है। यही कारण है कि स्वामी जी की इस कृति का मैं हार्दिक अभिनन्दन और स्वागत करता हूँ।

बीसियों वर्ष पहले मैंने अपनी 'अच्छी हिन्दी' नामक पुस्तक में पहला प्रकरण भाषा की प्रकृति के सम्बन्ध में ही रखा था। मैं बराबर यही चाहता हूँ कि हिन्दी भाषा की प्रकृति का वैज्ञानिक ढंग से और सर्वाङ्गपूर्ण अध्ययन हो और इस प्रकार हिन्दी का मानक रूप स्थिर होकर स्पष्ट रूप से हिन्दी जगत् के सामने आए। भाषा के क्षेत्र में इस समय जो धांधली मची हुई है, वह मेरी समझ में हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए तो घातक है ही आगे चलकर वह उसके राष्ट्रभाषा वाले सिंहासन पर आसीन होने में भी बाधक हो सकती है और यदि यह सब कुछ न भी हो तो भी ऐसी भाषा कभी आदरणीय, प्रतिष्ठित और सर्व-मान्य नहीं हो सकती जिसका मानक स्वरूप स्थिर न हो। श्रेष्ठ और सर्वग्राह्य होने के लिए भाषा का मानक रूप आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी होता है।

स्वामी निगमानन्द जी संस्कृत और विशेषतः उसके व्याकरण के बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। उनसे मेरा परिचय प्रायः बीस वर्ष पहले उस समय हुआ था जब वे काशी में संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने मेरी 'अच्छी हिन्दी' की बहुत कुछ कटु और तीव्र आलोचना की थी। इसी संबंध में वे

बीच-बीच में मेरे पास आते भी थे और उनसे हिन्दी भाषा तथा शब्दों के सम्बन्ध में चर्चा भी होती थी। मैंने देखा कि वे निष्पक्ष विचारशील तो हैं ही; साथ ही त्यागी होने के नाते बहुत ही निर्लिप्त तथा निस्पृह भी हैं। कुछ दिनों बाद मेरी 'हिन्दी प्रयोग' नामक पुस्तक देखकर वे हिन्दी की ओर विशेष-रूप से प्रवृत्त हुए; और तब से अब तक निरन्तर हिन्दी के प्रयोगों के सम्बन्ध में ही चिन्तन और मनन करते चले आ रहे हैं। पंजाब के एक देहाती साधु और संस्कृत के अच्छे विद्वान् का इस प्रकार हिन्दी की ओर प्रवृत्त होना कुछ कम प्रसन्नता और कम महत्त्व की बात नहीं। कोई दो वर्ष पहले जब वे एक बार काशी आए थे तभी उन्होंने मुझसे कहा था कि वे इस विषय पर एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहे हैं और उनका वह विचार आज इस पुस्तक के रूप में हिंदी जगत् के सामने उपस्थित है।

नेत्रों की ज्योति बहुत कुछ क्षीण हो जाने के कारण अब मैं स्वयं कुछ लिखने-पढ़ने में असमर्थ हो गया हूँ। इधर कई महीनों से बहुत अस्वस्थ रहने के कारण मैं पूरी पुस्तक सुन भी नहीं सका। फिर भी जो थोड़ा बहुत अंश मैंने सुना है, उसके आधार पर मैं इसे एक महत्त्वपूर्ण और विचारणीय कृति समझता हूँ। यह ठीक है कि न तो कभी कोई व्यक्ति सर्वज्ञ ही हो सकता है और न किसी की सब बातें सहज में सर्व-मान्य ही हो सकती हैं, इसलिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि सभी हिंदी प्रेमियों और भाषा-विद् विद्वानों को इस पुस्तक की बातों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। इसमें की जो बातें ठीक हों उन्हें तो सब लोग सहज में ग्राह्य कर ही लेंगे; परंतु जिन बातों के संबंध में किसी को कुछ आपत्ति या वक्तव्य हो, उन पर हिंदी जगत् को शान्त भाव से और सार ग्राहिता की दृष्टि से विचार करना चाहिए और संतोषजनक निर्णय तथा परिणाम पर पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। हिंदी की प्रकृति का ठीक रूप जानने और मानक रूप स्थिर करने का यही सबसे अच्छा मार्ग है।

२० सितम्बर '६७
४७ लाजपत नगर, बनारस।

रामचंद्र वर्मा

मंगला चरण

अरूपं मा मनामानं तथा वागाद्यगोचरम् ।
कृष्णेति द्वयक्षरं नाम नक्तं दिवा न मुञ्चति ॥

यद्यपि मैं अरूप हूँ, अनाम हूँ तथा वाणी, मन, बुद्धि का अविषय हूँ; तो भी यह दो अक्षरों का 'कृष्ण' नाम मेरा रात-दिन पीछा नहीं छोड़ता ।

समादृता मया शब्दाः शब्दैश्चाहं समादृतः ।
अन्योन्य-भावना-मूला सिद्धिः सर्वत्र जायते ॥

मैंने शब्दों का सम्मान किया है और शब्दों ने मेरा सम्मान किया । क्योंकि एक दूसरे की सहायता आपस की सिद्धि का प्रधान कारण है । (जैसे—तेनसिंह और हेनरी परस्पर की सहायता से एवरेस्ट के विजेता बन गए ।)

सारस्वत धर्म

"तं सन्तः श्रोतु मर्हन्ति सदसद्-व्यक्ति-हेतवः"

लोग प्राय: प्रसिद्ध लेखक की ही कृति को बाँचते हैं। किंतु प्रसिद्धि मिलती है समाचार-पत्रों में नाम प्रकाशित हो जाने पर एवं नाम प्रकाशित होता है ऐसी प्रसिद्धि मिल जाने पर। इसी का नाम 'अन्योन्याश्रयदोष' है। अन्योन्याश्रयदोष वाले कार्य सम्पन्न नहीं हुआ करते। ऐसी अवस्था में सन्त लोग आगे आते हैं तथा इस गुत्थी को सुलझाते हैं। सन्त लोग यह कभी नहीं देखते कि 'कौन लिख रहा है' वे देखते हैं कि 'क्या लिख रहा है'। अर्थात् वह लिखा हुआ ठीक है या नहीं ? जैसा भी होता है ठीक या बे-ठीक सन्त लोग उसे सत्यता एवं निर्भयता पूर्वक प्रगट कर देते हैं। इसीलिए मैं अपने विचार सन्त लोगों के समक्ष रख रहा हूँ।

पाणिनीय व्याकरण

भारतीय विद्वान् आचार्य पाणिनि को अज्ञान-तिमिरान्ध आँखों का शल्य चिकित्सक मानते हैं। इसीलिए वे सदा से उनके चरणों में अपना सिर झुकाते चले आ रहे हैं। विदेशी विद्वान् भी आचार्य पाणिनि के व्याकरण को प्रतिभा की चरम सीमा मानते हैं।

१—"पाणिनीय व्याकरण मानवीय मस्तिष्क की सब से बड़ी रचनाओं में से एक है।" (लेनिन ग्राड के प्रो० टी० शेर वात्सकी)

२—"पाणिनीय व्याकरण की शैली अतिशय प्रतिभापूर्ण है और नियम अत्यंत सतर्कता से बनाए गए हैं।" (कोल ब्रुक)

३—"संसार के व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी दूसरे देश ने आजतक सामने नहीं रखा।" (प्रो० मोनियर विलियम्स)

आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयी लिखते हैं कि **"यह सब उन हिन्दी व्याकरणों का परिणाम है, जो संस्कृत के आधार पर लिखे गए हैं।"**

(हिन्दी शब्दानुशासन, पृष्ठ २५२)

[उक्त हिन्दी व्याकरण में संस्कृत के जितने उद्धरण एवं प्रमाण दिए गए हैं उतने और किसी हिन्दी व्याकरण में नहीं दिए गए—लेखक]

"संस्कृत के वैयाकरणों ने यह कहीं भी नहीं लिखा कि यह लोप क्यों होता है" ('हिन्दी शब्द मीमांसा' पुष्ठ २७)।

['मुखसुखार्थम्' इसका उत्तर दिया है—लेखक]

"इस ग्रंथ के सिद्धान्त विज्ञानभित्ति पर हैं, जो कभी बदलेंगे नहीं।"

(हिन्दी शब्दानुशासन पृष्ठ ४४६)

हिन्दी शब्दानुशासन' के द्वितीय संस्करण के प्रकाशकीय में 'नागरी प्रचारिणी सभा 'वाराणसी' के प्रकाशन मन्त्री श्री सुधाकर जी पाण्डेय लिखते हैं कि **"संस्कृत के व्याकरणाचार्य सिद्ध और साध्य जैसे क्रिया भेद के अध्ययन-अध्यापन के लिए यदि इस ग्रन्थ का उपयोग करें तो निश्चय ही उन्हें भी इससे लाभ होगा"**।

मैं भी श्री वाजपेयीजी को व्याकरण का आचार्य मानता हूँ। मैंने— 'मेरा चिन्तन' नामक पुस्तिका में लिखा है कि—

"राष्ट्रभाषा के 'पाणिनि', शोधक शब्द-प्रमाद।
हुए आद्य आचार्यश्री महावीर प्रसाद॥
शब्द-चिन्तनामात्र है, जिनका रमा-विलास।
'कात्यायन' का रूप हैं, मान्य किशोरीदास॥
इसी मार्ग का पथिक यह, रहित दाम अरु नाम।
पद-आराधक 'पतंजलि' करता इन्हें प्रणाम॥"

परंतु आचार्य वाजपेयी जी ने संस्कृत का मार्ग छोड़कर जहाँ जहाँ नई उद्भावनाएँ की हैं, वहीं वहीं मेरा मतभेद है। [वर्तनी आदि विषयक उनके विचारों का मैं प्रबल समर्थक हूं।] पुस्तक में इस मतभेद का यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। यहाँ केवल उस नई उद्भावना के विषय में विचार करना है जो आज तक संस्कृत के पाणिनीयों को भी विदित नहीं थी। वह है 'सिद्ध और साध्य क्रियाओं का भेद'।

हिन्दीवालों के लिए यह नई उद्भावना हो सकती है। परंतु संस्कृत के विद्यार्थियों को इसमें कुछ भी नवीनता प्रतीत नहीं होती। कारण कि 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' के उत्तर कृदन्त प्रकरण में 'भावे ३।३।१६७।' सूत्र आता है। उसकी वृत्ति है—"सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातो र्घञ् स्यात्।" इस पर 'बाल मनोरमा' टीका है:—

"भावो=धात्वर्थः, स द्विविधः साध्यावस्थापन्नः सिद्धावस्थापन्नश्च, तत्र तिङ्वाच्यो लिंग-संख्याद्यन्वयाऽयोग्यः साध्यावस्थापन्नः, कृद्वाच्यस्तु 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते' लिंग-संख्याद्यन्वय-योग्यः सिद्धावस्थापन्नः

तस्मिन् घञ् स्यात्''। अर्थात्—धात्वर्थ को 'भाव' कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है—एक साध्यावस्थापन्न तथा दूसरा सिद्धावस्थापन्न। साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ तिङ् से वाच्य होता है एवं उसके साथ लिंग, संख्या, क्रिया और कारक का अन्वय नहीं होता। किंतु सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ लिंग, संख्या आदि का अन्वय होता है। कारण कि वह द्रव्य की भाँति प्रतीत होता है।

साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ

१—**लिंग** 'सुन्दरः सुन्दरी सुन्दरं 'पचति' अस्ति' इस प्रकार इसके साथ 'लिंग' का अन्वय नहीं हो सकता।

२—**संख्या** एकं 'पचति', द्वे 'पचती', त्रीणि 'पचतयः' इस प्रकार इसके साथ संख्या का अन्वय नहीं हो सकता।

३—**क्रिया** 'पचति' अस्ति, 'पचति' भविष्यति, 'पचति' आसीत्' इस प्रकार इसके साथ क्रिया का अन्वय नहीं हो सकता।

४—**कारक** 'पचतिः' 'पचतिं' 'पचत्या' अथवा 'पचतिना' आदि। इस प्रकार इसके साथ कारकों का अन्वय नहीं हो सकता।

[यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि 'भवतेरः' 'पचतेर्वः' आदि में लिंग-संख्या आदि का अन्वय कैसे हो गया? इसका उत्तर है कि साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ निर्देश में लिंग, संख्या आदि का अन्वय नहीं होता। यहाँ 'धात्वर्थ-निर्देश' बिलकुल ही नहीं; किंतु 'धातु-निर्देश' है ''इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे''= धातुओं का निर्देश करने के लिए 'इक्' 'श्तिप्' प्रत्ययों का प्रयोग होता है। 'पचतिः' आदि में लट्स्थानीय 'तिप्' प्रत्यय नहीं; किंतु कृदन्ती 'श्तिप्' प्रत्यय है।]

सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ

सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ का द्रव्य की भाँति प्रकाश होता है। अर्थात्—उसके साथ लिंग, संख्या, क्रिया और कारक का अन्वय होता है। जैसे—

१—**लिंग** 'रागः, त्यागः, पाको वा अस्ति' आदि।

२—**संख्या** 'पाकोऽस्ति, पाकौ स्तः, पाकाः सन्ति' आदि।

३—**क्रिया** 'पाकोऽस्ति, पाकः आसीत्, पाको भविष्यति' आदि।

४—**कारक** 'पाकः, पाकम्, पाकेन' आदि। इस प्रकार सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ लिंग, संख्या आदि का अन्वय होता है।

संस्कृत में विशेष्य की भाँति विशेषणों के साथ भी लिंग, वचन एवं विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे 'सुन्दर्यः स्त्रियः सन्ति' 'सुन्दराः पुरुषाः सन्ति' आदि। परंतु हिन्दी विशेषण के विभक्ति आदि को झाड़-पोंछ देती है और वाक्य को श्रवण-सुखद बना लेती है, जैसे –'सुन्दर स्त्रियाँ हैं' 'सुन्दर पुरुष हैं' आदि। संस्कृत में गणी क्रिया में लिंग भेद नहीं होता। किन्तु हिन्दी गणी क्रिया में भी लिंग भेद कर लेती है। जैसे—'राम जाता है' 'रमा पढ़ती है' आदि।

१—**लिंग**—'जाता है' 'पढ़ती है' में साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ है, न वह पुंलिग है और न वह स्त्रीलिंग। 'जाता' 'पढ़ती' आदि में जो स्त्री-पुं-भेद की प्रतीति हो रही है वह कर्तृगत है, धात्वर्थगत नहीं।

२—**संख्या**—'जाता है' एक है 'जाता है' अनेक हैं। इस प्रकार साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ संख्या का अन्वय नहीं होता। प्रत्यय में जो संख्या की प्रतीति हो रही है, वह कर्ता की निर्देशक है, साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ की निर्देशक नहीं।

३—**क्रिया**—'जाता है है' 'जाता है था' 'जाता है होगा' इस प्रकार साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ क्रिया का अन्वय नहीं होता।

४—**कारक**—'जाता है' 'जाता है को' 'जाता है ने' आदि। इस प्रकार साध्यावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ कारक का भी अन्वय नहीं होता।

सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ के साथ लिंग, संख्या आदि का अन्वय होता है। जैसे–

१—**लिंग**—'राग है' पु० 'मिठास है' स्त्री० आदि।

२—**संख्या**—'एक राग है' 'अनेक राग हैं' आदि।

३—**क्रिया**—'राग है' 'राग था' राग होगा' आदि।

४—**कारक**—'राग को सुना' 'राग ने मुग्ध कर दिया' आदि।

एक नई उद्भावना

सिद्ध और साध्य क्रिया के सम्बन्ध में आचार्य वाजपेयीजी ने एक नई उद्भावना की है जो भगवान् पाणिनि को भी विदित नहीं थी। [यह बात उन्होंने एक बार अपने श्री मुख से मुझसे कही थी]। वे लिखते हैं कि "एक स्पष्ट पद्धति भी हिन्दी ने सामने रखी। जब क्रिया की निष्पत्ति निश्चित या असंदिग्ध होती है, तो हिन्दी में 'सिद्ध' क्रिया–कृदन्त क्रिया'। 'राम जाता है' 'गोविन्द पढ़ता है' आदि में क्रिया निश्चित है। क्रिया के होने में कोई सन्देह नहीं, इसलिए 'सिद्ध' रूप, कृदन्त रूप 'जाता' 'जाती' 'पढ़ता'

'पढ़ती' आदि । 'है' तिङन्त सहायक क्रिया है और इससे क्रिया की निश्चिति और भी स्पष्ट हो जाती है । सो, वर्तमान काल में या स्थिति के सामान्य निरूपण में क्रिया का 'सिद्ध' रूप ही हिन्दी ने रखा है—'कृदन्त' । (हिन्दी-शब्दानुशासन' पृष्ठ ४०३) ।

अपने राम के मत में तो 'पढ़ता है' 'पढ़ती है' आदि एक एक ही क्रिया है । 'है' पृथक् सहायक क्रिया नहीं । सहायक क्रिया (धातु) मान लेने पर तो निम्नलिखित विप्रतिपत्तियां खड़ी हो जाती हैं । जैसे—

१—सहायक क्रिया के आगे कालवाचक प्रत्यय लगते हैं । यथा—'पढ़ रहा है, पढ़ रहा था, पढ़ रहा होगा । 'पढ़ चुका है, पढ़ चुका था, पढ़ चुका होगा', आदि । कई एक सहायक क्रियाएँ हों तो अन्तिम सहायक क्रिया के आगे कालवाची प्रत्यय लगेंगे । 'वह पढ़ता चला जा रहा है, वह पढ़ता चला जा रहा था, वह पढ़ता चला जा रहा होगा, आदि । परंतु 'पढ़ता है' में जो 'है' सहायक क्रिया मानी गई है; उसके आगे कालवाची प्रत्यय कभी नहीं आते । जैसे—'वह पढ़ता है है, वह पढ़ता है था, वह पढ़ता है होगा' आदि ।

२—जैसे सब धातुओं की क्रियार्थक सामान्य संज्ञाएँ बनती हैं; वैसे इस 'ह' या 'है' धातु की क्रियार्थक सामान्य संज्ञा नहीं बनती । खाना, पीना, लेना, देना, आदि क्रियार्थक सामान्य संज्ञाएँ हैं । परंतु 'हना' या 'हैना' क्रियार्थक सामान्य संज्ञा नहीं बनती ।

३—सहायक धातु का अन्य धातुओं के साथ प्रयोग करना वक्ता की अपनी इच्छा के अधीन होता है; चाहे सहायक क्रिया का वह प्रयोग करे चाहे न करे । जैसे—'वह पढ़ता है' या 'वह पढ़ रहा है' आदि । परंतु इस नई उद्भावित 'है' धातु की ऐसी स्थिति नहीं । इसका प्रयोग तो अवश्य करना ही पड़ता है । इसके प्रयोग के बिना तो काल का निर्णय ही नहीं होता । 'वह पढ़ता' साकांक्ष वाक्य है । कालवाची प्रत्ययों की आकांक्षा है । जो 'वह पढ़ता है' या 'वह पढ़ता था' आदि प्रत्ययों से शांत होती है ।

४—यदि 'हो' धातु का ही यह 'है' रूप है तो 'होता है' में 'हो' धातु का एक साथ दो बार प्रयोग कैसे हो गया ?

५—जितनी सहायक धातुएँ हैं, उन सबका स्वतंत्र रूप चलता है । जैसे 'रहता है' 'रहता था' रहता होगा' आदि । 'है है' 'है था' 'है होगा' आदि स्वतन्त्र रूप नहीं चलते । सहायक एक 'चुक' क्रिया का वर्तमान काल में प्रयोग नहीं होता । कारण कि यह भूतार्थ वाचक है ।

वास्तव में–'पढ़ता है' 'पढ़ती है' में 'है' सहायक क्रिया बिलकुल ही नहीं। यह तो वर्तमान काल का वाचक 'है' प्रत्यय है।

'यह पुस्तक है' 'यह घड़ा है' आदि वाक्यों में 'है' प्रत्यय कैसे हो सकता है? इसका उत्तर प्रस्तुत पुस्तक में ही आगे देखिए।

दूसरी बात—'वह पढ़ता है' आदि को आचार्य वाजपेयीजी ने निश्चित सिद्ध क्रियाएँ माना है। परंतु हम लोग पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन्हें अनिश्चित 'साध्य' क्रियाएँ ही मानते हैं। कारण कि 'पढ़ता है' 'पकाता है' आदि का वही वर्तमान क्षण अर्थ नहीं; किंतु वर्तमान क्रिया अर्थ है। अर्थात् क्रिया चालू है–चल रही है। किसी ने पूछा–'आपका लड़का आजकल क्या काम करता है?' उत्तर मिला–बी. ए. में पढ़ता है'। इस 'पढ़ता है' का अर्थ है बी. ए. श्रेणी में प्रविष्ट होने से लेकर बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण होने तक की क्रिया। बी. ए. में उत्तीर्ण होना निश्चित नहीं; किंतु अनिश्चित है। वह उत्तीर्ण हो भी सकता है और नहीं भी। अतः 'पढ़ता है' आदि अनिश्चित साध्य क्रियाएँ हैं।

'वह गाँव जाता है' का अर्थ है–अवधिभूत (जहाँ से चला है) स्थान से लेकर गन्तव्य गाँव की प्राप्ति तक की क्रिया। मार्ग में उसे वर्षा, ज्वर आदि गमन के प्रतिबन्धक प्राप्त हो सकते हैं। अतः 'जाता है' क्रिया अनिश्चित साध्य रूप है।

'वह पकाता है' का अर्थ है—चूल्हे पर बर्तन चढ़ाने से लेकर भोजन तैयार होने तक की क्रिया। जिसमें आग जलाना, चमचे से चलाना आदि तत्-सम्बधी सभी छोटी-मोटी क्रियाएँ आ जाती हैं। इसलिए लिखा है—"**अधि-श्रयणावश्रयणान्तादि-पूर्वापरीभूतो व्यापारकलापः पचतेरर्थः।**" वह 'पकाना' क्रिया अनिश्चित एवं साध्य है। उसमें अनेक अन्तराय (विघ्न) आ सकते हैं। जब 'पकाना' क्रिया सिद्ध हो गई—बनकर तैयार हो गई तब उसी का नाम 'पाक' पड़ गया जो निश्चित है, कृदन्त है, सिद्ध है एवं भावरूप है। यही तो "**कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते**" है।

एक और बात

हिन्दी की अन्य विशेषताओं में से एक विशेषता नागरी वर्णों के यथा-श्रुत उच्चारण की भी है। जैसा सुना जाता है, वैसा ही लिखा जाता है। जैसा लिखा जाता है वैसा ही बाँचा जाता है। 'अ' ही सुनाई देता है, 'अ' ही लिखा जाता है तथा 'अ' ही बाँचा जाता है। परंतु कुछ शब्द ऐसे चला लिए हैं या चल पड़े हैं जिनका उच्चारण भिन्न प्रकार का और लेखन भिन्न

प्रकार का है । जैसे—लिखते हैं 'गढ़' और बोलते हैं 'घड़' । लिखते हैं 'चिढ़' और बोलते हैं 'चिड़' । लिखते हैं 'ठंढक' और बोलते हैं 'ठंडक' । लिखते हैं 'करता है' और बोलते हैं 'कर्ता' है' । लिखते हैं 'रखा है' और बोलते हैं 'रक्खा' है ।

१—संस्कृत की 'घट' धातु से 'घड़ना' बनता है । 'घड़ना' इसका उच्चारण होता है । महात्मा कबीरजी का कहना है कि—

"गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, घड़ घड़ काढै खोट ।
अन्दर बाँह सहार दै, बाहर बाहै चोट ।।"

चल पड़ा है **'गढ़ गढ़ काढै खोट'** । क्या किले किले में जाकर उनमें का खोट निकाला जाता है ? हिन्दी ऐसा सन्देह नहीं सहन करती । (विशेष इसी पुस्तक में आगे देखिए) ।

२—'चिड़' को आजकल 'चिढ़' लिखा जाता है और उच्चारण होता है 'चिड़' ही । कारण कि गरम घी या गरम तेल में पानी डालिए 'चिड़ चिड़' आवाज निकलेगी । गीली या सूखी लड़की फाड़िए 'चिड़-चिड़' की आवाज आएगी । (विशेष देखिए आगे इसी पुस्तक में)

३—लिखते हैं 'ठंढक' और बोलते हैं 'ठंडक' । वर्गों के द्वितीय वर्ण के बाद (किसी स्वर का व्यवधान होने पर भी) वर्गों का चौथा वर्ण कभी नहीं आता । कारण कि उसका उच्चारण करने में विशेष बल लगाना पड़ता है । इसलिए वर्गों के दूसरे और चौथे वर्ण 'महाप्राण' कहलाते हैं । मैंने सारा 'हिन्दी प्रामाणिक कोश, छान मारा; परंतु मुझे ऐसा एक भी शब्द नहीं मिला, जिसमें 'ठ' के बाद 'ढ', 'ख' के बाद 'घ', 'छ' के बाद 'झ', 'थ' के बाद 'ध' तथा 'फ' के बाद 'भ' आता हो । हां, एक स्थान पर 'ठुड्ढी' लिखा अवश्य मिला, किंतु वहीं दूसरे स्थान पर 'ठुड्डी' लिखा हुआ है । कृपया अब 'ठंडक' लिखने पर ही दिल में 'ठंडक' पड़ेगी ।

४—'करता है' लिखते हैं और 'कर्ता है' बोलते हैं । संस्कृत में 'कृ' धातु के 'लुट्' लकार के 'कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः' रूप बनते हैं तथा 'कृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने पर भी 'कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः' रूप बनते हैं । हिन्दी ने भी संस्कृत का 'कर्तृ' प्रातिपदिक न लेकर 'कर्ता' पद ही गृहीत किया है (यह सूझ आचार्य वाजपेयीजी की है जो सर्वथा अकाट्य है) । जैसे हिन्द वालों से गणित सीखने के कारण अरबवालों ने अंकों का नाम 'हिन्दसा' रखकर हिन्दवालों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की है, वैसे ही हिन्दी ने भी अपने 'करता है' का 'कर्ता है' उच्चारण करके संस्कृत से प्राप्त 'ब्रह्मदाय' का स्मरण कराया है ।

५--लिखते हैं 'वहाँ मैंने एक ग्राम रखा हैं', और बोलते हैं—'वहाँ मैंने एक ग्राम रक्खा है'। हिन्दी में द्वित्व वर्णों वाली एक भी क्रिया नहीं। अतः 'रक्खता है' नहीं हो सकता। दूसरे, हिन्दी की प्रकृति प्रथम संयुक्त वर्ण को 'ग्रा' कर लेने की है। जैसे—हत्थ का हाथ, कन्न का कान, लक्ख लाख आदि आदि। वैसे ही 'रक्ख' का 'राख' बनाना पड़ेगा। परंतु ऐसा करने पर संदेह हो सकता है। हिन्दी संदेह को सहन नहीं करती। इसलिए 'रक्खा' न लिखकर 'रखा' ही लिखा जाता है। यदि आदि संयुक्त वर्ण को 'ग्रा' कर दें तो 'रक्ख दी' के स्थान पर 'राख दी' लिखा जाएगा। 'वहां मैंने कड़ाही राख दी'; में संदेह हो जाएगा—'एक कड़ाही रख दी ?' या 'एक कड़ाही राख (भस्म) दी ? इसलिए हिन्दी 'रक्खा' न लिखकर 'रखा' ही लिखेगी।

परसर्ग या विभक्ति

'वैज्ञानिक परिभाषा कोश' के सम्पादक डा० बदरीनाथ कपूर ने कहा कि आप 'विभक्ति के स्थान पर 'परसर्ग' लिखें। यह परसर्ग शब्द 'उपसर्ग' शब्द की देखा-देखी घड़ लिया गया मालूम पड़ता है। कारण कि 'उपसर्ग' का पूर्व प्रयोग होता है और 'विभक्ति' का पर प्रयोग। यदि 'उपसर्ग' का नाम 'पूर्वसर्ग' होता तो 'विभक्ति' का नाम भी भ्रान्ति से 'परसर्ग' कोई रख सकता था। 'विभक्ति' का 'परसर्ग' नामकरण करनेवालों का ध्यान 'उपसर्ग' शब्द के आधे हिस्से (उप) पर तो गया। परंतु दूसरे हिस्से (सर्ग) शब्द पर नहीं गया। यदि उनका ध्यान 'सर्ग' शब्द पर भी चला जाता तो यह भूल न हो पाती। 'सर्ग' शब्द का अर्थ है सृष्टि करना। अर्थात्—उपसर्ग =धातु के उप=पास में बैठ कर उसका दूसरा नया अर्थ बना डालनेवाला। जैसे 'हृ' धातु का अर्थ है 'चुराना'। 'पश्यतोहरः'=जो सबके देखते-देखते चुरा ले। 'प्र' उपसर्ग लगा तो 'प्रहार'=मारना, 'आ' उपसर्ग लगा तो 'आहार'=खाना, 'सं' उपसर्ग लगा तो 'संहार' = मारना, 'वि' उपसर्ग लगा तो 'विहार' = खेलना, तथा 'परि' उपसर्ग लगा तो 'परिहार' = दूर करना आदि अर्थों का सर्ग = सृष्टि हो गई। इसीलिए प्र, परा आदि 'उपसर्ग' कहलाते हैं।

विभक्तियां पास में रहकर किसी दूसरे नए अर्थ की सृष्टि नहीं करतीं; किंतु उसी शब्द के कर्ता, कर्म, करण, आदि कारकों का विभाग करती हैं। विभक्तिः = विभजनं, विभंजनं विभागो वा। प्रत्ययों का नाम भी 'विभक्ति' है। क्योंकि प्रत्यय भी कर्ता, कर्म, करण आदि की प्रतीति कराते हैं। इतर प्रान्तीय लोग भी 'विभक्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'परसर्ग' शब्द का

नहीं। इन्हीं कारणों से हमने 'परसर्ग' शब्द को इस पुस्तक में स्थान नहीं दिया।

आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयी ने इस 'परसर्ग' शब्द के संबंध में लिखा है कि—

'कुछ लोग हिंदी की 'ने' 'को' आदि विभक्तियों को 'परसर्ग' कहते हैं ! यह एक नया अड़ंगा, नई झंझट ! 'विभक्ति' शब्द हमें परम्परा से प्राप्त है, प्रसिद्ध है। उसकी जगह 'परसर्ग' चलाना किस काम का ? क्या लाभ ?

कहते हैं—ये 'को' 'ने' आदि विभक्तियां नहीं; 'परसर्ग' हैं; क्योंकि किन्हीं शब्दों के ये घिसे हुए रूप हैं—मूलतः विभक्ति नहीं। परंतु संस्कृत की विभक्तियां भी तो किन्हीं शब्दों के घिसे हुए रूप कही जा सकती हैं न ? और मान लीजिए, संस्कृत की विभक्तियां स्वतः उत्पन्न हैं और हिन्दी की 'ने' आदि किन्हीं शब्दों के रूपान्तर हैं, पर इससे नामभेद कैसे ? काम एक, नाम एक। कहते हैं, 'को' आदि का प्रयोग प्रकृति से सटाकर नहीं होता; इसलिए ये 'परसर्ग' हैं। क्या यह नहीं कह सकते कि हिन्दी में विभक्तियों के प्रयोग सटाकर नहीं, हटाकर होते हैं ? साहब कहीं चम्मच से खाता है, तो उसके खाने का नाम ही बदल दिया जाएगा क्या ? या, यह कहा जाएगा कि हम लोग हाथ से खाते हैं और दूसरे लोग काँटे-चम्मच से खाते हैं ?

बड़ी विचित्र बात है ! व्यर्थ की बातें हैं। ऐसी ही बेकार उथली बातों से पोथे बनाकर 'भाषा विज्ञान' नाम रखा गया है !'' (हिन्दी शब्दानुशासन पृष्ठ १७१)।

आचार्य वाजपेयी जी के शब्दों में—''मतभेद रखने में नहीं; उसे प्रकट करने में सारस्वत महत्त्व है'' तथा ''अपनी गलती को गलती मान लेना ही तो सारस्वत-धर्म है। इसलिए द्विवेदी जी इस युग के हिन्दी के एकमात्र आचार्य माने गए हैं'' ('हिन्दी शब्द मीमांसा' की भूमिका)।

यह 'राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप' 'आदर्श हिन्दी' पुस्तक का ही नामान्तर है जो सन् १९५० में प्रकाशित हुई थी। उसी में (क) भाग, 'नमस्तुभ्यम्' तथा नहि ज्ञानेन सदृशम्, जोड़कर 'सारस्वत धर्म' का पालन किया गया है तथा कनखल (हरिद्वार) में सम्पन्न हुए पद्मश्री श्रीरामचन्द्र जी वर्मा के अभिनन्दन समारोह पर सर्वश्री श्रीप्रकाशजी, श्री क्षेत्रेशचन्द्रजी चट्टोपाध्याय, आचार्य श्री वियोगी हरिजी, कविवर बच्चनजी आदि विख्यात विद्वानों

के समक्ष अपने कहे हुए उन शब्दों का भी निर्वाह किया गया है। वे शब्द हैं—

१—श्री वाजपेयीजी—"मैं सारे हिन्दी जगत् का गुरु हूँ।"

२—श्रीवर्माजी—'मैं तो हिन्दी जगत् का एक सेवक हूँ'।

३—मैं—'श्रीवर्माजी तथा वाजपेयीजी के बनाए हुए पुल पर से मैं परले पार चला गया हूँ'।" अस्तु !

यदि हिन्दी जगत् ने इन विचारों का सही मूल्यांकन किया तो हम बहुत शीघ्र ही 'राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप' का दूसरा खण्ड भी हिन्दी जगत् की सेवा में—प्रस्तुत कर सकते हैं। कारण कि हम अभेदवादी हैं—जगत् और जगदीश्वर में भेद नहीं समझते। यदि हिन्दी जगत् ने इन विचारों के प्रति उदासीनता दिखाई तो हम पहले से ही उदासीन हैं।

"किन्तया चिन्तया चिन्तयामो हरिम्"।

× × ×

पद्म श्री विभूषित आचार्य श्रीरामचन्द्रजी वर्मा ने अस्वस्थ होते हुए भी तथा इसमें अपने व्याकरण की आलोचना होने पर भी जो इस पुस्तक के लिए 'दो शब्द' लिखने की अनुकरणीय उदारता दिखाई है। एतदर्थ मेरे जैसे एक अप्रसिद्ध व्यक्ति का उनके विषय में कुछ लिख देना क्या मूल्य रखता है? कारण कि जो हिन्दी के प्रसिद्ध कोशकार तथा भाषा-परिष्कारक माने जाते हैं। भाषा-शुद्धि जिनका जीवन व्रत है। जिनके सम्बन्ध में आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयी लिखते हैं—"वर्माजी के साथ जिसका नाम लिया जा सके ऐसा कोई हिन्दी शब्दों का अर्थ-विवेचक सामने नहीं।" "शब्द-ब्रह्म का जो अनुग्रह वर्माजी ने पाया है वह हिन्दी जगत् में किसी विरले को ही मिला होगा"—आचार्य श्री वियोगी हरि जी। डा० शिवनाथ जी लिखते हैं—"आप और आपके ग्रन्थ शिक्षकों के भी शिक्षक हैं।...कितने ऐसे हैं जिनका बल-बूता शब्द शास्त्र के क्षेत्र में आप जैसा है? कोई तो नहीं दिखाई पड़ता।" भारतीय जनगणना में प्रथम गणनीय गणतन्त्र के तृतीय राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसेन जी ने लिखा है—"श्री वर्माजी ने अपने गहरे हिन्दी ज्ञान का उपयोग तथा कठिन (परि) श्रम किया है। इसके द्वारा आपने हिन्दी की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है। इसके लिए हिन्दी जगत् आपका आभारी होगा।"

मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह सब आपके 'हिन्दी प्रयोग' का ही चमत्कार है जिसने मुझे संस्कृत के क्षेत्र में से खींचकर हिन्दी के क्षेत्र में ला खड़ा किया।

किसी प्रसिद्ध विद्वान् के दो-चार शब्द क्या-से-क्या करवा डालते हैं—यह बात इस पुस्तक से सिद्ध हो जाती है। मान्यवर आचार्य श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी के प्रेरक पत्रों ने मुझसे यह 'राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप' लिखवा ही डाला। आपकी इस हार्दिक प्रेरणा के लिए मैं आपका अत्यन्त आभार मानता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे लिए भी आप इसी प्रकार प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देते रहेंगे।

अहमदाबाद (गुजरात) के निवासी चाय के व्यापारी श्रीयुत सोमाभाई लालभाई पटेल उन सद्गृहस्थों में से हैं जो पहले किसी बात को सुनते हैं, समझते हैं, फिर तत्काल उस पर आचरण करते हैं।

एक ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनका दिल जबान पर रहता है और दूसरे ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनकी जबान दिल में रहती है। श्रीयुत सोमाभाई पटेल इस दूसरी श्रेणी में आते हैं। मेरा वर्षों से सम्पर्क है। पर कभी इन्होंने अपना दिल मेरे पास नहीं खोला; किंतु चुपचाप सुनते चले जाते हैं। इनके एक सखा हैं जितेन्द्र कम्पनी वाले श्रीयुत बाबुभाई जैन। वे ही इनका मुख बनते हैं।

इन्होंने पुस्तक छपाने के लिए मुझे बनारस भेज ही दिया। जब सोमाभाई पटेल अपना दिल मेरे सामने नहीं खोलते तब मैं भी आशीर्वाद देने के लिए अपनी जबान क्यों खोलूँ?

मूक आशीर्वाद

पुस्तक का इस आकार-प्रकार में छपकर आपके हाथों में आ जाना हमारे प्रिय डा० बदरीनाथ कपूर के अनथक परिश्रम का फल है। कपूरजी को धन्यवाद देना तो अपनी पीठ स्वयं ठोकने के समान होगा तथा न ही मुझे धन्यवाद देने की आदत है। फिर भी यदि बरबस मुँह में से धन्यवाद निकल ही जाए तो मैं क्या करूँ?

'श्री साधुबेला-आश्रम' २५९ भदैनी, वाराणसी का भी मैं सादर स्मरण करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिसने मेरी सब प्रकार की सुविधा का ध्यान रखा। वास्तव में हमारे समाज में 'श्री साधुबेला' ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पढ़े-लिखे तथा टकसाली साधु वर्षों सम्मानपूर्वक रह सकते हैं, रहते हैं और रह चुके हैं।

जन्माष्टमी संवत् २०२४
भगवानपुरा, डा० तलवण्डी मलिक
जि० पटियाला, पंजाब

निगमानन्द परमहंस

जिन खोजा तिन पाइयाँ

१

सरस्वती श्रुति महती महीयताम्

कोई भी भाषा इसलिए उन्नत, श्रेष्ठ एवं महिमाशाली नहीं मानी जाती कि वह अमुक राष्ट्र की है, अमुक देश की है अथवा अमुक जाति की है। उसमें देखना होता है कि उस भाषा का साहित्य कैसा है? उस साहित्य के लेखकों के विचार कैसे हैं? उन विचारकों का आचार कैसा है? वे संसार को कैसा देखना चाहते हैं? इस दृष्टि से संस्कृत भाषा बहुत ही उन्नत, बहुत ही श्रेष्ठ, बहुत ही महिमाशाली एवं वैज्ञानिक परिपूर्ण भाषा है। महाकवि कालिदास इस ओर संकेत करते हैं कि वह "श्रुति-महती" है। अर्थात् उसमें वेदों जैसे सर्व-पुरातन पवित्रतम महान् ग्रन्थ हैं। उनके द्रष्टा महान् विचारक, परम तपस्वी, कथनी और करनी की एकता के धनी, अनेकता में एकता देखनेवाले, भेद में अभेद दिखानेवाले, आदमी को आदमी समझानेवाले क्रान्तदर्शी महामहिम महर्षि महाभाग हैं।

पुरातनता इतनी है कि जब अखिल विश्व के अन्यान्य खण्डों में रहनेवाले लोग नग्न या अर्धनग्न अवस्था में जंगली जन्तुओं की भाँति घूमा करते थे तथा हाथ आदि के संदिग्ध संकेतों से अपने पेट की पेटी भरा करते थे, तब इस भारत की भव्य भूमि पर दिव्य वेदवाणी का चारो ओर उद्घोष सुनाई पड़ता था—'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः'* अखिल विश्व एक विशाल परिवार है। इसका सदस्य दूसरे सदस्य की भलाई की बात सोचे और वैसा ही आचरण करे। अत्यन्त प्राचीन इस नित्यनवीन वेदवाणी का महत्त्व आज भी ज्यों-का-त्यों अक्षुण्ण बना हुआ है। विश्व के महान् विचारक एवं विद्वान् लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि आज का संसार

---

* ऋग्वेद ६।७५।१४

बारूद के भण्डार पर खड़ा है। उसके सम्मुख अब दो ही मार्ग प्रस्तुत हैं। एक तो सर्व-प्राणी-प्यार और दूसरा सर्व-प्राणी-संहार। परन्तु सर्व-प्राणी-प्यार ही सह-अस्तित्व की सही और सरल सरणी है। जन-जन के प्राणों की पुकार है कि इन जहरीले जघन्य अस्त्र-शस्त्रों को जल्द ही ध्वस्त कर दिया जाए। नहीं तो ये हमें ध्वस्त कर डालेंगे एवं सदा के लिए मानवता का अस्त हो जाएगा।

विश्व की कोई भी वस्तु अच्छी और बुरी नहीं होती; किन्तु उसका सदुपयोग और दुरुपयोग ही अच्छा और बुरा होता है। वर्तमान विज्ञान ने विश्व की देशकृत दूरी तो दूर कर डाली—अनन्त विशालतावाला माने जाने-वाला विश्व एक विशाल घर-मात्र ही रह गया। विज्ञान ने पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ना सिखाया और जलचरों की भाँति पानी को चीरना सिखाया। परन्तु पृथ्वी माता की गोद में एक भाई दूसरे भाई के साथ कैसे बैठे? यह विज्ञान ने नहीं सिखाया। वेद भगवान् कहता है :—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसार मुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा, वाचं वदत भद्रया।*

अर्थात्—भाई से भाई द्वेष मत करे, तथा बहन से बहन द्वेष मत करे। तुम सब एकमत एवं एकव्रत होकर आपस में भद्रवाणी का प्रयोग करो।

यही कारण है कि आज तक भारतवर्ष अपने पूर्वजों के चरण-चिह्नों पर सहर्ष चलता चला आ रहा है। इसने कभी किसी अन्य देश पर शस्त्र-प्रहार नहीं किया, किन्तु शास्त्र-प्रहार किया है। बाण-प्रहार नहीं किया, किन्तु वाणी-प्रहार किया है। इसने दूसरों के मानस तो मुट्ठी में किए, किन्तु मणि-माणिक्य मुट्ठी में नहीं किए। दिल तो लूटे, पर दौलत नहीं लूटी। उनके जीवन में तो घुस गए, किन्तु उनकी जमीन में नहीं घुसे। ऐसी है उनके सत्यमय, सन्तोषमय एवं तपोमय जीवन की झाँकी। इस गए-गुजरे जमाने में भी जेल में बी० ए० पास तो सैकड़ों मिल जाएँगे पर 'शास्त्री' पास एक भी नहीं मिलेगा।

संस्कृत भाषा के विचारकों ने काव्य-कोष, सांख्य-योग, वेदान्त-व्याकरण आदि विषयों पर सूक्ष्म एवं गम्भीर चिन्तन किया है। नई-नई उद्भावनाएँ की हैं। संस्कृत का शब्द-भण्डार द्रौपदी का अक्षय-पात्र है। वर्तमान विज्ञान की शब्दावली इसमें नहीं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संस्कृत के विचारकों

---

* अथर्व वेद—३।३०।३

ने विज्ञान सम्बन्धी विचार ही नहीं किया। विचार तो अवश्य किया है। परन्तु वह विचार जिन ग्रन्थों में उपनिबद्ध था वे ग्रन्थ लुप्त हो गए हैं। हमारी इस कल्पना का आधार ज्योतिष शास्त्र है। क्या हमारे पूर्वजों ने बिना ही विज्ञान के धरती की धूल में बैठे-बैठे आकाश के फूल गिन डाले? ग्रहों की गिनती कर डाली? यदि 'हाँ' तो यह भी मानना पड़ेगा कि उनके पास विज्ञान से बड़ी कोई-न-कोई निरापद वस्तु अवश्य रही होगी।

इस पुस्तक में हम शब्द-शुद्धि विषयक विचार प्रस्तुत करेंगे। उसके लिए आपको चोपड़ी पर कम और खोपड़ी पर अधिक जोर देना होगा। पुस्तक पर कम और मस्तक पर अधिक निर्भर होना होगा।

(क)

काशी में पण्डित लोग 'चत्वारश्च यमाः स्मृताः' यम चार होते हैं—ऐसा वर्षों से पढ़ते-पढ़ाते चले आ रहे थे। हमारे गुरुदेव पूज्य तिवाड़ी जी ने [महा-वैयाकरण पण्डित-प्रकाण्ड हरनारायण त्रिवेदी ने] पढ़ाना आरम्भ किया 'यम बीस होते हैं।' अब क्या था, पाण्डित्य की केन्द्र काशी में तहलका मच गया। कई-कई प्रकार की आवाजें आने लगीं। कोई कहता—अजी, आज-कल तो काशी में बीस यम पढ़ाए जाने लगे हैं। कोई कहता कि यदि कोई बीस यम सिद्ध करके दिखा दे तो हम गंगा में डूब मरें। पूज्य तिवाड़ी जी ने पण्डितों की सभा में बीस यम सिद्ध करके दिखा दिए और बताया कि 'चत्वारश्च यमाः स्मृताः' का अर्थ है प्रत्येक वर्ग के—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के—चार-चार वर्ण 'यम' कहलाते हैं जो मिलकर बीस होते हैं। उनमें से कोई पंडित तो गंगा में डूबकर नहीं मरा; परन्तु उन सबका घमंड गंगा में अवश्य डूब गया। उसी दिन से काशी में 'बीस यम' पढ़ाए जाने लगे।

(ख)

पाणिनीय व्याकरण में आता है कि यदि 'अभिनिविशश्च' अर्थात् अभि, नि, उपसर्ग 'विश्' धातु के पूर्व हों तो आधार 'कर्म' बन जाता है एवं कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—'अभिनिविशते सन्मार्गम्'=वह सन्मार्ग पर चलने लगा है। वररुचि कात्यायन को एक ऐसा प्रयोग मिल गया, जहाँ यह नियम लागू नहीं होता। वह प्रयोग है—'पापेऽभिनिवेशः'=पाप के मार्ग पर चला गया। इस प्रयोग को शुद्ध ठहराने के लिए कात्यायन ने नई वार्तिक बनाई

'क्वचिन्नेति' अर्थात् कहीं कहीं अभिनिविशश्च' सूत्र नहीं प्रवृत्त होता। परन्तु पूज्य तिवाड़ीजी ने सुझाया कि इस वार्तिक की आवश्यकता ही नहीं।' कारण कि 'पापेऽभिनिवेश:' में तो 'अभि' उपसर्ग' के अकार का पूर्वरूप हो गया। अत: उस सूत्र की प्रवृत्ति ही नहीं होती।

(ग)

'त्वं क्वासि हे सुभ्रु ! ' इति प्रमाद:। हमने सुन रखा था कि 'सुभ्रु ' में पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'सुभ्रू' ऐसा दीर्घ ऊकार होना चाहिए। हुआ क्यों नहीं ? उत्तर मिला—यह कवि का प्रमाद है, भूल है। पूज्य तिवाड़ी जी ने सुझाया कि कवि का प्रमाद नहीं, किन्तु कवि ने वियोगी नायक का प्रमाद व्यक्त किया है कि उसे वियोग में ह्रस्व-दीर्घ का भी ज्ञान नहीं रहा।

(घ)

संस्कृत में एक सम्प्रदान चतुर्थी होती है और दूसरी 'कर्मणा यमभिप्रैति' चतुर्थी। पहली का उदाहरण है—'तस्मै अन्नं ददाति=उसके लिए अन्न देता है तथा दूसरी का उदाहरण है—'पत्ये शेते'=पति के लिए (पत्नी) सोती है। पूज्य तिवाड़ी जी ने सुझाया कि यदि 'पत्ये शेते' का यही अर्थ है तो 'सम्प्रदाने चतुर्थी' सूत्र से ही चतुर्थी विभक्ति हो जाएगी, फिर 'कर्मणा यमभिप्रैति' चतुर्थी की क्या आवश्यकता है ? उन्होंने बताया कि जब पति को काम करते-करते बहुत रात हो गई तब पत्नी सोने लगी। उसके मन में था कि मेरे सोने को देखकर पति को भी सोने का ध्यान आ जाएगा। वैसा ही हुआ। यही 'कर्मणा यमभिप्रैति' चतुर्थी है।

जब बच्चा अन्न नहीं खाता तब माँ खाने का अभिनय करती है और मुख से कहती है कि अच्छा, यदि तू नहीं खाता तो मैं खा लेती हूँ। तब बच्चा खाने के लिए दौड़कर आता है। यही 'कर्मणा यमभिप्रैति' चतुर्थी हुई। 'माँ बच्चे के लिए खाती है' यह उदाहरण समझिए।

(च)

'नाऽऽत्मनि एकवचनं प्रयुञ्जीत'=अपने लिए एक वचन का प्रयोग मत करो। 'वयं ब्रूम:' यह आदरार्थ बहुवचन है। इसका मतलब मैं यही समझता था कि अपने आपकी अवमानना नहीं करनी चाहिए—सदा अपना आदर करना चाहिए। विनोबा जी ने अपने भाषण में कहा कि 'हम ऐसा

कहते हैं।' भाषण के बाद मैंने उनसे पूछा। आप तो एक हैं 'मैं कहता हूँ' ऐसा बोलना चाहिए। 'हम कहते हैं' आप ऐसा क्यों बोलते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि 'मैं कहता हूँ' बोलने में अभिमान प्रगट होता है। 'हम' का अर्थ है—हम सब सर्वोदयवाले। तब कहीं जाकर 'आदरार्थ' का अर्थ अवगत हुआ कि अपने आपको आदर देने के लिए नहीं; किन्तु दूसरों को आदर देने के लिए बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए।

(छ)

दर्शनों के एक प्रकाण्ड संन्यासी विद्वान् प्रवचन कर रहे थे। मैं भी वहाँ चला गया। उन्होंने व्यासपीठ पर बैठते ही मंगलाचरण के श्लोक का उच्चारण किया—

"शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्य-कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।"

प्रवचन के बाद मैंने उस प्रवक्ता महाभाग से कहा कि एक बार वही श्लोक फिर सुनाइए। उन्होंने श्लोक सुना दिया। मैंने कहा—यह श्लोक गलत है, ठीक नहीं। वे बोले क्या गलती है इसमें? मैंने उत्तर दिया कि इस श्लोक का यह अर्थ है—'शंकर के अवतार श्री शंकराचार्य ने सूत्र बनाए और विष्णु के अवतार श्री वेदव्यास जी ने उन पर भाष्य लिखा। उन भगवत्स्वरूप दोनो महापुरुषों को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।' परन्तु सूत्र वेदव्यास जी ने बनाएँ हैं और उन पर भाष्य शंकराचार्य जी ने लिखा है। श्लोक में इससे बिलकुल उल्टा है। 'सूत्रभाष्य-कृतौ' है। यदि 'भाष्यसूत्र कृतौ' ऐसा बना देते हैं तो यह दोष दूर हो जाएगा। परन्तु दूसरा दोष सामने आ जाएगा। पहले सूत्र होता है फिर उस पर भाष्य किया जाता है। पहले भीत होती है फिर उस पर चित्र लिखा जाता है। इस श्लोक में व्याकरण की दृष्टि से कोई त्रुटि नहीं; परन्तु साहित्यिक दृष्टि से अवश्य त्रुटि है।

(ज)

गीता के माहात्म्य में एक श्लोक आता है। वह श्लोक भास कवि का है। 'उरुभंग' नाटक में से लिया गया है। वह श्लोक यह है—

भीष्म-द्रोण-तटा जयद्रथ-जला, गान्धार-नीलोत्पला।
शल्यग्राहवती, कृपेन वहनी, कर्णेन वेलाकुला॥
अश्वत्थाम - विकर्ण - घोरमकरा दुर्योधनाऽऽवर्तिनी।
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तकः केशवः॥

यह एक युद्धरूपी नदी का वर्णन है। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य इसके दो किनारे हैं। जयद्रथ जल है, गान्धार नील कमल है। शल्य ग्राह है। कृपाचार्य इसका प्रवाह है और अङ्गराज कर्ण इसकी वेला है। अश्वत्थामा, विकर्ण आदि इसमें भयंकर मकर हैं। दुर्योधन आवर्त (जल-चक्र) है। कर्णधार केशव की सहायता से पाण्डव इस नदी को पार कर गए।

एक पढ़े-लिखे महात्मा ने मुझसे पूछा—निगम! इस श्लोक का क्या अर्थ है? मैंने उत्तर दिया कि मैं सामान्य विभक्ति-अर्थ कर सकता हूँ। कोई विशेष बात हो तो बताइए। बड़े लोग बताने के लिए ही कुछ पूछा करते हैं। उन्होंने बताया कि ऐसी भयंकर नदी में कमल नहीं हुआ करते। फिर 'गान्धार नीलोत्पला' क्यों कहा? यह गलत है। इसलिए पुरानी गीता-प्रतियों में 'गान्धार नीलोपला' पाठ मिलता है। जिसका अर्थ है—'गान्धार नीला उपल (पत्थर) है। झट मैंने कहा कि यह भी गलत है। वे बोले कैसे? मैंने बताया कि यह एक सामान्य नदी का वर्णन है। 'नीले पत्थर' गण्डकी नामक विशेष नदी में ही मिलते हैं। इसलिए गलत है। उन्होंने पूछा—फिर कैसा पाठ होना चाहिए? मैंने कहा—'गान्धार-लीनोपला' पाठ होना चाहिए। 'लीनोपला' का अर्थ है गड़ा हुआ पत्थर। इस पाठ-भेद से वे बहुत चकित हुए।

यही चर्चा एक बार मैंने सरगोधेवाले पं० बालमुकुन्द जी वर्मा से चलाई। वे पाकिस्तान छोड़कर अमृतसर में आ बसे थे। उन्होंने सुझाया कि 'नीलोपला' पाठ ही ठीक होना चाहिए। कारण कि गांधार में लोग नीले रंग का तहमत पहनते हैं। नीले रंग की लुंगी पहनते हैं।

(झ)

इस बात से मुझे भक्तों की उस भावना का स्मरण हो आया जो प्रिया-प्रियतम के वेश के बारे में करते हैं। उनका कहना है कि भगवान् कृष्ण पीताम्बर इसलिए पहनते हैं कि उनकी प्रियतमा का रंग भी सोने जैसा है और भगवती राधा नीलाम्बर इसलिए पहनती हैं कि उनके प्रियतम का रंग भी नीला है—श्याम है।

मनुष्य अपनी प्रिय वस्तु को अपने समीप ही देखना चाहता है। नीला और पीला रंग वस्तु को छह फुट समीप लाकर दिखा देता है। स्यात् इसी लिए प्रिया-प्रियतमजू नीला और पीला रंग पसंद करते हों। इस बात की पुष्टि के लिए मैं 'नवभारत टाइम्स' का 'सुरक्षित रंग' नामक समाचार साभार उद्धृत करता हूँ:

"कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि सुरक्षा की दृष्टि से मोटर गाड़ी के लिए सबसे उपयुक्त रंग नीला और पीला है। इस रंग की मोटर गाड़ियों से दुर्घटना होने की बहुत कम सम्भावना रहती है।

अनुसन्धान कर्ताओं का कहना है कि दो सौ फुट की दूरी से देखने पर कुछ खास रंगवाली चीजें दूसरे रंगवाली चीजों के मुकाबले छह फुट अधिक नजदीक जान पड़ती हैं।

दिन की रोशनी और कुहरे में नीला रंग तथा रात में पीला रंग स्पष्ट दिखाई देता है।

अनुसन्धान कर्ताओं ने जो रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसमें कहा गया है कि मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक दृष्टि से भी ये दोनों रंग बहुत महत्त्व के हैं।

परीक्षणों से पता चला है कि लाल रंग के कमरे में रहने से रक्तचाप बढ़ता है, उत्तेजना होती है, बेचैनी महसूस होती है और ऐसा जान पड़ता है मानो समय बहुत धीरे-धीरे गुजर रहा हो।

हरे रंग के कमरे में रहनेवाला व्यक्ति शांति अनुभव करता है।

नीले रंग के कमरे में रहनेवाले को ऐसा जान पड़ता है, मानो समय बहुत तेजी से गुजर रहा हो।

काला और भूरा रंग निराशाजनक प्रभाव डालता है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं पर रंगों का अधिक असर पड़ता है।"

(ट)

'वृत्तरत्नाकर' के कर्ता पं० केदारनाथ शर्मा ने अपनी एक पुस्तक में एक श्लोक दिया है। उस श्लोक को देखकर मैंने कहा कि यह श्लोक किसी पंजाबी का बनाया हुआ है। यह सुनकर पण्डित लोग बहुत चकित हुए और बोले कैसे? मैंने कहा देखिए—इस श्लोक में पंजाबियों के प्रिय खाने का वर्णन है। यह श्लोक है—

"तरुणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति॥"

सरसों का साग तीन प्रकार का होता है—एक पत्तों का, दूसरा गन्दलों का तथा तीसरा सुखाकर रखा हुआ। इन तीनों में से गन्दलों का साग बहुत ही स्वादिष्ट होता है। कवि वर्णन करता है कि हे सुन्दरी! ग्रामीण लोग नाम-मात्र के मूल्य से बहुत ही स्वादिष्ट भोजन करते हैं—जैसे सरसों

की गन्दलों का साग, नवौदन=नया अन्न (मकई की रोटी) तथा पिच्छल=फुटदार—चकत्तेवाली दही।

पंजाब प्रान्त के अतिरिक्त ऐसा खाना अन्य किसी प्रान्त में नहीं बनता। 'नवौदन' शब्द का 'भात'(चावल) अर्थ नहीं कर सकते। कारण कि भात और सरसों के साग का कुछ भी मेल नहीं। इसलिए यह श्लोक किसी पंजाबी के दिमाग की उपज है।

अत्यन्त प्राचीन एवं सर्वगुण—सम्पन्न संस्कृत भाषा राष्ट्र की, भारत की निधि है। इसका अक्षय शब्द-भण्डार है। ज्यों-ज्यों हम इसे खर्च करते चले जाते हैं त्यों-त्यों यह बढ़ता ही चला जाता है। इसकी रक्षा करना राष्ट्र का मुख्य एवं परम कर्तव्य है। इसकी उपेक्षा करना राष्ट्र का अक्षम्य अहित करना हैं। शिक्षा-आयोग ने संस्कृत के प्रचार को रोकने का जो अनुरोध किया है वह अस्वस्थ प्रवृत्ति है। अराष्ट्रीय दुष्कृत्य है। राजनैतिक दुरभिसन्धि है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने लिखा है कि "संस्कृत हमारी भाषा के लिए गंगा नदी है। मुझे लगता है कि वह सूख जाए तो भाषाएँ निर्माल्य बन जाएँगी।"

मैं यह संस्कृत के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण नहीं लिख रहा। किन्तु वस्तु-स्थिति ही ऐसी है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं की प्रकृति आपस में मिलती-जुलती है। कारण कि उन भाषाओं की जन्मदात्री एक ही संस्कृत भाषा है। रामस्य (संस्कृत), राम का, राम की, (हिन्दी), रामदा-रामदी (पञ्जाबी), रामना-रामनी (गुजराती), रामचा-रामची (मराठी), यदि इन विभक्ति-प्रत्ययों को जोड़ लिया जाए तो 'काकी' 'दादी' 'नानी' 'चाची' आदि शब्द बन जाते हैं। इसका मतलब हुआ कि संस्कृत भाषा किसी की काकी है, किसी की दादी है, किसी की नानी है एवं किसी की चाची है। कुछ भी हो, संस्कृत जाने बिना कोई भी इन भाषाओं का प्रौढ़ एवं गंभीर विद्वान् नहीं बन सकता। कारण कि इन भाषाओं की प्रकृति संस्कृत की प्रकृति के अनुकूल है। इनमें से किसी एक भाषा की प्रकृति का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेने पर दूसरी भाषाएँ दिनों में ही आ जाती हैं। परन्तु गम्भीरता तो संस्कृत के अध्ययन से ही आएगी। क्योंकि संस्कृत इन सभी का उत्स है—स्रोत है। मैंने कुछ ही दिनों में गुजराती भाषा का परिचय प्राप्त कर लिया तथा 'रविशंकर महाराज' नामक गुजराती पुस्तक का 'गुजरात के महाराज' नाम से हिन्दी अनुवाद कर डाला। जिसकी द्वितीय आवृत्ति 'सर्वसेवा संघ' वाराणसी ने प्रकाशित की है।

बहुत से हिन्दी के लेखक अंग्रेजी के माध्यम से लेखक बने हैं। यह बात 'अकेडेमी' आदि शब्दों से स्पष्ट प्रगट होती है। यदि वे संस्कृत के माध्यम से

हिन्दी के लेखक बने हुए होते तो अवश्य 'अकेडेमी' के स्थान पर 'साहित्य सभा' या 'साहित्य परिषद्' जैसा कोई शब्द रखते।

बहुत से लेखक तो सनत्कुमारों के भाई-बन्द हैं। अन्तर केवल इतना है कि वे ब्रह्मा के मानस पुत्र थे और ये ब्रिटेन के मानस पुत्र हैं। पहले ये अंग्रेजी में सोचते हैं फिर हिन्दी में लिखते हैं। यही कारण है कि ये 'विद्यापीठ' शब्द को भी स्त्रीलिंग लिखते हैं। क्योंकि अंग्रेजी में 'यूनिवर्सिटी' शब्द स्त्रीलिंग है। यह मैं कल्पना से नहीं लिख रहा, आप बम्बई का 'वृहत् रजत जयन्ती ग्रन्थ' देख सकते हैं।

कुछ तीसरे प्रकार के लेखक हैं। उनकी मातृभाषा और है तथा पितृ-भाषा और। 'सुपर बाजार' 'बेसिक शिक्षा' आदि शब्द ऐसे ही मस्तिष्कों की देन हैं। मुझे तो यह भी ज्ञात नहीं कि 'सुपर' शब्द का अर्थ क्या है? सु=पराया, यह अर्थ है? अथवा 'सुपर' शब्द का अर्थ 'सस्ता' है? यदि 'सस्ता' अर्थ है तो 'सस्ता बाजार' क्यों नहीं लिखते-बोलते? जैसे—'सस्ता साहित्य मण्डल'। यदि 'सुपर' शब्द का अर्थ श्रेष्ठ (बढ़िया) है तो 'बढ़िया बाजार' नाम क्यों नहीं रखते? 'बढ़िया बाजार' में श्रुति-मधुर लकारानुप्रास भी है। इस विषय में मैं अधिक न लिखकर राष्ट्रपिता गांधी के इन शब्दों का स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि "अंग्रेजी भाषा का मोह जब तक हमारे दिल से नहीं छूटेगा (तब तक) हमारी भाषाएँ कंगाल रहेंगी।'

प्रो० डा० श्री रघुवीर एम. ए. अपने 'प्राणीशास्त्र' में लिखते हैं: "भावी भारत की पाठशालाओं तथा विद्यालयों में संस्कृत भाषा का पठन-पाठन अनिवार्य होगा। हमारी आधुनिक भाषाएँ प्राचीन संस्कृत भाषा की पौत्रियाँ हैं। संस्कृत भाषा उनका जीवन और प्राण है। बिना संस्कृत के उनकी वृद्धि नहीं हो सकती। वैज्ञानिक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि संस्कृत ही एक ऐसा अजस्र स्रोत है जिससे विज्ञान तथा अन्य विषयों से सम्बद्ध उच्च विचारों को व्यक्त करनेवाले शब्द निरन्तर निकलते तथा साहित्य-सागर को परिपूर्ण करते रहेंगे। यह ऐसा स्रोत है जिससे उद्भूत होने पर इन शब्द सरिताओं के किसी भी समय सूख सकने अथवा उनमें किसी प्रकार की न्यूनता आ सकने की कोई सम्भावना न रहेगी।"

भगवान् गरुड़जी से बार बार कहते हैं:

एक अनपढ़ पाधाजी किसी किसान यजमान के यहाँ 'गरुड़ पुराण' बाँचा करते थे। उन्होंने सुन-सुनाकर गरुड़-पुराण की कुछ कथाएँ कण्ठ* कर

* 'कण्ठ' शब्द के आगे का 'में' प्रत्यय यहाँ लुप्त रहता है।

रखी थीं। उन्हें एक श्लोक याद था। बारबार उसे ही बोलते जाते थे। श्लोक था—

भासयन्तं जगदभासा नत्वा भास्वन्त मव्ययम् ।
क्रियते काशिनाथेन शीघ्रबोधाय संग्रहः ॥

जो आगे कर्मी-धर्मी बैठा था उसे यह श्लोक कण्ठस्थ हो गया। पाधाजी एक ही श्लोक बोलते जाते एवं आगे की कथा कहते रहते। 'भासयन्तं जगद् भासा...' आदि। जो गौ-ब्राह्मण के लात मारता है वह कुम्भीपाक नरक में गिरता है। 'भासयन्तं जगद् भासा...' रौरव, महारौरव आदि अनेक प्रकार के भयंकर नरक होते हैं जिनमें पापी लोग फेंके जाते हैं। 'भासयन्तं जगद् भासा' एक वैतरणी नाम की नदी है उसमें रुधिर और पीप भरी हुई है। जो मनुष्य ब्राह्मण को गौदान करता है, वह गौ की पूँछ पकड़कर उस वैतरणी को पार कर लेता है। जो कर्मी-धर्मी बैठा था उसने पाधाजी से पूछा—पाधाजी महाराज, आप तो बार बार एक ही श्लोक बोलते चले जाते हैं और तो कोई दूसरा श्लोक नहीं बोलते ? पाधा जी ने उत्तर दिया—भगवान् गरुड़जी से बार बार कहते हैं। 'भासयन्तं जगद् भासा' जो कथा में उटंकना करता है उसकी अगले जन्म में टाँग टूट जाती है।

यही बात मेरे साथ हुई। मेरे एक बन्धु ने मुझे एक फिलिप्स कम्पनी का ट्रांजिस्टर दिला दिया। बहुत ही चाव से सवेरे मैं ६ बजे से ६–४० तक वन्दना और समाचार सुनने लगा और वही 'गरुड़ जी से बार बार' होने लगा। सूचना मिलती—'भक्त भाव-विभोर होकर अपने नन्दनन्दन के आगे नमित हो जाता है।' पद होता है गोस्वामी तुलसीदास का—'ऐसो को उदार जग माहीं।' यह सुनते ही मुझे गरुड़ जी की कथा याद आ जाती। वे ही रिकार्ड रोज के रोज सुनाए जाते हैं।

एक दिन समाचारों की सूचना देते समय कहा गया कि इतने बजे श्री विनोबा जी के स्थितप्रज्ञ-लक्षणों का पंजाबी में अनुवाद सुनाया जाएगा। उसमें 'स्थितप्रज्ञ' शब्द का अर्थ किया था कि 'उसकी प्रतिज्ञा स्थिर होती है।' धन्य, अनुवादक जी।

एक दूसरे समाचार में सुनाई पड़ा कि 'भू-रक्षण' हो रहा है। 'भू-क्षरण' के स्थान पर यह बोला जा रहा था। यह वर्णविपर्यय हिंस का सिंह, बूड़ना का डूबना, पश्यक का कश्यप, नदम का मदन आदि की भाँति नहीं था। यह तो साफ अविवेक-जन्य था।

कितनी बार रेडियो पर सुनने में आता है कि 'अमुक दुर्घटना में एक लोग मारा गया।' इसमें विचारने की बात है—पहले तो 'लोग' शब्द एक

वचनान्त होता ही नहीं। दूसरे मरने और मारने में अन्तर होता है। दुर्घटना में लोग 'मरते' हैं और युद्ध में लोग 'मारे जाते' हैं। अस्तु।

अपने राम तो फक्कड़वृत्ति के निरपेक्ष उदासीन बाबा हैं। कोई छेड़-छाड़ कर दे तो इधर भी चिन्तन चल जाता है, नहीं तो भगवत्-चिन्तन चलता ही रहता है। कुछ समय हुआ मैंने 'मेरा चिन्तन' नाम से अपने विचार प्रगट किए थे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी वर्मा ने लिखा था कि "इसमें सन्देह नहीं कि आपने बहुत कुछ और अच्छा चिन्तन किया है" (बनारस ६।२।६६)। आचार्य श्री सीतारामजी चतुर्वेदी ने बलिया से लिखा कि "इस चिन्तन में बहुत-सी नवीन बातें मिलीं। आशा है आपका चिन्तन यहीं तक समाप्त नहीं होगा" (२६।२।६६)। आपने दुबारा पत्र लिखकर मुझे प्रेरित किया। उस प्रेरणाप्रद पत्र को मैं यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहा हूँ।

टाउन डिग्री कालेज
बलिया, दिनांक २२।८।६६

प्रिय श्री निगमानन्द जी,

सस्नेह नमस्कार।

राष्ट्रभाषा के संस्कार के लिए आप जिस प्रकार का प्रयास कर रहे हैं, वह अत्यन्त स्तुत्य और सराहनीय है। इस समय सारे देश में राष्ट्रभाषा का व्यापक प्रचार होने के कारण स्वभावत: कुछ अराजकता भी व्याप्त हो गई है और अनेक कुछ ऐसे प्रयोग चल पड़े हैं जो किसी भी प्रकार साधु नहीं कहे जा सकते। आपने राष्ट्रभाषा की उन व्यापक अशुद्धियों का जिस प्रकार संस्कार प्रारंभ किया है, वह केवल राष्ट्रभाषा की शुद्धता की दृष्टि से ही नहीं, हिन्दी-साहित्य की शुद्धता की दृष्टि से भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा और उसके द्वारा उन लेखकों का पथप्रदर्शन होगा जो प्रमादवश अथवा अज्ञानवश अनेक प्रकार की ऐसी भूलें करते जा रहे हैं जो समुचित ज्ञान प्राप्त होने पर नहीं हो सकेंगी।

मुझे विश्वास है कि आप इसी प्रकार अनवरत परिश्रम के द्वारा राष्ट्र-भाषा का उपकार करते हुए यश प्राप्त कर सकेंगे। मैं आपके इन सब प्रयत्नों का हृदय से उपकार मानता हूँ और आपको बधाई देता हूँ।

भवदीय
सीताराम चतुर्वेदी

———

२

आँखें मूँद न पीटो लीक

स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते

समय परिवर्तनशील है। यहाँ समय का अर्थ ऋतुएँ, मास, तारीख, घड़ी-घण्टा आदि है। क्योंकि नैयायिक लोग समय को नित्य मानते हैं। समय के साथ-साथ संसार की वस्तुएँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। यही परिवर्तनशीलता ही नवीनता कहलाती है। सभी चीजों में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता रहता है। अभी-अभी रुपये का अवमूल्यन हुआ है। केवल रुपये का ही अवमूल्यन नहीं हुआ, रूप का भी अवमूल्यन हो गया है। पहले अङ्ग-संगोपन सुन्दरता का आवश्यक अङ्ग समझा जाता था। अब अङ्ग-प्रदर्शन सुन्दरता का अनिवार्य ढंग समझा जाता है। सिर परके विषधर नाग के स्थान पर घोड़े की पूँछ, मुर्गे की गर्दन, पक्षियों का घोंसला आ जम बैठा। पहले जिन पद्यों पर पंडित लोग मुग्ध हो जाते थे और पारितोषिक पाते थे, कुछ समय के बाद उन पद्यों का अर्थ ही समझ में नहीं आएगा। अर्थ समझे बिना अर्थ की प्राप्ति असम्भव है। आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल महाकवि घनानन्द की कविता पर अत्यन्त लट्टू थे। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उसकी भूरि-भूरि मार्मिक विवेचना की है। परन्तु यदि शुक्ल जी का दस साल के बाद अवतार हो जाए तो उसी कविता से उन्हें कुछ भी रसानुभूति नहीं होगी। कारण कि पुराने परिमाण-वाचक शब्दों का चलन बन्द कर दिया गया। अब चालीस सेर के मन के स्थान पर किल्लो ने कब्जा कर लिया तथा छटाँक आदि के स्थान पर सैकड़ों ग्राम आ बसे। गज को मीटर ने गलहत्था देकर मीलों दूर फेंक दिया। अब रसिकों के ये प्रिय पद्य रद्दी की टोकरी के मेहमान बन जाएँगे; जैसे—

अति सूधो सनेह को मार्ग है
तहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।

तहाँ प्रेमी चलैं तज आपनपौ,
झिझकैं कपटी जो निशाँक नहीं ।।
'घन आनंद' प्यारे सुजान सुनो,
इत एकते दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।।

तथा

दस सहस्र गज बल घट्यो,
घट्यो न दस गज चीर ।

अब तो इन पद्यों के स्थान पर 'सौ सौ ग्राम खाकर लोग भूखे पेट सोते हैं' आदि पद्यों की रचना होगी । श्रृंगारी कवि इन प्रचलित बाजारू नामों में ही 'श्लेष' भर कर आश्लेष का सुख प्राप्त करते रहेंगे ।

एक कवि ने 'लिपटन' चाय के नाम पर खूब फबती कसी है—

"आजकल की तियन को, बहुत पियन की चाह ।
मरचण्टन सौं पूछतीं, है लिपटन की चाह ।।"

[पियन की=पीने की और पतियों की । मरचण्ट=व्यापारी और मरने-मारने से न डरनेवाले धूर्त । लिपटन=चाय का नाम तथा आलिंगन । चाह=चाय तथा इच्छा]

बाहर की वेषभूषा-रीति-रिवाज बनिक-बनाव बदल जाने पर भी भाव-स्वभाव जल्दी-जल्दी नहीं बदला करता । कारण कि अन्धी नकल में अकल नहीं होती, शकल बिगड़ जाती है । परंतु वात्स्यायन के बेटे यहाँ भी अकल दौड़ाते हैं । वे कहते हैं कि 'ऊँची एड़ी का जूता तथा तंग पोशाक पहनने से अङ्ग विशेष का भद्दा फैलाव रुक जाता है ।' अच्छा, भाई, जाओ, चौराहों पर चप्पल और चाकू चलवाओ । चिकित्सालय में जाकर पेट चिरवाओ ।

आज-कल हमारी हिन्दी भी कई प्रकार के पहनावे पहनकर बन-ठन करके बाजार में आती है । 'एकेडेमी' 'फीट "जरूरियात' इसका नमूना है । साधारण पाठक चक्कर में पड़ जाते हैं कि यह हमारी है या पराई ? पाठकों को चाहिए कि वे भाषा की प्रकृति को समझें । प्रकृति की पहचान होने पर विदित होगा कि बाह्य वेश में—विभक्ति प्रत्ययों में भेद होने पर भी प्रकृति में—स्वभाव में कुछ भेद नहीं । प्राय: भारत की सभी भाषाओं की प्रकृति एक-सी ही है । यह बात मैं अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूँ । मुझे संस्कृत की प्रकृति का कुछ परिचय है । गुजराती, हिन्दी एवं पंजाबी की प्रकृति संस्कृत की प्रकृति से बिलकुल मिलती-जुलती है । जब हिन्दी का परिचय

प्राप्त करना हो तब इसकी माता या मातामही संस्कृत की शरण लेनी चाहिए। फिर सब भेद-प्रभेद, चाल-चलन अवगत हो जाएँगे।

ज्योतिषियों ने नौ ग्रह माने हैं। भुक्तभोगी गृहस्थों ने एक दसवाँ ग्रह भी माना है। 'जामाता दशमो ग्रहः'=जमाई दसवाँ ग्रह होता है। इसे 'दामाद' भी कहते हैं। क्योंकि दाम=पैसों को अद=खाता रहता है। जब माँ समझाती है कि बेटा हम भी बेटियोंवाले हैं, किसी को तंग नहीं किया करते। तब वह कहता है—जा माता (जमाई) जा माई,=परे हट, तुझे इसमें पड़ने की क्या आवश्यकता है ?

जामाता=जायां मिनाति, मिमीतेवा, जो जाया 'पत्नी' का मान करे अर्थात् उसके आगे म्याऊँ म्याऊँ करे।

परन्तु विचारक लोग ग्यारहवाँ ग्रह 'पूर्वग्रह' को मानते हैं। पूर्वग्रह= जो पूर्व=पहले, ग्रह=पकड़ लिया सो पकड़ लिया, अब छोड़ना नहीं किसी की सुननी नहीं। उसी पर अड़े रहना है। दर्प इतना कि कहना ही क्या ? अभिमान का परिमाण ही नहीं। 'पूर्वग्रह' का केवल आग्रह ही नहीं, दुराग्रह भी। हमीर से हठी। भले ही गीता ने 'दर्प' को गुण कहा है। पर वह गुण मानवों का नहीं दानवों का है। अस्तु।

पिछले प्रकरण में हम 'चार यमों' की चर्चा चला चुके हैं। यह भी हम कुछ ऐसी ही चर्चा चलाना चाहते हैं। इसलिए अपने दिमाग को पूर्वग्रह से मुक्त कर लीजिए।

'नहीं है' या 'नहीं'

'नहीं' का अर्थ है—निषेध=अभाव; तथा 'है' का अर्थ है सत्ता=भाव। भाव और अभाव एक अधिकरण में एक साथ नहीं रह सकते। या तो अभाव ही रहेगा या भाव ही रहेगा। तेज और अन्धकार का साथ कैसा ? फिर 'यहाँ पुस्तक नहीं है' क्यों लिखा और बोला जाता है ? मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि आज तक हिन्दी लेखकों का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। हाँ, एक आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयी ही ऐसे हैं जो इस बात के आस-पास घूम रहे हैं। वे अपनी 'अच्छी हिन्दी' के पृष्ठ १११ पर लिखते हैं कि—

'जाता हूँ, तो घर पर कोई नहीं और नहीं जाता, तो काम बिगड़ता है। 'जाता हूं' और 'नहीं जाता' देखिए। 'नहीं जाता' में 'हूँ' सहायक क्रिया जरूरी है, जो 'जाता हूँ' से उठकर यहाँ भी आ जाती है—'जाता' से वह बँधी हुई तो नहीं है न ! 'नहीं जाता हूँ' लिखा जाए तो व्याकरण उसे गलत न कहेगा; परन्तु वह 'सुप्रयोग' न समझा जाएगा। शब्द का सम्यक् प्रयोग लेखनकला या साहित्यशास्त्र से आता है। सो, 'नहीं जाता' ही अच्छा,

'नहीं जाता हूँ' नहीं। परन्तु उस 'हूँ' को वहाँ से उठाकर यहाँ 'नहीं जाता' के साथ रख दें, तो ? तो भी वह यहाँ आकर—'जाता' के साथ लगकर—पूरा काम कर सकता है न ? फिर ऐसा क्यों नहीं होता ? इसलिए नहीं होता कि कोई भला आदमी समान मित्रों को मिठाई परोसता हुआ क्रम रखेगा। पहले को छोड़कर दूसरे के पास न चला जाएगा। पहले पहला, फिर दूसरा। यही स्थिति यहाँ है। 'हूँ' प्रथम क्रिया के साथ ही ठीक है। इसका स्थान बदलेगा नहीं।"

ऊपर के इस विवेचन से मेरा कुछ मतलब नहीं। परंतु वाजपेयी जी का ध्यान इस ओर गया अवश्य है। बस, इतना ही मुझे दिखाना है।

'रमेश, तुम क्यों नहीं पढ़ते हो ?' 'तुम वहाँ क्यों नहीं जाते हो ?' आदि प्रयोग कोई नहीं लिखेगा। लिखेंगे—'रमेश, तुम क्यों नहीं पढ़ते ?' 'तुम क्यों नहीं जाते ?' ऐसा क्यों लिखा और बोला जाता है ? इन ऐसे-ऐसे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है जो हम ऊपर लिख आए हैं कि भाव और अभाव एक ही जगह पर एक ही साथ कभी नहीं रह सकते। 'नहीं' शब्द निषेध का—अभाव का, वाचक है और 'है' 'हो' आदि सत्ता के भाव के वाचक हैं। दोनों का एक साथ प्रयोग नहीं हो सकता। इसलिए "नहीं जाता हूँ तो काम बिगड़ता है" में 'हूँ' का प्रयोग गलत है। 'नहीं जाता, तो काम बिगड़ता है' प्रयोग शुद्ध है।

अब यह नियम निष्पन्न हुआ कि "नहीं' अव्यय के बाद धातु से वर्तमान तथा विध्यर्थक प्रत्यय नहीं आते।" इसी वाक्य में देखिए—'नहीं आते' के आगे 'हैं' रूप नहीं आया।

इतनी बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि निषेध के बाद विधि कभी नहीं होती। हाँ, विधि के बाद निषेध अवश्य हो सकता है। जैसे किसी ने पूछा—'यहाँ पुस्तक है ?' उत्तर मिला 'यहाँ तो पुस्तक है ही नहीं।'

'नहीं' अव्यय के बाद 'हो' धातु से भूतकालिक तथा भविष्यत् कालिक प्रत्यय आ सकते हैं; जैसे—'मैं वहाँ नहीं गया था' एवं 'मैं वहाँ गया हुआ था', 'बारह बजे मैं वहाँ नहीं होऊँगा', 'मैं घर में ही सोता होऊँगा'। इसका कारण है कि निषेध वर्तमान में किया जा रहा है और स्थिति भूत और भविष्यत् काल में थी और होगी। काल-भेद से ऐसे प्रयोग हो सकते हैं, होते हैं और होने चाहिए।

निम्नलिखित वाक्यों में खटक क्यों है ?

१—मैं वहाँ नहीं गया हूँ।

२—रमा वहाँ पढ़ने नहीं जाती है।

३—तुम माता-पिता की सेवा क्यों नहीं करते हो ?

४—मूर्ख लोग इस पर विचार नहीं करते हैं ।

इन वाक्यों में खटक क्यों नहीं ?

१—मैं वहाँ नहीं गया ।

२—रमा वहाँ पढ़ने नहीं जाती ।

३—तुम माता-पिता की सेवा क्यों नहीं करते ।

उत्तर वही है कि 'नहीं' अव्यय के बाद हूँ, हैं, हो, प्रत्यय तथा आतिदेशिक 'है' धातु के वर्तमान एवं विध्यर्थक रूप नहीं आते । प्रश्न होता है कि 'न वह ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न पुरुष है, पता नहीं वह क्या है' आदि वाक्यों में बिलकुल खटक नहीं । जबकि निषेधार्थक 'न' अव्यय का सहप्रयोग है ?

उत्तर—ऐसे स्थलों पर 'न' अव्यय प्रस्तुत व्यक्ति के अस्तित्व का निषेध नहीं करता, किंतु उसमें के ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, पुरुषत्व आदि धर्मों का निषेध करता है । 'है' आतिदेशिक क्रिया उस पुंपिण्ड का अस्तित्व प्रगट कर रही है ।

इसी प्रकार 'न घट है, न पट है', में भी 'कुछ है अवश्य' यदि 'कुछ नहीं' तो 'कुछ नहीं ही होगा' 'कुछ नहीं है' नहीं होगा ।

इस लेखनी ने एक बार लिखा था कि—

"लगाई आग जो तूने हरे ! हरदम सुलगती है ।
न जीता हूँ, न मरता हूँ, न जलती है न बुझती है ।।"

इसमें भी जीना, मरना, जलना, बुझना आदि क्रियाओं का ही निषेध किया गया है, अपनी सत्ता का नहीं ।

इस बात की ओर मेरा ध्यान तब गया जब मैं सन् १९५१ में अहमदाबाद (गुजरात) में 'टयूटोरियल हाईस्कूल' में पढ़ाता था । एक विद्यार्थी ने मुझसे पूछा—'साहब अहियां मारी चोपड़ी छे ?' यहाँ मेरी पुस्तक है ? जैसे कुछ लोग पहले अंग्रेजी में सोचते हैं और बाद में लिखते हैं, ठीक वैसे ही मैं भी पहले हिन्दी में सोच लेता और बाद में उसका गुजराती में अनुवाद कर देता । हिन्दी में 'मेरी पुस्तक यहाँ है ?' का उत्तर 'है' या 'नहीं है' होता है । मैंने झट 'नहीं है' का अनुवाद करके उत्तर दे दिया 'नथी छे' । यह उत्तर सुनते ही छोटे-बड़े सभी विद्यार्थी खिल-खिलाकर हँस पड़े । मैंने हँसने का कारण पूछा, तो उत्तर मिला 'साहब, 'नथी' के आगे 'छे' नहीं होता ।" फिर मैं चिन्तन करने लगा कि 'छे' क्यों नहीं होता ? जब हिन्दी में 'नहीं है' होता है, तो गुजराती में भी 'नथी छे' होना चाहिए । अन्त में मैं भी गुजराती प्रयोग का समर्थक हो गया । केवल समर्थक ही नहीं, इस प्रयोग

का प्रवर्तक भी हूँ। तब से लेकर आज तक मैंने लगभग तीन हजार पृष्ठ लिख दिए होंगे। परंतु 'नहीं' अव्यय के आगे 'हूँ' या 'हो' का प्रयोग कहीं नहीं हुआ। अब तो मेरी कर्ण-पेशियाँ इतनी अभ्यस्त हो गई हैं कि ऐसा कोई वाक्य सुनते ही खड़ी हो जाती हैं।

'गढ़ना' या 'घड़ना'

हिन्दी में आज-कल 'गढ़ना' का प्रयोग धड़ल्ले से चल रहा है, जैसे—'उसने सुन्दर गढ़ दिए' सुन्दर गहने घड़ दिए अथवा सुन्दर गढ़(किले) दिए ? 'गढ़-गढ़ काढै खोट' किले-किले में जाकर उनकी खामी दूर करता है अथवा घड़-घड़कर—ठोकठाककर उन्हें ठीक बनाता है ? हिन्दी की प्रकृति यथाश्रुत लिखने की है। श्रवण 'घड़' का होता है 'गढ़' का नहीं। ऐसे संदिग्ध प्रयोगों को हिन्दी कभी सहन नहीं करती। पुरानी हिन्दी में आता है कि 'जे बूढ़े सब अङ्ग' क्या सब अङ्ग बूड़े—वृद्ध-जर्जर हो गए ? परन्तु यहाँ बूड़े होने का प्रसंग ही नहीं। झट हिन्दी ने अपनी प्रकृति के अनुसार वर्णव्यत्यय करके 'बूढ़ना' का 'डूबना' बना लिया। यहाँ तो व्याकरण की रीति से भी 'घड़ना' ही युक्ति-युक्त है, 'गढ़ना' नहीं। कारण कि 'घट' (संघाते) धातु से 'घड़ना' बना है। भ्रान्ति से 'गठन' से लोगों ने 'गढ़ना' बना डाला। परन्तु वे लोग भी 'सुघड़ नर' लिखते और बोलते हैं; किन्तु 'सुगढ़ नर' नहीं लिखते और बोलते। यदि कहें कि 'सुघड़ नर' शब्द तो 'सुघर नर' शब्द का विकार है। सुन्दर घरवाला इसका अर्थ है। हमारा कहना है कि भले ही आप सुन्दर घरवाला अर्थ कर लें; तो भी यहाँ 'घर' शब्द का घर (मकान) अर्थ नहीं; किन्तु 'घर' शब्द का 'शरीर' अर्थ है। भागवत में लिखा है कि 'शरीरं गृह मुच्यते' शरीर को 'घर' कहते हैं। क्योंकि वह परमात्मा ने या प्रकृति ने घड़ा है। यथाश्रुत उच्चारण के कारण तथा 'घट' (संघाते) धातु से व्युत्पन्न होने के कारण जैसे 'घड़ना' बोलते हैं; वैसे ही 'घड़ना' लिखना भी चाहिए।

'चिढ़' या 'चिड़'

'उसका स्वभाव चिड़चिड़ा बन गया' 'मुझे उससे चिड़ है' ऐसा यथाश्रुत न लिखकर लोग 'चिढ़' लिखते हैं। 'चिड़' लिखना चाहिए। क्योंकि यह ध्वनि का अनुकरण है। जब गरम लोहे या तवे पर पानी डालते हैं, जब गीली या सूखी लकड़ी फाड़ते हैं और भाड़ में चने या मकई भूनते हैं, तब 'चिड़चिड़' की आवाज आती है। उसी आवाज के (ध्वनि के) अनुकरण पर

'चिड़' शब्द घड़ लिया गया है। इसमें 'ढ़' की ध्वनि नहीं होती। यदि चाम से मढ़ा हुआ कोई वाद्य डमरू या डप्फ आदि हो तब भी 'डमडम' या 'डफ डफ' की ध्वनि निकलेगी। 'डमरू' और 'डप्फ' नाम भी ध्वनि के अनुकरण पर ही घड़ लिए गए हैं। बहुत बड़े नगाड़े की 'ढमढम' आवाज हो सकती है, किसी छोटे-मोटे वाद्य की नहीं। इसलिए यथाश्रुत होने से तथा चिड़चिड़ ध्वनि का अनुकरण होने से 'चिढ़' न लिखकर 'चिड़' ही लिखा जाना चाहिए।

'टवर्ग' पहले या 'चवर्ग'

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कुछ विद्वानों ने ऊहना की है कि क-वर्ग के बाद ट-वर्ग आना चाहिए। क्योंकि शरीर के अंगों में कण्ठ के बाद 'मूर्धा' आता है और फिर 'तालु' आता है। ट-वर्ग का 'मूर्धा' स्थान है तथा च-वर्ग का 'तालु' स्थान है। इसके उत्तर में २७।८।६६ को 'नव भारत टाइम्स' में प्रकाशित अपना लघु लेख उद्धृत कर रहा हूँ :

क्या यह नागरी वर्णमाला में त्रुटि है ?

आज विज्ञान का युग है। हर एक बात को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाता है और खरी उतरने पर उसे योग्य मान्यता प्राप्त हो जाती है। नागरी वर्णमाला पर भी उच्च कोटि के विद्वानों ने वैज्ञानिक विचार करना आरम्भ कर दिया है। उनके हाथ नागरी वर्णमाला की एक त्रुटि लग ही गई। वे वर्गों का स्थान परिवर्तित करके उस त्रुटि को दूर करना चाहते हैं। वर्णमाला में सुधार करने जा रहे हैं; जैसे—

विद्याभूषण 'रश्मि' जी लिखते हैं कि "वर्गों के इस क्रम निर्धारण में न जाने कैसे त्रुटि रह गई है। जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है तथा जिसे बिना किसी विशेष कठिनाई के सुधारा भी जा सकता है। यह त्रुटि च-वर्ग तथा ट-वर्ग के सम्बन्ध में है। च-वर्ग की ध्वनियाँ तालु से सम्बद्ध हैं और ट-वर्ग की मूर्धा से। क्योंकि हमारे शरीर में कण्ठ के बाद मूर्धा का स्थान है तथा उसके बाद तालु का। इसलिए क-वर्ग के बाद ट-वर्ग को स्थान मिलना चाहिए एवं बाद में च-वर्ग को।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के कथनानुसार पाणिनि के समय इन वर्गों के वर्णों का उच्चारण सम्भवतः कुछ भिन्न रहा होगा। पर अब वर्तमान उच्चारण रूप के अनुसार इन वर्गों का स्थान-परिवर्तन वांछनीय है।"

कृपानाथ मिश्रजी ने भी जोर देकर अपने लेख में कहा है कि "शृंखला के रूप में अक्षरों के न आने की त्रुटि की ओर डा० धीरेन्द्रवर्मा ने ध्यान आकर्षित किया था। मूर्धन्य ट-वर्ग को तीसरा स्थान न देकर दूसरा स्थान दिया जाना चाहिए और च-वर्ग को तीसरा। शायद पहले इनका उच्चारण किसी दूसरे रूप से होता था। अब वर्णमाला की पुस्तकों में इनको इस रूप में छापा जा सकता है।".

मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है बिलकुल साधारण बात पर प्रौढ़ विद्वान् चक्कर में क्यों पड़ गए? निराला या पन्त की किसी कविता में लिखा है कि "आकाश आँख है और क्षितिज उसकी भ्रकुटि है।" टीकाकार ने इसके नीचे टिप्पणी दी है कि "यह ठीक नहीं; क्योंकि आँख नीचे होती है और भ्रकुटि ऊपर। परंतु यहाँ तो क्षितिज नीचे है और आकाश ऊपर"। मैंने विद्यार्थियों को समझाया कि टीकाकार ही गलती पर है, कवि गलती पर नहीं। कारण कि यदि औंधा मुँह करके नीचे की ओर झाँकें तो ठीक भ्रकुटि क्षितिज के स्थान पर ही आएगी एवं आँख आकाश के स्थान पर। ऐसे ही गलत धारणा वर्णमाला के विषय में बैठ गई है। बाहर से शरीर के अंगों को देखने से तालु तीसरे स्थान पर ही आता है। परन्तु उच्चारण का यह क्रम बिलकुल ही नहीं। पाणिनि परम वैज्ञानिक थे "एकेनाऽपि वर्णेन न अनर्थकेन भवितव्यं किं पुन रियता सूत्रेण" जब एक भी वर्ण गलत नहीं; फिर इतनी महान् गलती कैसे रह सकती है? इसलिए शरीर के अंगों को बाहर से न देखकर अन्दर से—जिस मार्ग से या क्रम से शब्द आता है उसी क्रम से देखना चाहिए। फिर देखिए, तालु दूसरे स्थान पर आता है कि तीसरे स्थान पर? तालु दूसरे स्थान पर ही आएगा, तीसरे स्थान पर बिलकुल नहीं।

आत्मा बुद्धि के साथ मिल करके कुछ कहने के लिए मन को प्रेरित करता है। मन कायाग्नि को आहत करता है। कायाग्नि वायु को प्रेरित करती है। वायु छाती में से होता हुआ स्वर पैदा करता है। वह स्वर कण्ठ में आकर क-वर्ग की ध्वनियों का रूप ग्रहण कर लेता है। फिर जीभ तालु का स्पर्श करती है जिससे च-वर्ग की ध्वनियाँ निकलती हैं। फिर जीभ मूर्धा का स्पर्श करती है जिससे ट-वर्ग की ध्वनियाँ उद्भूत होती हैं। फिर जीभ दाँतों के आस-पास टकराती है जिससे त-वर्ग की ध्वनियों की सृष्टि होती है। अन्त में होठ फड़फड़ाते हैं जिससे प-वर्ग का जन्म होता है। फिर होठों का कपाट बन्द हो जाता है तथा वर्गों का क्रम वन्द हो जाता है। इसलिए यह नागरी वर्णमाला की त्रुटि नहीं, अपितु स्तुति है। देखिए

पाणिनीय शिक्षा—

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्
मनो युंक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्नि माहन्ति
स प्रेरयति मारुतम् ॥
मारुत स्तूरसि चरन्
मन्दं जनयति स्वरम्।"

——

३

सोच-समझ तुम देखो ठीक

श्री विष्णु प्रभाकर जी के नाम—प्राहा विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० विन्त्सेन्त्स पोरीज का एक हिन्दी के सम्बन्ध में पत्र आया था जो उन्होंने बम्बई विद्यापीठ के 'रजत जयन्ती ग्रन्थ' में उद्धृत किया है। उसके कुछ अंश निम्न लिखित हैं—

१—उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एक बार लिखते हैं 'मेज की बाईं ओर' तथा दूसरी बार लिखते हैं 'मेज के बाईं ओर' दोनों में से कौन-सा प्रयोग शुद्ध है ?

२—सेठ गोविन्ददासजी लिखते हैं—'खिड़की के एक ओर एक कुर्सी पड़ी थी' क्या यह प्रयोग शुद्ध है ?

३—'और कोई' 'कोई और' 'और कुछ' 'कुछ और' इनका अंग्रेजी में शुद्ध अनुवाद क्या हो सकता है ?

४—'दुपट्टा गले पर या गले में ?' और 'अंगूठियाँ अंगुलियों पर या अंगुलियों में ?'

५—'संख्या वाचक (६) अंक का सही उच्चारण 'छ' 'छः' 'छे' या 'छह' कौन-सा है ?

६—'मेरा जी कुछ नहीं चाहा' और 'मेरा जी चाहा कि यहाँ से चल दूँ' क्या ये वाक्य ठीक हैं ? नहीं तो क्यों ?

७—(क) तुम 'किस' पर या 'काहे' पर लिखते हो ?

(ख) 'मलेरिया' या 'मलेरिये' का खतरा ?

(ग) 'पूरब में' या 'पूरब से ?'

(घ) 'एक चिट्ठी 'लिखनी' या 'लिखना' ?

(च) कितनी 'दफे' या कितनी 'दफा' ?

(छ) 'रिक्शा में' या 'रिक्शे में' ?

(ज) 'अच्छा सस्ता सिगरेट' या 'अच्छी सस्ती सिगरेट' ?

(झ) डाकिया चिट्ठियाँ 'डाकघर में' या 'डाकघर' ले जाता है ?

(ट) थैले 'स्टेशन' या 'स्टेशन पर' भेज दिए जाते हैं ?

(ठ) तुम भी 'मुझ जैसी' या 'मेरी जैसी' या 'मेरे जैसी' गँवारिन हो ?

(ड) 'क्रोध में भरकर' कहा या 'क्रोध में' कहा या 'क्रोध से' कहा ?

(ढ) 'एक रुपए के' या 'एक रुपए में' सौ नए पैसे होते हैं ?

(त) मनुष्य के शरीर के मुख्य भाग 'कौन से होते हैं ?' या 'कौन से हैं' ? या 'कौन से मुख्य भाग हैं' ?

(थ) दिल्ली 'किस' या 'कौन-सी' नदी के किनारे बसी हुई है ?

(द) हम जाने 'के लिए' या 'जाने को' तैयार हैं ?

लेख के अन्त में विष्णु प्रभाकरजी ने लिखा है—हमें हिन्दी के भविष्य के सम्बन्ध में निराश होने की आवश्यकता नहीं। लेकिन उसका रूप सुस्थिर करने के लिए अभी कठोर परिश्रम और (अजस्र) जागरूकता की आवश्यकता है। क्या यह चुनौती हम स्वीकार करेंगे ?

क्रमशः इन प्रश्नों पर विचार किया जाता है—

१—'अश्क' जी के 'मेज की बाईं ओर तथा मेज के बाईं ओर' दोनों प्रयोगों में से स्त्री-लिंग वाला प्रयोग ही सरल तथा सुस्पष्ट है। कारण कि 'ओर' अव्यय तरफ का (दिशा का) वाचक है। 'दिशा' शब्द स्त्रीलिंग है। इसलिए 'मेज की बाईं ओर' ही ठीक है; जैसे—'मेरी ओर देखिए' 'उसकी तरफ क्या देखता है ?' आदि प्रयोग चलते हैं।

'मेज के बाईं ओर' प्रयोग भी हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है। कारण कि हिन्दी अपने वाक्यों में विभक्तियाँ एवं पद लुप्त करके बोलने की आदी है। जैसे—(क)—'राम के लड़की हुई' वाक्य में (यहाँ या घर) (ख)—'मथुरा निकल गया' में (स्टेशन) (ग)—'मथुरा देख लिया' में (नगर या शहर) (घ)—'राम के बाईं ओर' में (घर की) (च) 'मन की करके छोड़ूँगा' में (बात) (छ) 'राम के बाईं ओर'

में (शरीर की) आदि पद विलुप्त रहते हैं। इसलिए 'मेज के बाईं ओर' में भी (स्थान की) पद लुप्त है। अर्थात्—'मेज के स्थान की बाईं ओर'।

२—इसी लिए सेठ गोविन्ददासजी ने भी 'खिड़की के एक ओर एक कुर्सी पड़ी थी' लिख दिया। विलुप्त पद का अध्याहार कर लेना चाहिए; जैसे—'खिड़की के स्थान की एक ओर एक कुर्सी पड़ी थी'। यद्यपि 'खिड़की' और 'स्थान' दोनो अभिन्न हैं; तो भी अभेद में भेद कल्पना करके ऐसा बोल दिया जाता है। संस्कृत में भी ऐसा बोलने की प्रथा है। सिर का नाम राहु है और धड़ का नाम केतु। फिर भी 'राहोःशिरः'='राहु का सिर' ऐसा बोला जाता है।

३—'और कोई' 'कोई और' 'और कुछ' 'कुछ और' में पहला 'और' शब्द 'अन्य' का वाचक है एवं दूसरा 'और' शब्द 'अधिक' का वाचक है। अर्थात् एक प्रयोग में 'और' का 'अन्य' 'अर्थ है तथा दूसरे प्रयोग में 'अधिक' अर्थ है। जब हम कहते हैं कि 'इस पर कोई और रंग होता तो अच्छा फबता' कोई और =दूसरा। 'यदि कुछ और रुपये होते तो काम चल जाता' कुछ और= अधिक। अंग्रेजी मुझे नहीं आती। इसलिए अनुवाद का सुझाव नहीं दे सकता।

४—'दुपट्टा गले पर या गले में' 'अंगूठियाँ अंगुलियों पर या अंगुलियों में ?'

'पर' और 'में' सप्तमी विभक्ति के—अधिकरण के—चिह्न हैं। जब कोई वस्तु अधिकरण के उपरि भाग में सटी हुई होती है तब 'पर' विभक्ति-चिह्न का प्रयोग होता है; जैसे—वृक्ष पर पक्षी बैठा है, घड़े पर बूँदें पड़ रही हैं। जब कोई वस्तु अधिकरण के अन्दर छिपी या ढकी हुई हो अर्थात् अधिकरण जिसके चारो ओर हो तब अधिकरण के लिए 'में' विभक्ति-चिह्न आता है; जैसे—पत्तों में पक्षी बैठा है या घड़े में पानी भरा है। इस दृष्टि से 'गले पर दुपट्टा लपेट कर टहल रहा है' ही ठीक है।

'अंगूठियाँ अंगुलियों पर सज रही हैं' गलत है और 'अंगूठियाँ अंगुलियों में सज रही हैं' ठीक है। कारण कि यहाँ न तो आधेय अधिकरण के उपरि भाग में है और न अधिकरण ने ही आधेय को अपने में ले लिया या आच्छादित किया है। फिर यहाँ 'पर' और 'में' दोनों में से कोई भी विभक्ति-चिह्न नहीं आना चाहिए। परंतु बिना विभक्ति-चिह्न के शाब्द बोध नहीं होता—कोई अर्थ नहीं निकलता। इसलिए तीसरा नियम बनाना होगा :

'जो आधेय अधिकरण को चारो ओर से घेर या आवृत कर ले उस आधेय के योग में अधिकरण में 'में' विभक्ति-चिह्न आता है।'

प्रश्न पैदा होता है कि यदि दुपट्टे ने गला रूप अधिकरण को चारों ओर से घेर या लपेट रखा है तो उसमें 'पर' विभक्ति चिह्न क्यों आ गया ?

विचार कीजिए—'दुपट्टा लम्बा है। उसके दोनों लड़ सी करके गोल नहीं बनाए गए। जो आधेय गोल हो तथा अधिकरण को लपेट लेता हो—चारों ओर से घेर लेता हो, अन्दर से खाली हो—उसके योग में अधिकरण में सप्तमी का 'में' चिह्न लगता है; जैसे—

(क) गले में कोट, गले में माला, हाथ में चूड़ियाँ, हाथ में घड़ी, हाथ में कंकण आदि।

(ख) पैर में जूती, पर में जराबें आदि।

(ग) कान में कुण्डल, नाक में मोती आदि।

५—संख्यावाचक (६) अङ्क का सही उच्चारण 'छह' होता है। 'छः' नहीं होता ('छे' तो पंजाबी उच्चारण है) क्योंकि हिन्दी में कोई विसर्गान्त शब्द ही नहीं। जो 'पुनः' 'अतः' 'दुःख' आदिक विसर्गों वाले शब्द हैं वे सब संस्कृत के हैं—हिन्दी के नहीं। हिन्दी वाले उनका प्रयोग अवश्य कर लेते हैं। (यह सूझ आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी की है।)

दूसरा कारण है कि 'छह' शब्द संस्कृत के संख्यावाचक 'षष्' शब्द से बना है और इस लिए तद्भव है। हिन्दी संस्कृत के 'स' को 'ह' बनाकर अपना लेती है; जैसे—अष्टादश का 'अठारह'। अतः 'छह' लिखना ही युक्तियुक्त तथा हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप है।

६—'मेरा जी कुछ नहीं चाहा' वाक्य गलत है। कारण कि सकर्मक धातु के भूतकालिक कर्मवाच्य प्रयोग में 'कर्ता' में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है; जैसे—मैंने ग्रन्थ पढ़ा, उसने काम किया, राम ने कहा आदि। परन्तु अकर्मक धातु के भूतकालिक प्रयोग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न नहीं आता; जैसे—मैं सोया, राम हँसा, राम जागा, राम गया आदि। 'चाह' धातु यहाँ सकर्मक है। इसलिए 'मेरे जीने कुछ नहीं चाहा' प्रयोग ही ठीक है। कारण कि 'कुछ' शब्द यहाँ कर्म का बोधक है, क्रिया-विशेषण का बोधक नहीं। हाँ, 'कुछ तो सो जाओ' में 'कुछ' शब्द क्रिया-विशेषण अवश्य है।

जैसे—'स भारं वहति' में 'वह्' धातु सकर्मक है तथा 'नदी वहति' में वही 'वह्' धातु अकर्मक है, वैसे ही यदि कर्म का बोधक कोई शब्द वाक्य में न हो तो कुछ धातुएँ अकर्मक बन जाती हैं; जैसे—मैंने एक श्लोक बोला, मैं बोला कि ऐसा नहीं होना चाहिए आदि! इस दूसरे वाक्य में 'बोलना' धातु का अकर्मक की भाँति प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 'जी चाहा कि यहाँ से चल

दूँ' भी शुद्ध प्रयोग है। कारण कि यहाँ 'चाह' धातु का अकर्मक की भाँति प्रयोग हुआ है तथा यह प्रयोग खटकता भी नहीं।

६—(क) 'तुम किस पर या काहे पर लिखते हो ?' में 'किस पर' ठीक है और 'काहे पर' अशुद्ध है। क्योंकि 'काहे' प्रश्नार्थक अव्यय है। इसका प्रचलन बन्द हो गया। अब यह शिष्ट प्रयोग नहीं माना जाता।

(ख) 'मलेरिया या मलेरिये का खतरा' वाक्य में 'मलेरिये' का' शुद्ध है तथा 'मलेरिया का' गलत हैं। कारण कि 'मलेरिया' शब्द पुंवाचक है और पुंवाचक शब्दों को 'ए' हो जाता है यदि विभक्ति चिह्न आगे हो। स्त्रीवाचक शब्दों को 'ए' नहीं होता।

(ग) 'पूरब में' या 'पूरब से' ? इस वाक्य में यदि पूर्व दिशा में कोई काम होता है तो 'पूरब में ऐसी प्रथा प्रचलित है।' 'पूरब में' ही होगा। यदि उस दिशा से किसी का विभाग हो रहा हो—कोई आ रहा हो तो अपादान पंचमी का 'से' प्रत्यय होगा; जैसे—पूरब से पवन जब आती है, जब कोयल कूक सुनाती है। यहाँ 'पूरब से' ही होगा।

(घ) लिखना, करना, पढ़ना आदि क्रियार्थक संज्ञाएँ हैं और ये पुंवाचक हैं। जब ये विशेषण के रूप में प्रयुक्त होती हैं तब विशेष्य के अनुसार इनका भी लिंग परिवर्तित हो जाता है; जैसे—उसका यों बार-बार चिट्ठी लिखना मुझे पसन्द नहीं। इस वाक्य में क्रियार्थक संज्ञा 'लिखना' पुंवाचक है; इसी-लिए इसके भेदक (षष्ठी) में 'उसका' पुंलिग प्रत्यय आया है। जब 'लिखना' क्रिया का विशेषण के रूप में प्रयोग होगा तब विशेष्य के अनुसार इसका भी लिंग वचन बदल जाएगा; जैसे—अभ्यास करने के लिए या अक्षर सुधारने के लिए हर रोज एक चिट्ठी लिखनी चाहिए। यहाँ चिट्ठी विधेय का विशेषण 'लिखना' है। इसी लिए चिट्ठी के लिंग के अनुसार 'लिखनी' स्त्रीवाचक रूप बन गया। 'उसकी चिट्ठी पढ़ना तो लड़ाई मोल लेना है' में 'चिट्ठी पढ़ना' असमस्त पद है। इसी लिए चिट्ठी के भेदक 'उसकी' पद में स्त्रीलिंग प्रत्यय आया है। जिस प्रकार 'पाँव पड़कर मनाओ' में पाँव के आगे का 'पर' विभक्ति-चिह्न लुप्त रहता है; उसी प्रकार 'चिट्ठी पढ़ना' में भी चिट्ठी के आगे का 'का' विभक्ति-चिह्न लुप्त है। यदि समास मान लिया जाए तो तत्पुरुष समास में प्रायः उत्तर पद प्रधान होता हैं। 'चिट्ठी पढ़ना' में 'पढ़ना' उत्तर पद है जो पुंलिग है। इसलिए 'उसकी' में स्त्रीलिंग प्रत्यय नहीं आ सकेगा। हाँ, 'उसका चिट्ठी-लिखना' में अवश्य समास है।

भाव यह है कि जब 'लिखना' आदि क्रियाएँ संज्ञा के रूप में आती हैं तब ये क्रियार्थक संज्ञाएँ कहलाती हैं और जब ये विशेषण के रूप में आती हैं; तब 'विशेषण क्रियाएँ' कहलाती हैं।

'उसे एक चिट्ठी लिखना होगा' लिखना और बोलना दूषित वाक्य है। कारण कि समास कर देने से 'चिट्ठी' गौण हो जाएगी। परंतु है 'चिट्ठी' यहाँ विधेय। अत: इसमें विधेयाविमर्श दोष आ जाएगा। चिट्ठी को विधेय बनाकर ही लिखना चाहिए। 'उसे एक चिट्ठी लिखनी होगी'। इस वाक्य में 'चिट्ठी' विधेय है, उसी पर जोर देना है। समास कर देने में यह जोर नहीं रहता। यही बात हमारी भाषा की प्रकृति के अनुकूल है।

(च) 'दफा' शब्द स्त्रीलिंग है। इसका बहुवचन 'दफाएँ' बनेगा। यदि पुंलिग मान लिया जाए तो 'दफे' तो बन जाएगा। परन्तु 'कितनी' स्त्रीलिंग नहीं बनेगा। क्योंकि विशेषण में विशेष्य के ही लिङ्गवचन होते हैं। इसलिए 'कितनी दफा' ही होना चाहिए; जैसे 'कितनी बार'। परंतु 'कितनी बारें' नहीं होता। इस प्रयोग के आधार पर 'बार' और 'दफा' शब्द को नित्य एकवचन मान लेना चाहिए। इसका बहुत्व (आधिक्य) द्योतित करने के लिए परिमाणवाची तथा संख्यावाची विशेषणों का प्रयोग होता है; जैसे—दो दफा, सौ दफा, कितनी दफा, बीस बार, सौ बार, कितनी बार आदि।

(छ) 'रिक्शा' शब्द पुंवाचक है। अत: 'रिक्शे में' होना चाहिए। परंतु 'आकारान्त' पुंवाचक संज्ञाओं का लेखक लोग दोनों प्रकार से प्रयोग कर रहे हैं; जैसे कलकत्ता में और कलकत्ते में, पटियाला में और पटियाले में, खन्ना में खन्ने में आदि। इसलिए दोनों प्रकार के रूपों को शुद्ध मान लेना चाहिए।

(ज) अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग 'सिगरेट' शब्द का पुलिंग में ही प्रयोग करेंगे। कारण कि यह शब्द अंग्रेजी का है तथा पुलिंग है। परंतु पञ्जाबी लेखक इसका स्त्रीलिंग में ही प्रयोग करेंगे, क्योंकि यह बीड़ी की बहन तथा तम्बाकू की बेटी है। लंबी, गोरी, मनमोहनी एवं कैंसर की जननी है।

(झ) 'डाकिया चिट्ठियाँ डाकघर में या डाकघर ले जाता है ?'

ऐसे वाक्यों में जब साधारण रूप से बातचीत की जाती है तब 'में' विभक्ति-चिह्न लुप्त रहता है; जैसे मैं बनारस जा रहा हूँ, डाकिया चिट्ठियाँ डाकघर ले जा रहा है। आदि। जब किसी बात पर बल देना होता है तब 'में' 'पर' आदि विभक्ति चिह्न लगाने पड़ते हैं; जैसे—अधिक समय मैं बनारस में ही रहता हूँ, क्योंकि बनारस में ही मेरा जन्म एवं पठन-पाठन हुआ है। पहले डाकिया चिट्ठियाँ डाकघर में ले जाता है और बाद में स्टेशन पर।

मैं आपको डाकघर में ही मिलूँगा आदि। इसलिए दोनो प्रयोग ही शुद्ध हैं। प्रसंगानुसार वक्ता या लेखक इनका योग्य प्रयोग करता है।

(ट) 'थैले स्टेशन या स्टेशन पर भेज दिए जाते हैं?'

प्रकरणानुसार दोनो प्रयोग शुद्ध हैं; जैसे—अभी मैं स्टेशन जा रहा हूँ, मैं आपको स्टेशन पर ही मिलूँगा,।

(ठ) 'तुम भी मुझ जैसी या मेरी जैसी या मेरे जैसी गँवारिन हो?

इस वाक्य में या अन्य ऐसे स्थलों पर 'मुझ जैसी' और 'मेरे जैसी' प्रयोग ही शुद्ध हैं। 'मेरी जैसी' गलत है। कारण कि 'तुम मेरे समान गँवारिन हो' की भाँति 'मुझ जैसी' 'मेरे जैसी' में 'जैसा' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका 'समान' अर्थ है। समान, तुल्य, सदृश आदि शब्द पुंवाचक हैं। इनका निर्विभक्तिक ही प्रयोग होता है; अर्थात्—इनके आगे कोई विभक्ति-चिह्न नहीं आता। परंतु समानार्थक 'जैसा' शब्द के आगे विशेष्य के अनुसार लिंग-वचन प्रयुक्त होते हैं। यहाँ विशेष्य कोई स्त्री है। अतः 'जैसी' स्त्री-लिंग प्रयोग हो गया 'समान' पुंलिंग है। इसलिए 'मेरे' पुंलिंग प्रयोग हो गया।

इतना अन्तर है कि 'मेरे जैसी' असमस्त पद है और 'मुझ जैसी' समस्त पद है। 'जैसा' के स्थान पर 'सा' आदेश कर देने से 'मुझ-सा 'मुझसी' आदि समस्त पद और भी हल्के हो जाते हैं।

(ड) 'क्रोध में भरकर कहा या क्रोध में कहा या क्रोध से कहा?'

अवस्था के अनुसार तीनो प्रयोग हो सकते हैं एवं तीनों में अर्थभेद है। 'क्रोध से कहा' का अर्थ है कि केवल कथन में, वाणी में क्रोध है। 'क्रोध में कहा' का अर्थ है कि मन में क्रोध है। वचन भले ही मीठा हो। 'क्रोध में भरकर कहा' का अर्थ है कि क्रोध तो है ही उसमें और बल भरकर हाथ-पैर पटकना आदि क्रियाएँ करके लताड़ा। यहाँ तन में, मन में, वचन में, सब में क्रोध है; जैसे—पति ने क्रोध से कहा कि तुम यहाँ से चली जाओ। पत्नी ने क्रोध में कहा कि जी हाँ, अब मैं आपकी कौन होती हूँ। इस पर पति ने क्रोध में भरकर उसे धक्का दिया, और लात जमाई। गाली बकते, आँखें लाल किए, बड़बड़ाते झल्लाते घर से बाहर निकल गए।

(ढ) 'एक रुपये के या एक रुपए में सौ नए पैसे होते हैं?'

ये दोनो प्रयोग शुद्ध हैं। जब रुपए का मूल्य द्योतित करना होता है तब कहा जाता है कि 'एक रुपए के सौ नए पैसे होते हैं, तथा जब रुपए के कितने

अवयव—विभाग—होते हैं, यह कहना होता है तब 'एक रुपए में नए सौ पैसे हैं' यह कहा जाता है।

(ग) 'मुख्य भाग कौन से हैं ?' या 'कौन से मुख्य भाग हैं ? आदि में "आगन्तुकाना मग्रे निवेश:"=अतिथि को जरा आगे बैठा देना चाहिए की नीति से जिस शब्द को थोड़ा मान देना हो उसका पहले प्रयोग कर देना चाहिए। 'मुख्य भाग कौन से हैं ?' में 'भाग' को सम्मान दिया गया है तथा 'कौन-से मुख्य भाग हैं ?' में 'संख्या' को सम्मानित किया गया है।

वास्तव में प्रश्नकर्ता का यह हार्द नहीं। वह तो यह पूछना चाहता है कि 'हैं' और 'होते हैं' क्रियाओं के अर्थों में क्या अन्तर है ? पाणिनि भगवान् ने भी इन अर्थों का भेद नहीं खोला। स्यात् वे समझते हों कि इन दोनों का बहुत अधिक प्रयोग होता है। इसलिए प्रसिद्धि होने के कारण प्रयोग से ही इनके अर्थों का बोध हो जाएगा। उनसे पूछा गया कि 'भू' धातु का अर्थ क्या है ? उत्तर मिला 'सत्ता'। सत्ता शब्द 'अस्' धातु से बनता है। अच्छा, 'अस्' धातु का क्या अर्थ है ? उत्तर मिला 'भू'। ['भू'=सत्तायाम्, 'अस्= भुवि']

यह तो वैसी ही बात हुई कि एक लड़के ने अपने चोर मामा से कहा कि मुझे चोरी करना सिखा दो। मामा रात को उसे अपने साथ ले गया। चोरी कर चुकने के बाद वह लड़के को वहीं बाँध कर चला आया। सबेरे लोगों ने उसे पकड़ कर पीटना शुरू किया और पूछा 'तुझे किसने यहाँ बाँधा है ?' उत्तर मिला 'जो साथ लाया था।' फिर पूछा—'साथ कौन लाया था ? उत्तर मिला 'जिसने बाँधा है'। 'भू' का क्या अर्थ है ? 'अस्' और 'अस्' का क्या अर्थ है ? 'भू'।

अर्थ के भेद की बात थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दें तो इनके रूप का भी भेद-ज्ञान नहीं होता। 'भविष्यति' 'अभूत' 'बभूव' ये रूप दोनों धातुओं के='अस् और 'भू' के बनते हैं।

ऐसी स्थिति में हिन्दी ने अपना मार्ग निकाल लिया। 'अस्' का अर्थ 'है' कर लिया और 'भू' का अर्थ 'होता है' कर लिया। अर्थात् जहाँ केवल सत्ता का बोधन करना हो वहाँ 'है' का प्रयोग करें तथा जहाँ सत्ता के साथ उत्पत्ति का भाव भी हो वहाँ 'होता है' का प्रयोग करें। 'घट: अस्ति'= 'घड़ा है'। 'घटो भवति'='घड़ा होता है'। घर में घड़ा है। मिट्टी से घड़ा होता है। जो आदमी समझता नहीं 'वह मूर्ख है' और जो बिना बुलाए किसी के यहाँ जाता है 'वह मूर्ख होता है'। कारण कि वे लोग उससे बात नहीं

करेंगे। यदि बात करेंगे भी तो गले के तले से नहीं करेंगे। उपेक्षा का भाव दिखाएँगे। उसे बुद्धू बनाएँगे।

इस दृष्टि से जब कोई पूछता है कि 'मनुष्य के शरीर के मुख्य भाग कौन-से हैं ?' तब उन भागों का नाम निर्देश कर देना चाहिए तथा जब पूछता है कि 'मनुष्य के शरीर के मुख्य भाग कौन-से होते हैं ? तब उनके मुख्य होने के कारण भी बता देने चाहिएं।

[यह आवश्यक नहीं कि प्रश्नकर्ता को 'हैं' और 'होते हैं' के भेद का ज्ञान भी हो। इसलिए प्रश्न के अङ्क देखकर उत्तर देना चाहिए। यदि प्रश्न का अङ्क १ एक है तो केवल शरीर के मुख्य-मुख्य भागों का निर्देश कर देना चाहिए। यदि प्रश्न के अंक १० दस हैं तो उन अङ्गों की मुख्यता के कारण भी बता देने चाहिए]।

(त) 'कौन' शब्द के स्थान में ही 'किस' आदेश होता है। [आदेश शत्रु की भाँति तथा आगम मित्र की भाँति होता है।] 'किस' और 'कौन' दोनों का एक ही अर्थ है। इसलिए 'दिल्ली किस नदी के किनारे बसी हुई है' तथा 'दिल्ली कौन-सी नदी के किनारे बसी हुई है' दोनों प्रयोग शुद्ध तथा सही हैं। किन्तु अवधारणार्थक या निश्चयार्थक 'सी' शब्द ने दूसरे वाक्य में थोड़ी-विशेषता पैदा कर दी। 'किस' शब्द में सामान्य प्रश्न का भाव है; तथा 'कौन-सी' शब्द में प्रश्न के साथ-साथ निर्धारण का भाव रहता है; जैसे—(क) 'कौन पुस्तक चाहिए' ? तथा (ख) 'इनमें से कौन-सी पुस्तक चाहिए'। यदि कोई विदेशी व्यक्ति विदेश में गए हुए किसी भारतीय से पूछता है तो वह 'दिल्ली किस नदी पर बसी हुई है ?' ऐसा पूछेगा। परन्तु यदि एक भारतीय दूसरे भारतीय से—जिसे गंगा, सिन्धु सरस्वती, नर्मदा, कावेरी आदि नदियों के नामों का ज्ञान है—पूछेगा कि 'दिल्ली कौन-सी नदी पर बसी हुई है ?' आदि।

(थ) 'जाने के लिए तैयार हैं' और 'जाने को तैयार हैं' दोनो प्रयोग शुद्ध हैं। 'जाने के लिए' अर्थ में 'को' प्रत्यय हो जाता है; जैसे—राम के लिए या राम को भोजन दो' सम्प्रदान कारक में दोनों प्रयोग चलते हैं; वैसे ही—इसकी देखादेखी—कृदन्ती अव्यय के भी दोनों प्रयोग चला लिए गए 'जाने के लिए या जाने को'। यह संस्कृत का 'गन्तुम्' 'कर्तुम्' वाला कृदन्ती अव्यय है। कुछ विद्वानों ने इसे 'कर्ता' में 'को' मान लिया है जो अत्यंत अशुद्ध है। इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। कुछ लेखक 'कर्ता' और 'सम्प्रदान' दोनो में 'को' विभक्ति-चिह्न जोड़ देते हैं। यद्यपि वह व्याकरण

की दृष्टि से अशुद्ध नहीं, तो भी उसमें अर्थ-विषयक सन्देह पैदा हो जाता है; जैसे—भारत को जापान को अन्न देना चाहिए। इसमें यह विदित नहीं होता कि 'भारत जापान को अन्न देगा' या 'जापान भारत को अन्न देगा।' इसलिए यदि भारत जापान को अन्न देगा तो लिखना चाहिए कि 'भारत को जापान के लिए अन्न देना चाहिए' और यदि जापान भारत को अन्न देगा तो लिखना चाहिए कि 'जापान को भारत के लिए अन्न देना चाहिए।' 'हम जाने को तैयार हैं ? या हम जाने के लिए तैयार हैं' इन दोनों में से कोई भी शब्द प्रयुक्त कर सकते हैं। यह तो लेखक की या वक्ता की रुचि पर निर्भर है।

—

४

निज भाषा-उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

यह बात सत्य है कि एक समय हम पराधीन थे; चाहे हम भीरुता के कारण पराधीन हुए हों चाहे पराधीनता के कारण भीरु हुए हों। एक तन की पराधीनता होती है एवं दूसरी मन की पराधीनता। तन की परतन्त्रता की निवृत्ति के लिए—तन की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए—शस्त्र-प्रहारों की आवश्यकता पड़ती है और मन की परतन्त्रता की निवृत्ति के लिए—मानसिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए—शास्त्रीय विचारों की आवश्यकता होती है। ऊँचे विचार किसी भाषा के माध्यम से ही एक दूसरे तक पहुँचाए जाते हैं। हमारा राष्ट्र (भारतवर्ष) संख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरे स्थान पर आता है। इसमें अनेक प्रान्त हैं। प्रत्येक प्रान्त की अपनी-अपनी एक बोली या भाषा है। उस भाषा या बोली में अपना अपना साहित्य है और वह सदा रहेगा। तब तक रहेगा जब तक हम हैं।

सभी प्रान्तों के मान्यवर नेताओं ने अपने देश की—राष्ट्र की—स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तन-मन-धन की बाजी लगा दी। उनके आह्वान पर आबाल-वृद्ध स्वतन्त्रता-युद्ध में कूद पड़े। उस समय के हमारे नेताओं ने प्राप्त स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए—एकात्म भावना जागृत रखने के लिए—एक भाषा की आवश्यकता अनुभव की। वह भाषा ऐसी होनी चाहिए जो किसी एक प्रान्त की न हो तथा लिखने-बोलने में सरल एवं वैज्ञानिक हो। ऐसी भाषा एक हिन्दी ही है। कुछ लोग हिन्दी को उत्तर प्रदेश की भाषा मानते हैं। यह बात तो ऐसी है जैसे गांधी जी को इंग्लैण्ड का मानना। पहले तो हिन्दी किसी प्रान्त की भाषा ही नहीं। यदि हो भी तो किसी और प्रदेश की हो सकती है, उत्तर प्रदेश की तो बिलकुल ही नहीं। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उत्तर प्रदेश के उच्च कोटि के कुछ विद्वान् अभी तक 'हाथी आती है', 'रानी

साहब जाता है', 'उस पाठशाले में',' प्रत्ययें लगनी चाहिए', 'कै वजी है' आदि बोलते ही नहीं, लिखते भी हैं। तो हिन्दी किस प्रान्त की भाषा है ? हिन्दी किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं। यदि है तो सभी प्रान्तों की है। कारण कि सभी प्रान्त इसके हैं। हाँ, उत्तर प्रदेश वालों ने इसे अपना लिया है। यदि हम भी इसे अपना लेंगे तो यह हमारी बन जाएगी। वास्तव में हम लोगों ने ही इसे पहले अपनाया था। परन्तु राजनैतिक लोगों के दाँव-पेच में आकर हम किसी दूसरी दिशा में चल पड़े। क्या स्वामी दयानन्दजी, महात्मा गांधी आदि गुजराती नहीं थे ? क्या लोकमान्य तिलक, बी० जी० खरे विनोबा भावे, काका कालेलकर आदि महाराष्ट्रीय नहीं ? क्या बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, न्यायाधीश श्री शारदा-चरण मित्र आदि बंगाली नहीं थे ? राष्ट्रीय गीत क्या किसी उत्तरप्रदेशीय का बनाया हुआ है ? प्रान्त-प्रान्त एवं घर-घर में गीयमान 'जय जगदीश हरे' आरती के लेखक पं० श्रद्धाराम फिलौरी, पद्मश्री रामचन्द्रजी वर्मा आदि, तथा इन पंक्तियों का लेखक क्या पंजाबी नहीं ? यदि हैं तो फिर कैसे कह सकते हैं कि हिन्दी किसी एक प्रान्त की भाषा है।

दूरदर्शी सहृदय लोगों को यह देखकर दुःख हो रहा है कि महाभारत काल में खण्ड-खण्ड हुए भारतवर्ष को गोपी-वल्लभ ने अखण्ड भारत बनाया था। बाद में विभक्त भारत को गुजराती-वल्लभ ने एक विशाल भारत बनाया। परन्तु अब गांधी-वल्लभ पुनः इसके खण्ड-खण्ड करते चले जा रहे हैं। सत्ता के आगे सत्य कुचला चला जा रहा है। कुर्सी के लिए कल्याण का बलिदान किया जा रहा है। यह कल्याणकारी स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती। अस्तु।

जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि और जहाँ न जाए कवि वहाँ जाए अनुभवी। अब अनुभवियों की वाणी सुनिए—"मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा समझने और बोलने लग जाएँगे"—महर्षि दयानन्द सरस्वती। "निज भाषा-उन्नति अहै सब उन्नति को मूल"—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। "यदि हिन्दी को समग्र भारत में सामान्य भाषा बना दिया जाए तो एकता की समस्या का सहज रूप में समाधान हो सकता है।" केशव-चन्द्रसेन। 'आवश्यक है कि हम भाषा के प्रश्न को देश का महान् प्रश्न समझें। क्योंकि जिनकी भाषा मृत उनके आदर्श मृत और जिनके आदर्श मृत वह जाति भी मृत'—माखनलाल चतुर्वेदी।

साहित्य ही सर्वस्व देश का, उसका मूल्य गिरा देना।
सिर काटने से बेहतर है, सिर का जरा फिरा देना।

—राष्ट्रभाषा-पतंजलि।

एक बार श्री विनोवाजी से मैंने कहा—बाबा, जब मैं गीता के प्रवचन में आपका नाम ले लेता हूँ तब पुराने संस्कारों के श्रोता नहीं आते। वे बोले—'एक आदमी ने इस दृष्टि से एक मन्दिर बनाया कि सब लोग एक स्थान पर आएँ। एक जाति के लोग तो आने लगे; पर दूसरी जाति के लोग नहीं आए। फिर उसने मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनवा दी। अब दूसरी जाति के लोग तो आने लग पड़े, परन्तु पहली जाति के लोग आने बन्द हो गए। फिर उसने मस्जिद तोड़कर टट्टीघर बनवा दिया। अब सभी लोग आने लगे'। मैंने फिर कहा कि मेरी समझ में कुछ नहीं आया। वे बोले—'कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसमें सब आ सकें—सबका भला हो।'

मैंने देखा कि हमारे इस विशाल राष्ट्र में कहीं मन्दिर और कहीं मस्जिदें, कहीं गिरजाघर और कहीं गुरुद्वारे, कहीं वेदभवन और कहीं विहार हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोग उनमें जाते हैं तथा अपनी-अपनी भूख मिटाते हैं। जैसे बिना रुचि और भूख के भोजन में रस नहीं आता, वैसे बिना रुचि और भूख के भजन में भी रस नहीं आता। रुचिभेद तथा भूखभेद प्राणियों में बना ही रहेगा। धर्म भिन्न, त्योहार भिन्न एवं तीर्थ भिन्न हैं। धर्म, त्योहार, तीर्थ आदि ही विविध प्रान्तीय विविध भाषाभाषी जनता को एकता के सूत्र में बाँधते हैं, अर्थात् भावात्मक एकता पैदा करते हैं। भेद में अभेद दिखाते हैं। जो धर्म आदि झगड़े की जड़ काटने के लिए प्रचलित हुए थे वे ही अब झगड़े की जड़ सिद्ध हो रहे हैं। हमारी भावनात्मक एकता को शिथिल कर रहे हैं। अब आवश्यकता है उस चीज के प्रचार की जो चीज हमारी भावात्मक एकता को जागृत रख सके। वह चीज है—'राष्ट्रभाषा'।

५

नवीने भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्

माता के हम पर अनन्त उपकार हैं। इसलिए वह श्रद्धेय है और पूज्य है। संस्कृत भी हमारी मातृस्थानीया है पूजा और श्रद्धा की वस्तु है। हम उससे विमुख हो गए। परदेशी प्रेयसी के पीछे पागल बन गए। "अब ही ते ये चेरे भए दुलही के" हो गए। दुलहिन ने दौलत का लालच दिया। पद-प्रतिष्ठा बढ़ाने लगी। हमारे इतिहास को उलट-पलट कर बिगाड़ने लगी। हम उसका गुण-गान करने लगे। उसी के बन बैठे। किसी ने सावधान किया तो बोलने लगे—"अजी, संस्कृत तो अत्यन्त कठिन है। ऋषियों को तो खाना-पहनना भी नहीं आता था।" आदि आदि। वास्तव में देखा जाए संस्कृत उतनी कठिन भाषा नहीं जितनी लोग बतलाते हैं। जब हम सात समुद्र पार की भाषा सीख जाते हैं तब हम क्या अपनी ही भाषा नहीं सीख सकते? जितना समय दूसरी भाषाएँ सीखने के लिए देते हैं क्या उतना संस्कृत सीखने के लिए दिया? यदि नहीं दिया तो फिर यह आरोप क्यों? मैं दावे से कह सकता हूँ कि आप किसी अन्य प्रान्तीय व्यक्ति को अपने प्रान्त की भाषा सिखाएँ और मैं उसे संस्कृत सिखाऊँगा। वह अन्य भाषा की अपेक्षा संस्कृत पहले सीख जाएगा। परन्तु लालच बहुत बुरी बला है। टका 'गुरूणां गुरुः' है। बहुत कम व्यक्ति होते हैं जो टके की अपेक्षा अपनी अधिक कीमत करते हैं। पढ़ा-लिखा नवयुवक-दल बुरी तरह अंग्रेजी पर लट्टू हो गया। मिस्टर मेकाले की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उसकी भविष्यवाणी सत्य हो गई कि भारतीय काले होते हुए भी अन्दर से गोरे बन जाएँगे। अर्थात् अंग्रेजी के गुलाम हो जाएँगे। "अर्थस्य पुरुषो दासः, अर्थो दासो न कस्यचित्" पैसा बाप बन बैठा।

यह मानसिक दासता भारत के पूज्य नेताओं को अखरने लगी। उन्होंने इस दल को उधर से रोका। समझाया कि जिन चीजों की तुम भूरि-भूरि प्रशंसा करते हो वे चीजें तुम्हारे घर में हैं। एक बार अपना घर तो देखो।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी चालीस साल की लम्बी साधना से 'सरस्वती' द्वारा हृदय-पटल पर जमे उस मल को धो डालने में पाणिनि का-सा काम किया। इसलिए आप राष्ट्रभाषा हिन्दी के 'आद्य' आचार्य माने जाते हैं। आपके इस सारस्वत प्रवाह में स्नातक होकर निकले अनेक स्वनामधन्य पुरुष-पुंगव हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आदि इस घरेलू द्विवेदी विद्यापीठ के ही स्नातक थे। सर्वश्री हरिभाऊ उपाध्याय, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि भी आचार्य द्विवेदीजी के ही अन्तेवासी हैं। ये लोग जागे। राष्ट्र-सेवा के कार्य में जुट गए।

परन्तु सोने और मचला बनने में बहुत अन्तर है। सोए हुए को जगाया जा सकता है, किन्तु मचले हुए को—जो जान-बूझकर झूठ-मूठ आँखें मूँद कर लेटा पड़ा हो—जगाना कठिन है। उसे तो यमराज ही जगाएगा। 'शिक्षा-आयोग' क्या अप्रतिबुद्ध है? उसका प्रतिवेदन क्या दुरभिसन्धि से रिक्त है? जिसके विषय में राजस्थान के राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द ने कहा है—'ऐसे प्रतिवेदन को फाड़ कर फेंक देना चाहिए, जिसमें देश की संस्कृति और भावात्मक एकता के लिए कोई भी स्थान नहीं। उन्होंने वेदों के अध्ययन पर विशेष बल दिया।' (नवभारत टाइम्स २३ दिसम्बर १९६६)। क्या चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जी साधारण विद्वान् हैं जो राष्ट्रभाषा का विरोध कर रहे हैं? क्या उन्होंने 'रामो द्विर्नाभिभाषते' नहीं बाँचा? क्या वे अब और तब में भेद नहीं समझते? क्या उनके दो मुख हैं? अब क्या कहें इन अग्रेसरों से?

अब तो हमारा ध्यान भावी अग्रेसरों की ओर—वर्तमान पीढ़ी की ओर—होना चाहिए। इनमें ही भावात्मक एकता के संस्कार डालने चाहिए। क्योंकि राष्ट्र का भार इन्हीं के कन्धों पर आनेवाला है। प्रान्तीय कटुता का प्रचार करनेवालों से इन्हें सावधान करना चाहिए। शैशव अवस्था में जो संस्कार पड़ जाते हैं वे अन्त तक मिटाए नहीं जा सकते। यही कारण है कि जिनके पास अब सिन्ध प्रदेश नहीं रहा वे भी सिन्धी लिपि का आग्रह कर रहे हैं। यह ठीक है कि एक प्रदेश दूसरे प्रदेश की लिपि या भाषा क्यों अपनाए? मत अपनाइए। पंजाबी पंजाबियों की, बंगाली बंगालियों की, गुजराती

गुजरातियों की, मराठी मराठियों की, तत्तत् प्रदेश के नाम से व्यवहृत होने-वाली लिपियाँ या भाषाएँ मत अपनाएँ। परन्तु जो किसी एक प्रान्त की नहीं और जिसके सभी प्रान्त हैं। वह हिन्द की—भारत की 'हिन्दी' तो आपकी ही है। क्योंकि आप भारतीय हैं—हिन्द में हैं। सिन्धी शब्द से ही 'हिन्दी' शब्द बना है।

शैशव के संस्कार अपरिवर्तनीय होते हैं। एक वेदान्त सम्मेलन में एक मुख्यमन्त्री—जो संस्कृत, हिन्दी आदि के प्रौढ़ विद्वान् एवं लेखक हैं—भाषण कर रहे थे। उन्होंने कहा कि "उनका चर्चा चल पड़ा"। महामण्डलेश्वर स्वामी भागवतानन्दजी महाराज ने धीरे से मेरे कान में कहा—"निगम बाबा, ये चर्चा को पुंलिग क्यों बोल रहे हैं?" मैंने उत्तर दिया कि यह सब शैशव के संस्कारों का परिणाम है। बाल्य-अवस्था में ये उर्दू पढ़े हैं और उर्दू में 'चर्चा' शब्द पुलिग* है। परन्तु—"येनाऽकारि मुरारेरर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम्?" यह बीसियों बार उन्होंने पढ़ा होगा। सत्य है—"नवीने भाजने लग्नः, संस्कारो नान्यथा भवेत"=नए घड़े में एक बार तेल या घी डालकर देखिए, फिर धोते रहिए जीवन भर साबुन से, वह चिकनाहट दूर होने की† नहीं।

बाल-विवाह प्रचलन में लोग हेतु देते हैं कि "अमुक जाति के लोग कन्याओं को (कुमारियों को) उठाकर ले जाते थे और विवाहितों को छोड़ जाते थे। इसलिए उस जाति के लोगों ने बाल-विवाह की प्रथा चालू कर दी।" जहाँ इस बात से उन लोगों की जघन्यता एवं बर्बरता सिद्ध होती है वहाँ इन लोगों की कायरता भी इससे प्रगट होती ही है। प्रश्न होता है कि "वे विवाहितों को क्यों नहीं उठाते थे?" क्या उनमें इतनी मानवता थी? यदि थी तो छोटी-छोटी बच्चियों को क्यों उठा ले गए? मेरी समझ में तो यही आता है कि बाल्य-अवस्था में कैसे भी संस्कार पड़ जाएँ वे सदा के लिए स्थायी हो जाते हैं। वे संस्कार चाहे भाषा के हों चाहे भर्ता के। यही कारण था कि भारतीय पति-पत्नी का प्रेम-सम्बन्ध अच्छेद्य होता था। विदेशों में तलाक

---

* वास्तव में 'पुंलिग' न लिखकर 'पुलिग' लिखना चाहिए। कारण कि 'पु' में अनुस्वार का उच्चारण नहीं होता तथा यह 'पु' पुरुष शब्द का संक्षेप है।

† यहाँ 'चीज' शब्द लुप्त रहता है; जैसे 'मनकी करके छोड़ूँगा' में 'बात' शब्द।

क ी ला नें लगी रहती हैं। कारण कि वे सभी भुक्तभोगी होते हैं। 'साहित्य दर्पण' में एक श्लोक आया है। उसमें प्रेयसी उसी का स्मरण करती है जिससे पहले-पहल सम्पर्क हुआ है। "यः कौमारहरः स एव हि वरः" आदि।

इसलिए सरकार को चाहिए कि वह प्रान्तीय कटुता को दूर करने के लिए, भावात्मक एकाग्रता जागृत रखने के लिए, राष्ट्र की अभिरक्षा के लिए राष्ट्र के शिशुओं में राष्ट्रभाषा का प्रचार आरम्भ से ही करे। क्योंकि उस अवस्था में पड़े संस्कार मिटाने पर भी नहीं मिटते।

———

६

समानशील-व्यसनेषु सख्यम्

जैसे 'योगदर्शन के संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य में श्री स्वामी बालारामजी उदासीन 'विज्ञान भिक्षु' को, 'साहित्य दर्पण' की हिन्दी टीका 'विमला' में पं० शालिग्राम जी 'तर्कवागीश' को, 'महाकाव्य-संग्रह' की व्याख्या में महा-महोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी 'मल्लिनाथ' को, तथा 'अच्छी हिन्दी का नमूना' में पं० किशोरीदासजी वाजपेयी 'श्रीरामचंद्र वर्मा' को स्मरण करते हैं, वैसे मैं पं० किशोरीदासजी वाजपेयी का स्मरण नहीं करता। मैं तो इनका उसी प्रकार स्मरण करता हूँ जिस प्रकार विनोबाजी गीता की ज्ञानेश्वरी टीका का स्मरण करते हैं। विनोबाजी ने लिखा है कि "ज्ञानेश्वरी टीका मुझे इतनी प्यारी है कि यदि दोष भी दिखाने हों तो मैं उसी में से दिखाऊँगा"।

मेरी अपेक्षा वाजपेयी जी ने अधिक लिखा है और वाजपेयी जी की अपेक्षा वर्मा (रामचन्द्र वर्मा) जी ने अधिक लिखा है। यह बात वाजपेयी जी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में बाबू रामचन्द्र वर्मा का परिचय देते हुए स्वयं स्वीकार की है—"वर्माजी ने यदि मुझसे अधिक काम किया है, तो नाम-दाम में भी आगे रहे हैं"। आगे वहीं आपने लिखा है कि "ऐसा मतभेद तो हिन्दी के सभी भाषा-शास्त्रियों से मेरा है—मुझसे भी उनका मतभेद हो सकता है। परन्तु मतभेद रखने में नहीं, उसे प्रगट करने में सारस्वत महत्त्व है"। इन दोनो भाषा-शास्त्रियों के बनाए हुए पुल पर से मैं परले पार चला गया हूँ। यह बात इस पुस्तक से स्पष्ट सिद्ध हो जाएगी। प्रश्न होता है कि वर्मा जी की पुस्तक में से उदाहरण क्यों नहीं लिए गए? इसलिए कि उनके साथ मेरा समान ख्यान नहीं। मैंने वर्मा जी से पूछा कि आप 'दोहराना' 'दोपहरा' आदि क्यों लिखते हैं? उत्तर मिला कि "शिष्ट लोग ऐसा ही लिखते हैं, यह शिष्ट प्रयोग है।' वाजपेयी जी शिष्ट पर रुकने वाले

नहीं, विशिष्ट तक पहुँचना चाहते हैं। क्या गांधी जी शिष्ट नहीं थे ? वे बोला करते थे—'शबके पाश भगवान् पड़ा है।' यह बात आप शुक्रवार के दिन रेडियो पर सुन सकते हैं। वाजपेयी जी ऐसा कभी नहीं लिखेंगे। वे लिखेंगे 'दुपहरा' 'दुहरा' 'दुपट्टा' 'दुमंजिला' आदि। दूसरी बात वर्माजी अंग्रेजी के ज्ञाता हैं और मैं अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानता। उन्होंने इतना लिखा है कि जितना मैं बाँच भी नहीं सकता। वाजपेयी जी ने लिखा है कि 'ऐसे एकान्त-सेवी साधक प्रायः रूखे स्वभाव के होते हैं। परन्तु वर्मा जी इसके पूरे अपवाद हैं। वे सब ओर से मीठे ही मीठे हैं।' यह बात बिलकुल सत्य है कि जब कभी मैं उनसे मिला हूँ तभी 'भुज भरि लियो ह्वै उठाय' कर देते हैं। ऐसे स्नेहमूर्ति से—छलछिद्र छुओ नहीं से—कौन तर्क-वितर्क करे।

वाजपेयी जी के साथ मेरा सख्य है—समान ख्यान है। वे शर्मा हैं और मैं भी शर्मा था। वे 'शास्त्री' परीक्षा पास हैं और मैं भी पास हूँ। वे अंग्रेजी नहीं जानते और मैं भी अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानता। वे बहुत विस्तार से लिख नहीं सकते और मैं भी सूत्रशैली पसन्द करता हूँ। उनका व्याकरण और अलंकार शास्त्र पर पूर्ण अधिकार है और ये दोनो विषय मेरी भी समझ में आते हैं। उन्हें शब्द-चिंतन करने का व्यसन है और मुझे भी श्याम-चिंतन करने का व्यसन है। आदि आदि बहुत-सा समान ख्यान है। अस्तु।

वाजपेयीजी की 'अच्छी हिन्दी' के पृष्ठ ३७ पर लिखा है कि "उसको चार लड़के प्राप्त हुए' तथा 'उनको चार फल प्राप्त हुए' ठीक। यहाँ 'को' गलत नहीं है; ('है' नहीं चाहिए) क्योंकि 'कर्ता' कारक में 'को' विभक्ति लगी है। 'प्राप्त होना' क्रिया है। 'लड़के' कर्म है। क्रिया कर्मवाच्य यहाँ है।" तीसरा उदाहरण है—"मुझे अपने परिश्रम के फल में झंझटें, गालियाँ और फटकारें मिलीं"।

इस विवेचन के अनुसार तो "मैं उसको मिला" में भी 'को' कर्ता में सिद्ध हो रहा है। वास्तव में इन तीनो ही उदाहरणों में 'को' विभक्ति 'कर्ता' में नहीं आई। व्याकरण का सीधा-सादा एक नियम है कि वाक्य में पहले 'क्रिया' ढूंढ़ो। उस क्रिया के करनेवाले को 'कर्ता' तथा कर्ता की क्रिया का जिस पर प्रभाव पड़े उसे 'कर्म' समझो। 'उसको चार लड़के प्राप्त हुए' में 'प्राप्त होना' क्रिया है। प्राप्त कौन होते हैं ? लड़के। 'लड़के' कर्ता हैं। किसको प्राप्त होते हैं ? उसको। 'उसको' कर्म है। यहाँ 'लड़के' कर्ता, 'उसको' कर्म तथा 'प्राप्त हुए' क्रिया है। यह क्रिया 'कर्तृवाच्य' है।

'उनको चार फल प्राप्त हुए' में 'प्राप्त हुए' क्रिया। कौन प्राप्त हुए ?

फल। 'फल' कर्ता। किसको प्राप्त हुए ? उनको 'उनको' कर्म। यहाँ क्रिया कर्तृवाच्य है।

'मुझे अपने परिश्रम के फल में झंझटें, गालियाँ और फटकारें मिलीं' में भी 'मिलीं' क्रिया है। कौन मिलीं ? गालियाँ, झंझटें एवं फटकारें। ये कर्ता हैं। किसको मिलीं ? मुझे। 'मुझे' कर्म है। कर्तृवाच्य क्रिया है यहाँ। जैसे 'मैं उसको मिला' में है। 'मिला' क्रिया है। कौन मिला ? मैं। 'मैं' कर्ता है। किसको मिला ? उसको। 'उसको' कर्म है। यहाँ कर्तृवाच्य क्रिया है।

कौन का ? उत्तर कर्ता। किसको ? का उत्तर कर्म। किसने ? का उत्तर करण। किसके लिए ? का उत्तर सम्प्रदान। किससे या कहां से ? का उत्तर अपादान। किसका ? आदि का उत्तर सम्बन्ध। कहाँ या किस पर ? का उत्तर अधिकरण होता है। इस रीति से 'अच्छी हिन्दी' का उपरि लिखित-सारे-का सारा विवेचन गलत सिद्ध हो जाता है।

क्या हिन्दी में कर्ता में द्वितीया का 'को' कहीं नहीं आता ? नहीं आता, नहीं आता, नहीं आता। यदि नहीं आता तो 'राम को पढ़ना है', 'सीता को भोजन करना है', 'हमें' लड़कों को योग्य बनाना है' आदि वाक्यों में क्या 'कर्ता' में 'को' द्वितीया विभक्ति का नहीं ?

भाई, नहीं, नहीं, नहीं।

सुनिए—'मुझे राम को मिलना है' में जो 'को' विभक्ति चिह्न है। वह 'राम को पढ़ना है' में नहीं और न कभी होगा ही। बात क्या है ? संस्कृत में एक विशेष नियम है कि स्पृहा-रुचि-अर्थक धातुओं के कर्म में चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। जैसे—सामान्य नियम है कि कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है जब कर्ता में प्रत्यय आया हो।

'कपिः फलानि इच्छति'। यहां 'इच्छति' क्रिया है। कौन इच्छति ? कपि। कपि कर्ता है। क्या इच्छति ? फल। फल कर्म है। विशेष नियम है कि स्पृह आदि धातुओं के योग में कर्म में चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। यथा—'कपिः फलेभ्यः स्पृहयति'। परन्तु हिन्दी ने अपना एक नया विशेष नियम बना लिया कि कर्म में चतुर्थी विभक्ति नहीं होती, किन्तु कर्ता में चतुर्थी विभक्ति हो जाती है—इच्छा, चाहना, आदि अर्थ के योग में। जैसे —'राम को पढ़ना है' (राम को पढ़ना चाहिए) 'सीता को भोजन करना है' (सीता को भोजन करना चाहिए) 'हमें लड़कों को योग्य बनाना है (हमें लड़कों को योग्य बनाना चाहिए) आदि। परन्तु 'अच्छी हिन्दी' के 'उसको

चार लड़के प्राप्त हुए' 'उनको चार फल प्राप्त हुए, 'मुझे फटकारें मिलीं' उदाहरणों में 'चाह' धातु का योग है ही नहीं। अतः इन उदाहरणों में 'कर्ता' में 'को' विभक्ति-चिह्न बिलकुल ही नहीं।

जाना, करना, मरना, पढ़ना आदि चाहना-अर्थक हैं। क्योंकि ये सभी संस्कृत के 'अनीयर्' प्रत्यय के भाई-बन्द हैं। इसलिए इनके योग में 'कर्ता' में उपपद चतुर्थी विभक्ति का 'को' प्रत्यय आता है। जैसे—'मुझे वहाँ जाना है' 'मुझे यह काम करना है' आदि। कभी कभी कर्ता की अपनी इच्छा तो नहीं होती। परन्तु अन्य की प्रबल इच्छा होती है कि वह अमुक काम करे। वहाँ भी इन पदों के योग में कर्ता में 'को' विभक्ति चिह्न आ जाता है। जैसे—'राम को वहाँ जाना पड़ा'। यहाँ राम की तो जाने के लिए इच्छा नहीं थी। परन्तु भेजने वाले की प्रबल इच्छा थी कि 'राम वहाँ अवश्य जाए' तथा इच्छार्थक 'जाना' तो वाक्य में पड़ा ही है।

'मैंने उससे काम करने को कहा' में जो 'को' विभक्ति चिह्न है वह कृदन्ती अव्यय का है। जिसका पर्याय 'के लिए' होता है। आने को कहा=आने के लिए कहा। 'कहना' और 'मिलना' धातुओं के योग में 'को' और 'से' विभक्ति चिह्न आते हैं। जैसे 'मैंने उससे या उसको पढ़ने के लिए कहा'। जब कर्ता या कर्म में 'को' विभक्ति चिह्न हो तब कृदन्ती अव्यय के 'को' का प्रयोग नहीं करना चाहिए। व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी सुनने में अटपटा प्रतीत होता है। जैसे—'मैंने राम को पढ़ने को कहा' तथा 'राम को काम करने को जाना है, पहले वाक्य में 'राम को' कर्म है तथा दूसरे वाक्य में 'राम को' कर्ता में उपपद चतुर्थी है। इन वाक्यों में 'को' का दो बार उच्चारण श्रुति-मधुर नहीं। अतः 'मैंने राम को पढ़ने के लिए कहा' तथा 'राम को काम करने के लिए जाना है'। लिखना और बोलना चाहिए। शुद्ध तो 'राम को काम को करने को जाना है' भी है। परन्तु भद्दा लगता है।

(को)

१—'मैं राम को बुलाता हूँ'।
२—'राम को सुख हुआ'।
३—'राम पढ़ने को आएगा'।
४—'राम रात को जाएगा'।
५—'राम को यहाँ आना चाहिए'।

६—'राम को भोजन दो'।
७—'राम को नमस्कार है'।

पहले और दूसरे वाक्य में कर्म में 'को' विभक्ति चिह्न आया है। 'बुलाता हूँ' क्रिया है। कौन बुलाता है ? मैं। 'मैं' कर्त्ता है। किसको बुलाता है ? राम को 'राम' कर्म है।

'हुआ' क्रिया है। कौन हुआ ? सुख। 'सुख' कर्ता है। किसको हुआ ? राम को। 'राम' कर्म है। इतनी विशेषता और समझ लेनी चाहिए कि यदि आनेवाली चीज बाहर से आती है तो उसके साथ 'प्राप्त' शब्द का प्रयोग होगा। जैसे—'राम को चार फल प्राप्त हुए'। परन्तु सुख या दुःख बाहर से प्राप्त नहीं होता—बाहर तो सुख-दुःख के निमित्त होते हैं। सुख-दुःख तो आन्तरिक=मानसिक, हैं। अतः मानसिक विकारों के साथ 'प्राप्त' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—'राम को सुख हुआ' 'राम को दुःख हुआ' 'राम को बुखार हुआ' 'राम को गुस्सा आया' आदि। किन्तु यदि प्राप्त होने वाली वस्तु साकार है—आकारवाली है—तो दोनों प्रकार से लिख सकते हैं। जैसे—'राम को चार लड़के हुए' या 'राम को चार लड़के प्राप्त हुए' आदि। लड़के बाहर से प्राप्त नहीं हुए।

तीसरे वाक्य में जो 'को' है न वह कर्ता का है और न वह कर्म का है। वह तो कृदन्ती अव्यय का 'को' है। संस्कृत में इसे 'तुमुन्' कहते हैं। 'कर्तुम्' 'गन्तुम्' आदि इसके रूप हैं। इस 'को' चिह्न का 'के लिए' पर्याय है। जब उपपद चतुर्थी का 'को' चिह्न हो तब कृदन्ती अव्यय में 'को' नहीं लगाना चाहिए। जैसे—'राम को पढ़ने के लिए जाना है'। 'राम को पढ़ने को जाना है' श्रुतिमधुर नहीं।

चौथे वाक्य में जो 'को' चिह्न है। न वह अव्यय का है, न कर्ता में उपपद चतुर्थी का है और न कर्म का है। वह तो अधिकरण का है।

पाँचवें वाक्य में जो 'को' है। वह न कर्म का है, न कृदन्त अव्यय का है और न अधिकरण का है। वह तो कर्ता में उपपद चतुर्थी का 'को' है जो इच्छार्थक आना, जाना, खाना, करना आदि के योग में होता है एवं 'चाहिए' जिसका भावार्थ होता है। छठे वाक्य में जो 'को' है वह सम्प्रदान चतुर्थी का है। 'लिए' जिसका अर्थ है—राम को=राम के लिए। सातवें वाक्य में उपपद चतुर्थी का 'को' है।

निश्चित मत

कालवाची शब्दों के आगे कब 'में' और कब 'को' आता है ? इसका उत्तर—

१—बाल्य-अवस्था **में** नियमित खेलना चाहिए।

२—युवावस्था **में** शारीरिक बल की वृद्धि करनी चाहिए।

३—वृद्धावस्था **में** मानसिक निवृत्ति होनी चाहिए।

४—जीवन **में** शान्ति एवं प्रसन्नता का होना मुख्य बात है।

५—एक वर्ष **में** पुस्तक पूरी हो जाएगी।

६—एक महीने **में** काम बन जाएगा।

७—दो चार दिन में आ जाएगा।

८—रात **में** मत जाओ, खतरा है।

९—रात **में** तारे टिमटिमा रहे हैं। आदि।

ऊपर दिए उदाहरणों में 'में' विभक्ति चिह्न ही आएगा 'को' नहीं। कारण कि यहाँ कालवाची शब्द अपने-अपने पूरे नियत समय के वाचक हैं। उनमें से किसी एक अंश या हिस्से के वाचक नहीं। जहाँ अंश या हिस्से के वाचक होंगे वहीं 'को' विभक्ति चिह्न आएगा; जैसे—

१—कल को जाऊँगा ('कल में' नहीं होगा)।

२—रातको देखा जाएगा ('रात में' नहीं होगा)।

३—शाम को डाका पड़ा ('शाम में' नहीं होगा)।

'निशामुख' रात के आरम्भ का—पहले हिस्से का नाम 'शाम' है।

यद्यपि सकर्मक धातुओं के योग में कालवाची शब्द 'कर्म' प्रतीत होते हैं तथा क्रियार्थक संज्ञाओं के योग में वे 'कर्ता' प्रतीत होते हैं; तो भी उनमें (कालवाची शब्दों में) तत्तत् क्रिया करने की योग्यता नहीं। योग्यता के अभाव से 'कर्म' और 'कर्ता' की प्रतीति का बाध हो जाता है; जैसे—

१—मैं रात को पढ़ूँगा।

२—मैं रात को पढ़ाऊँगा। आदि वाक्यों में 'रात' पुस्तक की भाँति 'कर्म' प्रतीत हो रही है। परंतु 'रात' न तो पढ़ी जा सकती है और न ही पढ़ाई जा सकती है। इसलिए 'रात में 'कर्मत्व' की प्रतीति का बाध हो जाता है।

१—वहाँ रात को जाना है।

२—वहाँ रात को पढ़ाना है आदि वाक्यों में 'रात जाएगी' और 'रात पढ़ाएगी' इस प्रकार 'रात में' कर्ता की प्रतीति हो रही है। परन्तु 'रात'

में जाने और पढ़ाने की योग्यता नहीं। इसलिए 'रात' में कर्तृत्व की प्रतीति का बाध हो जाता है। अर्थात् 'रात' अधिकरण ही है।

कालवाची शब्दों के आगे जहाँ-जहाँ 'को' विभक्ति चिह्न लगता है, वहाँ-वहाँ उनका कोई एक अंश या हिस्सा ही वक्ता या लेखक को अभिप्रेत होता है। उस अंश या हिस्से का निर्देश वाक्य में कर भी देते हैं और नहीं भी करते; जैसे—

१—मैं रात को दस बजे जाऊँगा। (मैं रात को जाऊँगा)

२—मैं रात को नौ बजे आपके यहाँ आऊँगा। (मैं रात को आपके यहाँ आऊँगा)।

'आज तो आप यह कह रहे हैं, कल को कुछ और कहेंगे' में भी 'कल को' का अर्थ 'कल' का एक अंश या हिस्सा ही है। इसी प्रकार 'आज तो छोड़ देता हूँ, आगे को ऐसा कभी मत करना' में भी 'आगे को' का अर्थ है 'आने-वाले समय के किसी भी अंश या हिस्से में'।

'मैं एक मिनट में आता हूँ' में 'मिनट' का अंश या हिस्सा नहीं हो सकता। इसलिए 'मैं एक मिनट को आता हूँ' नहीं होगा। जो 'मिनट' के साठ सेकेंड माने हैं वे अव्यवहार्य हैं। 'सेकेंड' शब्द की उसके उच्चारण-काल में ही मृत्यु हो जाती है। हाँ, अतिशय शीघ्रता प्रगट करने के लिए इसका प्रयोग कर सकते हैं; जैसे—'मैं एक सेकेंड में आता हूँ' आदि।

'अच्छी हिन्दी' (पृष्ठ ४५)

"बच्चेवाली, इक्केवाला, पत्तेदार, डंडेबाज, बेचनेवाला, इत्यादि। इसी तरह छोटे-छोटे, बड़े-बड़े, छोटे-बड़े, इत्यादि समास हैं। बहुवचन बनाने में अन्तिम शब्द को ही 'विकरण' (ों) प्राप्त होगा, यदि परे कोई विभक्ति हो—'बड़े-बड़ों को देख लिया'। 'बड़ों-बड़ों को देख लिया' न होगा। हाँ, समास न करके 'बड़ों-बड़ों को देख लिया' और 'बड़ों-बड़ों से बाजी मार ले गया' यों पृथक्-पृथक् लिखा जाए तब कोई बात नहीं"। —वाजपेयीजी।

बच्चेवाली, इक्केवाला, पत्तेदार, डंडेबाज, बेचनेवाला, आदि में 'वाला' 'दार' आदि प्रत्यय हैं। प्रत्ययों के साथ पदों का समास कभी नहीं होता। यदि समास होता हो तो 'घोड़ेको' 'घोड़ेने' आदि सभी पद समस्त बन जाएँगे। क्योंकि पदों के आगे प्रत्यय रहते ही हैं। इसलिए प्रत्ययों का नहीं; किन्तु पदों का समास होता है।

'छोटे-छोटे' 'बड़े-बड़े' 'छोटे-बड़े' आदि शब्दों में भी बिलकुल ही समास नहीं। कारण कि एक ही विभक्ति में जितने समान रूप=एक-से रूप हों, उनमें से एक बाकी रह जाता है और दूसरों का लोप हो जाता है। यदि हम तीन लड़कों को बुलाना चाहते हैं तो 'लड़का लड़का लड़का को बुलाओ' नहीं होगा। किन्तु आगे के दो 'लड़का' शब्दों का लोप हो जाएगा तथा शेष बचे 'लड़का' शब्द के आगे बहुवचन का वाचक 'चिह्न' आ जायगा। लिखा और बोला जायगा—'तीन लड़कों को बुलाओ' आदि।

'छोटे-छोटे' 'बड़े-बड़े' शब्दों में समास है ही नहीं; किन्तु असमस्त पद हैं। यदि 'बड़ों-बड़ों को' 'अच्छी हिन्दी' के कथनानुसार समस्त पद मान लें तो प्रश्न पैदा होता है कि पहले 'बड़ों' शब्द में अनुस्वार कहाँ से आ गया? तो है क्या? जो है वही। वही क्या? वही 'द्विरुक्ति'। किसी शब्द पर जोर देने के लिए उसे दुहरा दिया जाता है। जैसे—सदा-सर्वदा, छोटे-छोटे, बड़े-बड़े, पकड़ो-पकड़ो आदि। देखिए—यहाँ पहले शब्दों पर अनुस्वार नहीं। क्योंकि आगे के शब्दों पर भी अनुस्वार नहीं। उन्हीं की द्विरुक्ति की गई है। 'बड़ों-बड़ों को देख लिया' में दूसरे 'बड़ों' शब्द पर अनुस्वार है। उसी की द्विरुक्ति की गई है। इसलिए पहले 'बड़ों' शब्द पर भी अनुस्वार ही होगा। अतः 'बड़े-बड़ों को' लिखना ही गलत है। 'बड़ों-बड़ों को देख लिया' लिखना और बोलना ही प्रवाह-पतित एवं शुद्ध है।

मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ कि क्या करूँ? यदि लिखता हूँ तो 'नागरी प्रचारिणी सभा' के 'हिन्दी शब्दानुशासन' आदि गलत होते हैं और यदि नहीं लिखता तो राष्ट्रभाषा हिन्दी का अहित होता है। श्री वाजपेयी जी ने व्याकरण सम्बन्धी जो-जो नई-नई उद्भावनाएँ की हैं। वे सब-की-सब गलत हैं। जिनके आधार पर उनके सभी ग्रन्थ='अच्छी हिन्दी' 'हिन्दी शब्दानुशासन' 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' 'हिन्दी शब्द मीमांसा' आदि खड़े हैं। जिन उद्भावनाओं के कारण वे मानते हैं कि 'हिन्दी का कोई व्याकरण तो था नहीं' (हि० श० मी० पृ० २४) 'पं० कामता प्रसाद गुरु के 'हिन्दी व्याकरण' के आधार पर ही बने थे। सब-के-सब गड़बड़ थे। हिन्दी सीखने-समझने में तो इनसे वैसी मदद मिलती न थी; पर गड़बड़ और मच जाती थी' आदि आदि। बाजपेयी जी की अभिनव ऊहनाओं को प्रामाणित मानकर नए व्याकरण लिखे जाने लगे। जैसे—'लिखता है' क्रिया पद है। इसमें 'लिख' मूल या मुख्य धातु है और 'ह' सहायक धातु है।' ('मानक हिन्दी व्याकरण' पृष्ठ ४९) तथा इसकी टिप्पणी—'है, हो, हैं, था, थे, थी, गा, गे, गी, आदि 'ह' धातु के ही रूप माने जाते हैं।' 'हिन्दी शब्द मीमांसा' के पृष्ठ १७ पर लिखा है कि

'लड़का पढ़ता है' 'लड़की पढ़ती है' कृदन्त क्रिया कर्ता या कर्म के अनुसार रूप, यदि भाववाच्य न हो' 'तूने ग्रन्थ पढ़े हैं, 'हमने ग्रन्थ पढ़ा है' यहाँ 'पढ़ा-पढ़े' तो कर्मवाच्य हैं कृदन्त;—परन्तु सहायक क्रिया तिङन्त कर्मवाच्य है 'है'। (हि० श० मी० पृ० ३८)

'है' सहायक क्रिया है या नहीं ?

'लड़का पढ़ता है' में 'है' को सहायक क्रिया माना है जो आज तक किसी व्याकरण ने नहीं माना। यह 'हिन्दी शब्द मीमांसा' की नई देन है आइए— इस पर विचार कीजिए—

पहली बात—सहायक क्रिया के आगे कालवाचक प्रत्यय लगते हैं, जैसे— 'वह पढ़ रहा है' 'पढ़ रहा था' 'पढ़ रहा होगा' आदि। 'वह पढ़ चुका है' 'पढ़ चुका था', 'पढ़ चुका होगा'। कई एक सहायक क्रियाएँ हों तो अन्तिम सहायक क्रिया के आगे कालवाची प्रत्यय लगेंगे। 'वह पढ़ता चला जा रहा है, पढ़ता चला जा रहा था, पढ़ता चला जा रहा होगा' आदि। परन्तु 'पढ़ता है' में जो 'है' सहायक क्रिया मानी है उसके आगे कालवाची प्रत्यय नहीं आते। 'वह पढ़ता है है' 'वह पढ़ता था था' 'वह पढ़ता होगा होगा' आदि लिखा और बोला नहीं जाता। इसलिए 'है' सहायक क्रिया नहीं।

दूसरी बात—जैसे सब धातुओं की क्रियार्थक सामान्य संज्ञाएँ बनती हैं; वैसे 'ह' या 'है' धातु की क्रियार्थक सामान्य संज्ञा नहीं बनती। खाना, पीना, बोलना, लेना, देना आदि क्रियार्थक संज्ञाएँ हैं; परन्तु 'हना' या 'हैना' क्रियार्थक संज्ञा नहीं बनती। 'उसका खाना, पीना, उठना, बैठना सबको अच्छा लगता है'। परन्तु उसका 'हना या हैना' जब होता ही नहीं तब अच्छा कहाँ से लगे ?

तीसरी बात—सहायक धातु का अन्य धातुओं के साथ प्रयोग करना कर्ता की—वक्ता की अपनी इच्छा के अधीन होता है। वक्ता चाहे सहायक क्रिया का प्रयोग करे चाहे न करे। जैसे 'वह पढ़ता है' या 'वह पढ़ रहा है'। परन्तु इस 'है' धातु की ऐसी स्थिति नहीं। इसका प्रयोग तो अवश्य करना ही पड़ता है। इसके प्रयोग के बिना काल-विषयक सन्देह बना ही रहेगा। जैसे 'वह पढ़ता' साकांक्ष वाक्य है। कालवाचक रूपों की आकांक्षा रखता है—'वह पढ़ता है' या 'वह पढ़ता था' आदि।

तो क्या 'है' सहायक धातु नहीं ?

बिलकुल ही नहीं। यह तो वर्तमान काल का वाचक 'है' प्रत्यय है। इसका बहुवचन 'हैं' है। भूतकाल का वाचक 'था' प्रत्यय है, उसका बहुवचन 'थे'

है एवं भविष्यत् काल का वाचक 'एगा' है जिसका बहुवचन 'एंगे' बनता है। जैसे 'पढ़ेगा, पढ़ेंगे' आदि।

वास्तव में धातु तो 'हो' है। जिसकी 'होना' क्रियार्थक संज्ञा बनती है। जिसके साथ सहायक क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे—'वहाँ ऐसा होता रहा है—रहा था—रहा होगा' आदि। 'मिट्टी से घड़ा होता है' में देखिए 'हो' धातु के साथ वर्तमान कालवाची 'है' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

'है' केवल प्रत्यय ही है ?

नहीं तो। 'है' प्रत्यय भी है और धातु भी। 'वह पुस्तक है' में 'है' स्वतन्त्र धातु है। एक इस धातु का प्रतिरूपक 'है' प्रत्यय भी है। जो वर्तमान काल का वाचक है। जैसे 'वह पुस्तक पढ़ता है' में 'है' प्रत्यय है; सहायक धातु नहीं; जैसा कि वाजपेयी मानते हैं।

आप किसी संस्कृत के विद्यार्थी से पूछें कि 'अस्' धातु का क्या अर्थ है ? वह उत्तर देगा 'भुवि'=होना। फिर पूछिए—'भुवि'='भू' का क्या अर्थ है ? वह उत्तर देगा—सत्ता=अस्=होना। फिर प्रश्न कीजिए—'भू' का भविष्यत्-काल वाची क्या रूप बनता है ? वह कहेगा—'भविष्यति'। फिर प्रश्न उठाइए—'अस्' धातु का भविष्यत् कालवाची क्या रूप बनता है ? उत्तर होगा 'भविष्यति'। वह बताएगा कि दोनो धातुओं का 'भविष्यति' रूप बनता है। 'अस्' को 'भू' आदेश हो जाता है। ठीक यही बात हिन्दी में है। संस्कृत 'अस्' को 'भू' आदेश कर लेती है और हिन्दी 'भू' को 'अस्' आदेश कर लेती है—बस इतना ही अन्तर है। संस्कृत में 'घटः अस्ति'=घड़ा है तथा 'मृदः घटो भवति'=मिट्टी से घड़ा होता है। हिन्दी में केवल सत्ता बोधित करने के लिए 'हो' धातु के स्थान में 'है' आदेश हो जाता है, जैसे—'पुस्तक है'। उत्पत्ति-सहकृत सत्ता का बोधन करना हो तो 'हो' धातु का प्रयोग होता है। जैसे 'दूध से दही होती है', 'मुझे इस बात का दुःख है', 'आपके इस व्यवहार से मुझे दुःख होता है'। भविष्यत् काल में संस्कृत की भाँति दोनों के एक-से ही रूप बनेंगे; जैसे—'वहाँ घड़ा है' का 'वहाँ घड़ा होगा' तथा 'मिट्टी से घड़ा होता है' का 'मिट्टी से घड़ा होगा'। 'है' एक आदेश रूप धातु है जो कहीं-कहीं 'हो' धातु के स्थान में आती है। इसलिए 'वह पढ़ता है' में वर्तमान कालिक 'है' प्रत्यय को सहायक धातु बताना कहाँ का अभिनव आविष्कार हुआ ?

'हिन्दी शब्द-मीमांसा' पृष्ठ ३८

'आप पुस्तकें लिखिए' में 'आप' बहुवचन है। कर्म 'पुस्तकें' भी बहुवचन; पर क्रिया 'लिखिए' एक वचन। यह तिङन्त भाववाच्य क्रिया है। कर्म की उपस्थिति में भी भाववाच्य।' यह खोज वाजपेयी की दृष्टि में अद्भुत है।

जिसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि 'राम ने रोटी खाई' और 'लड़की ने फल खाया' जैसे वाक्य 'कर्तृवाच्य' समझाए रटाए जाते थे। और 'हमने तुमको बुलाया' जैसे प्रयोग सामने देखकर भी 'व्याकरण' का नियम याद किया जाता था—'सकर्मक क्रियाओं के रूप भाववाच्य नहीं होते' इसी तरह की आधारभूत गड़बड़ें थीं।' [हि० श० मी० की भूमिका पृष्ठ (ग)]

आइए, इस पर विचार कीजिए। भाववाचक क्रिया के योग में तीनों पुरुषों (प्रथम-मध्यम-उत्तम) का प्रयोग होता है। जैसे-'तेन स्थीयताम्' 'त्वया स्थीयताम्' 'मया स्थीयतताम्' आदि।

कर्तृवाच्य,	भाववाच्य;	कर्मवाच्य;
।	।	।
१—अस्ति,	भूयते,	०
२—वदति,	०	उद्यते, ।
३—वहति,	उह्यते,	उह्यते, ।
४—तिष्ठति,	स्थीयते	०
५—पिबति,	०	पीयते, ।
६—यच्छति,	०	दीयते, ।

आदि संस्कृत में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य क्रियाएँ विरूप एवं क्लिष्ट हैं। कभी कभी तो यह भी विदित नहीं होता कि यह अमुक धातु का रूप है। 'अस्' का 'भूयते' 'वद्' का 'उद्यते' आदि उसी श्रेणी के रूप हैं। परन्तु हिन्दी अत्यन्त वैज्ञानिक भाषा है। इसने भाववाच्य एवं कर्मवाच्य दोनों प्रकार के रूपों को छोड़ दिया। 'मुझसे रहा जाता है' के स्थान पर 'मैं रहता हूँ' 'मुझसे खाया जाता है' के स्थान पर 'मैं खाता हूँ' 'मुझसे पढ़ा जाता है' के स्थान पर 'मैं पढ़ता हूँ' आदि सरल एवं सुखद प्रयोग चला लिए। परन्तु कर्ता की अशक्ति या असमर्थता प्रगट करने के लिए हिन्दी ने भाववाचक तथा कर्मवाचक क्रियाओं के प्रयोग अवश्य अपना लिए। जैसे—'मुझसे सोया नहीं जाता' तथा 'मुझसे खाया नहीं जाता' आदि।

भाववाच्य एवं कर्मवाच्य क्रिया के साथ तीनों पुरुषों का प्रयोग होता है, जैसे—'उससे सोया नहीं जाता' 'तुमसे सोया नहीं जाता' 'मुझसे सोया नहीं जाता' तथा 'उससे खाया नहीं जाता' 'तुमसे खाया नहीं जाता' 'मुझसे खाया नहीं जाता' आदि। अब इसी कसौटी पर हम 'उठिए' 'लिखिए' आदि क्रियाओं को कसते हैं—'वह उठिए' 'तू उठिए' 'मैं उठिए' तथा 'वह लिखिए' 'तू लिखिए' 'मैं लिखिए' आदि प्रयोग नहीं होते। यदि कहें कि

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य क्रियाओं के योग में कर्ता में 'ने' तृतीया विभक्ति का चिह्न आना चाहिए ? तो लीजिए—'उसने उठिए' 'तूने उठिए' 'मैंने उठिए' तथा 'उसने लिखिए' 'तुमने लिखिए' 'मैंने लिखिए' आदि प्रयोग ठीक हैं ? यदि कहें कि इन क्रियाओं के योग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न नहीं 'से' विभक्ति चिह्न आता है। वह भी सुन लीजिए 'उससे उठिए' 'तुझसे उठिए' 'मुझसे उठिए' तथा 'उससे लिखिए' 'तुझसे लिखिए' 'मुझसे लिखिए' आदि प्रयोग होते हैं ?। उत्तर साफ है कि नहीं होते। फिर प्रश्न उठता है कि क्यों नहीं होते ? राष्ट्रभाषा-पतंजलि का कहना है कि 'उठिएं' 'बैठिए' 'कीजिए' 'लीजिए' आदि सब रूप भाववाच्य या कर्मवाच्य बिलकुल ही नहीं। कारण कि हिन्दी भाववाच्य तथा कर्मवाच्य अटपटे रूप ग्रहण हीं नहीं करती।

तथ्य एवं तत्त्व यह है कि 'उठिए' 'लिखिए' आदि रूप भाववाच्य या कर्मवाच्य कदापि नहीं; किन्तु विध्यर्थक हैं। आदर देने के लिए इनका प्रयोग होता है। 'भवन्त:'='आप' इनका 'कर्ता' है। जैसे—'आप उठिए' 'आप बैठिए' 'आप लिखिए' 'आप कीजिए' 'आप दीजिए' आदि। 'आप के अतिरिक्त दूसरा कोई कर्ता इनका नहीं हो सकता;—जैसे—'तुम कीजिए' 'हम कीजिए' 'वे कीजिए' आदि। यदि आदर न देना हो तो 'आप उठें' 'आप लिखें' 'आप करें' आदि प्रयोग होंगे। यदि अधिक आदर करना हो तो आदरार्थक 'इए' के आगे 'गा' लगा देना चाहिए। जैसे—'आप उठिएगा' 'आप लिखिएगा' 'आप कीजिएगा' 'आप दीजिएगा' आदि सभी रूप बहुवचन कर्तृवाच्य हैं तथा इनका कर्ता है 'आप'। पता नहीं 'हिन्दी शब्दमीमांसा' इन्हें 'भाववाच्य' कैसे बतला रही है ?।

'चाहिए'

'यह 'चाहिए' भी 'इए' प्रत्यय से भाववाच्य सहायक क्रिया है—सदा एक रस रहती है' (हि० श० मी० पृष्ठ ३९)।

आइए, इस पर भी जरा विचार कर लीजिए। सहायक क्रिया के आगे वर्तमान कालिक 'है' प्रत्यय आता है, जैसे 'वह पढ़ रहा है' 'वह खा चुका है' आदि। परन्तु 'पुस्तक चाहिए है' आदि प्रयोग नहीं होते। क्योंकि यह सहायक धातु है ही नहीं।

जैसे 'चाहिए' सहायक धातु नहीं; वैसे यह भाववाच्य क्रिया भी नहीं। कारण कि जैसे भाववाच्य एवं कर्मवाच्य क्रियाओं का निषेध स्थल में कर्ता की असमर्थता प्रगट करने के लिए प्रयोग होता है—'मुझसे सोया नहीं जाता,

एवं 'मुझसे पढ़ा नहीं जाता' जैसे 'चाह' धातु का प्रयोग नहीं होता। 'मुझसे चाहा नही जाता' ऐसा न कोई लिखता है और न कोई बोलता है। कारण कि जैसे 'पढ़ना' 'लिखना' आदि क्रियाओं में बाह्य इन्द्रियों का आँख, वाणी, हाथ आदि का उपयोग होता है। वैसे 'चाहना' में—इच्छा में—किसी बाह्य इन्द्रिय का उपयोग नहीं होता। 'सोना' क्रिया में भी 'आँखे मूँदना' 'खाट पर लेटना, आदि क्रियाएँ होती ही हैं। परन्तु 'चाहना' में तो किसी प्रकार की बाह्य क्रिया की अपेक्षा ही नहीं होती। कारण कि 'चाह'=इच्छा, मानसिक विकार है—मानसिक परिणाम है। जब 'चाह' धातु का 'मुझसे चाहा नही जाता।' ऐसा भाववाचक प्रयोग ही नहीं होता तब उसका भाववाच्य 'चाहिए' क्रिया रूप कैसे हो जायगा? इसलिए 'चाहिए' न तो सहायक धातु है और न भाववाच्य क्रिया ही।

'चाहिए' पर विशेष विचार

प्रामाणिक कोशों में 'चाहिए' पद को अव्यय माना गया है तथा 'हिन्दी शब्दानुशासन' में इसे भाववाच्य क्रिया माना है। परंतु विचार करने पर दोनो बातें ठीक नहीं बैठतीं। 'चाहिए' को अव्यय इसलिए नहीं मान सकते कि अव्यय के आगे=अव्यवहित उत्तरवर्ती 'हो' धातु के आदेश भूत 'है' 'था' 'थी' आदि रूप नहीं आते। किंतु 'चाहिए' के आगे 'उसे ऐसा करना चाहिए था, आदि में 'था' क्रिया अव्यवहित उत्तरवर्ती है। यदि कहें कि जैसे 'यह पुस्तक राम के लिए है' में 'है' क्रिया 'लिए' अव्यय के अव्यवहित उत्तरवर्ती है; वैसे ही 'उसे ऐसा करना चाहिए था' में भी 'चाहिए' अव्यय के आगे 'था' क्रिया है?

अव्यय के साथ क्रिया का सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु कारक के साथ क्रिया का सम्बन्ध होता है 'यह पुस्तक राम के लिए है' में 'है' क्रिया पुस्तक रूप कर्ता से सम्बद्ध है। अतः 'राम के लिए यह पुस्तक है' या 'यह पुस्तक है राम के लिए' आदि लिखा जा सकता है। अर्थात् 'लिए' अव्यय से पृथक् 'है' क्रिया का प्रयोग कर सकते हैं। परंतु 'उसे ऐसा करना चाहिए था' प्रयोग में 'था' क्रिया को 'चाहिए' पद से अलग नहीं किया जा सकता। जैसे—'उसे ऐसा करना था चाहिए' 'उसे था ऐसा करना चाहिए' 'उसे करना था ऐसा चाहिए' आदि प्रयोग नहीं हो सकते। 'था' क्रिया 'चाहिए' पद के सदा उत्तरवर्ती ही रहेगी। जैसे 'उसे ऐसा करना चाहिए था' या उसे चाहिए था ऐसा करना, आदि वाक्यों में 'था' क्रिया 'चाहिए' पद के

अव्यवहित उत्तरवर्ती है। इसलिए 'चाहिए' पद को अव्यय नहीं मान सकते। क्योंकि क्रिया अव्यय के अव्यवहित उत्तरवर्ती नहीं होती।

तो, 'चाहिए' को भाववाच्य क्रिया मान लेना चाहिए ? परंतु ऐसा भी नहीं मान सकते। कारण कि सकर्मक धातुओं से भाव में प्रत्यय नहीं होते; किंतु अकर्मक धातुओं से ही भाव में प्रत्यय होते हैं।

यह नियम है कि जिसमें प्रत्यय होता है वह 'उक्त' कहलाता है। यदि कर्ता में प्रत्यय हो तो कर्ता 'उक्त' कहलाएगा, कर्म में प्रत्यय हो तो कर्म 'उक्त' तथा भाव में प्रत्यय हो तो भाव 'उक्त' कहा जाएगा। 'राम सोता है' तथा 'राम पुस्तक पढ़ता है' में 'सोना' अकर्मक तथा 'पढ़ना' सकर्मक धातु है। दोनो प्रयोगों में कर्ता में प्रत्यय है। 'कर्ता' राम है और यह 'उक्त' है। जिसके पेट में कर्म हो वह अकर्मक धातु कहलाती है, जैसे 'राम सोता है,' अर्थात् राम शयन करता है। 'शयन' कर्म है और वह धातु के पेट में है। 'राम पुस्तक पढ़ता है' में 'पुस्तक' कर्म है और वह धातु के साथ उच्चरित है। 'कौन' का उत्तर कर्ता होता है। कौन सोता है ? कौन पढ़ता है ? उत्तर है राम। राम कर्ता है। 'क्या' का उत्तर 'कर्म' होता है। 'क्या पढ़ता है' पुस्तक। पुस्तक 'कर्म है। जिस धातु के प्रयोग में क्या प्रश्न न उठ सके वह अकर्मक कही जाती हैं। जैसे 'सोता है' में 'क्या' प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए 'सोना' धातु अकर्मक है।

'राम चाहता है' में प्रश्न उठता है कि क्या चाहता है ? उत्तर होगा—पुस्तक, फल, सुख, आराम आदि। अत: 'चाह' धातु सकर्मक है। सकर्मक धातुओं से कभी भाव में प्रत्यय नहीं होता। अर्थात् सकर्मक धातु कभी भाववाच्य नहीं होती। इसलिए 'चाह' धातु से बना 'चाहिए' क्रिया रूप भी भाववाच्य सिद्ध नहीं होता।

दूसरा भी एक कारण है कि हिन्दी 'करण' में 'से' प्रत्यय लगाती है और कर्ता में 'ने', जैसे 'रथ से जाता है' 'कलम से लिखता है' आदि तथा 'राम काम किया' आदि। हिन्दी कर्म में कृदन्ती प्रत्यय लगा लेती है। कर्म 'उक्त' बन जाता है तथा कर्ता 'अनुक्त'। भूतकालिक अनुक्त कर्ता में 'ने' प्रत्यय आता है—जैसे 'राम ने पुस्तक पढ़ी' आदि। उक्त कर्ता में कोई प्रत्यय नहीं आता' जैसे—'राम सोया आदि। इतना और विवेक कर लेना चाहिए कि "यदि कर्म के साथ 'को' प्रत्यय हो तो क्रिया सदा एक वचन तथा पुंलिग ही रहेगी", जैसे 'राम ने लड़के को पढ़ाया' 'राम ने लड़की को पढ़ाया' आदि। यदि 'को' प्रत्यय न हो तो 'राम ने लड़का पढ़ाया' 'रामने लड़की पढ़ाई' ही होगा।

'राम: पठति'=राम पढ़ता है। 'रामेण पठ्यते'=राम से पढ़ा जाता है। 'राम: स्वपिति'=राम सोता है। 'रामेण सुप्यते''=राम से सोया जाता है। हिन्दी ने श्रुतिमधुर 'राम सोता है' 'राम पढ़ता है' आदि कर्तृवाच्य रूप अपना लिए और 'राम से सोया जाता है', 'राम से पढ़ा जाता है' आदि भाववाच्य एवं कर्मवाच्य रूप छोड़ दिए—नहीं अपनाए। कारण कि 'से' प्रत्यय सुनने में अच्छा नहीं लगता तथा यह सदा करण के आगे आता है। इसकी भूमि नियत है। 'सेठ से नौकर से काम कराया जाता है' 'अध्यापक से विद्यार्थी से पत्र लिखाया जाता है' आदि प्रयोग भद्दे लगते हैं। इसलिए हिन्दी ने कर्ता के साथ कर्मवाच्य तथा भाववाच्य क्रियाओं के रूपों का प्रयोग सर्वथा छोड़ दिया। किन्तु कृदन्ती कर्मवाच्य क्रिया के साथ कर्ता का प्रयोग होता है; जैसे 'राम ने ग्रन्थ पढ़ा', 'राम ने पुस्तक पढ़ी'। 'पढ़ा और पढ़ी' ये कर्मवाच्य क्रियाएँ हैं 'ग्रन्थ' और 'पुस्तक' कर्म हैं।

क्या हिन्दी में कर्मवाच्य एवं भाववाच्य रूप नहीं होते ? हाँ, कर्ता के साथ कभी नहीं होते किंतु कर्ता के प्रयोग के बिना खूब चलते हैं तथा श्रुति-मधुर भी लगते हैं; जैसे—'हमारे यहाँ व्याकरण पढ़ाया जाता है', 'इस विद्यालय में संगीत सिखाया जाता हैं' आदि में 'शिक्षकों से' कर्ता का साथ प्रयोग नहीं किया गया। इसी प्रकार 'यहाँ अच्छा सोया जाता है' आदि।

'चाह' धातु सकर्मक है, जैसे—'राम पुस्तक चाहता है'। इसका कर्म-वाच्य रूप होगा 'चाहिए'। अत: 'चाहिए' कर्मवाच्य क्रिया है' भाववाच्य नहीं। 'राम को पुस्तक चाहिए' तथा 'राम को पुस्तकें चाहिए' आदि में 'चाहिए' एक वचन ही रहेगा' 'चाहिएँ' बहुवचन नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि 'चाहिए' क्रिया के आगे वर्तमान वाचक 'है' तथा भविष्यत्-वाचक 'गा' प्रत्यय नहीं होते, जैसे—'राम को पुस्तक चाहिए है' तथा 'राम को पुस्तक चाहिएगी' आदि। इच्छा एक ही है, अत: सदा एकवचन 'चाहिए' ही रहेगा। स्मृति भूत की अर्थात् अतीत की होती है और इच्छा वर्तमान तथा भविष्यत् की। अत: 'चाहिए' क्रिया में वर्तमान तथा भविष्यत् दोनों अर्थ हैं। कुछ लोग 'चाहिए' क्रिया को विध्यर्थक क्रिया मान कर 'लड़का पढ़े' 'लड़के पढ़ें' आदि की भाँति 'पुस्तकें चाहिएँ' आदि लिख देते हैं' वह ठीक नहीं। कारण कि 'चाहिए' विध्यर्थक क्रिया ही नहीं। यदि विध्यर्थक क्रिया हो तो जैसे 'लड़का पढ़े था' 'लड़की पढ़े थी' रूप नहीं होते' वैसे 'चाहिए था' 'चाहिए थी' रूप भी नहीं होने चाहिए। परंतु ये रूप होते हैं। अत: 'चाहिए' विध्यर्थक क्रिया नहीं; किंतु कर्मवाच्य क्रिया है। कहीं तो वाक्य का वाक्य ही इसका कर्म होता है'राम को चाहिए कि वह बड़े पुरुषों की सेवा करे'। तीसरी बात यह है कि यदि हम 'चाहिए 'क्रिया

को विध्यर्थक मान लेते हैं तो कर्ता में कोई प्रत्यय नहीं आना चाहिए। जैसे 'राम पढ़े' 'सब पढ़ें' आदि में कर्ता के आगे कोई प्रत्यय नहीं लगता। परंतु 'राम को चाहिए' में तो कर्ता में प्रत्यय लगता है।

प्रश्न—आपने तो कहा था कि हिन्दी में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य क्रिया के योग में कर्ता का साथ प्रयोग नहीं होता। परंतु यहाँ तो कर्ता का साथ प्रयोग किया गया है ?

उत्तर—हमने तो 'से' प्रत्यय-सहित कर्ता के प्रयोग के विषय में कहा था यहाँ का कर्ता तो 'को' प्रत्यय-विशिष्ट है। हाँ, यह प्रश्न हो सकता है कि कर्ता में 'को' प्रत्यय कैसे हो गया ? इस प्रश्न का उत्तर हम पहले दे आए हैं कि इच्छार्थक करना, चलना, पढ़ना आदि के प्रयोग में कर्ता में सदा 'को' उपपद चतुर्थी विभक्ति का चिह्न आता है।

बात यह है कि 'राम को चाहिए' आदि में 'को' चिह्न द्वितीया विभक्ति का नहीं; किंतु यह चिह्न तो उपपद चतुर्थी विभक्ति का है। इच्छा-योग्य आदि अर्थक शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता में चतुर्थी विभक्ति आ जाती है। 'चाहिए; इच्छार्थक कर्मवाच्य क्रिया है ही। अतः 'राम को चाहिए'='अर्थात् राम के लिए योग्य है' राम के लिए आवश्यकता, जरूरत आदि है, प्रयोग होते हैं। संस्कृत के 'अनीयर्' प्रत्यय के अपभ्रंश या उससे बने हुए या तदर्थक करना, पढ़ना, लिखना आदि सामान्य क्रियार्थक संज्ञाओं में 'चाहना' 'योग्य' 'उचित' आदि अर्थ रहता ही है। इसलिए इनके योग में अनुक्त कर्ता में चतुर्थी विभक्ति का 'को' चिह्न आता है। 'राम को जाना है'=राम के लिए जाना योग्य है। 'मुझे पढ़ना है'=मेरे लिए पढ़ना उचित है। किंतु निर्विभक्तिक उक्त कर्ता के योग में 'राम जाना चाहता है' 'मैं पढ़ना चाहता हूं' 'राम देता है' आदि प्रयोग बनेंगे। जैसे 'देना' धातु के योग में सम्प्रदान चतुर्थी आती है—'राम को दीजिए' या 'राम के लिए दीजिए'। वैसे ही 'राम को चाहिए' या 'राम के लिए चाहिए' आदि प्रयोग होते हैं। किंतु 'राम को उठिए' 'हमें बैठिए' 'राम को पढ़िए' आदि नहीं होते।

"हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गई, तब अहिन्दी-प्रदेश हिन्दी व्याकरण की माँग बराबर करने लगे, करते ही गए। तब मैंने 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' लिख कर प्रकाशित कराया। इससे एक बहुत बड़ा अन्धकार दूर हुआ। अहिन्दी भाषी प्रदेशों को सन्तोष हुआ"। [हि. श. मी. पृष्ठ भूमिका (ङ)]

'एक बहुत बड़ा अन्धकार' क्या था ? [यद्यपि अन्धकार 'छोटा-बड़ा' नहीं होता; किन्तु थोड़ा-बहुत होता है फिर भी था जरूर] वह यह था कि सभी

पढ़े-लिखे लोग 'बनाया' को कर्तृवाच्य क्रिया कहते थे। 'हिन्दी शब्द-मीमांसा' ने यह अन्धकार दूर कर दिया कि "हिन्दी में, कर्म की उपस्थिति में भी 'भाव-वाच्य' क्रियाएँ होती हैं—'पाल-पोस कर माँ ने बेटी को इतना बड़ा बनाया' यहाँ कर्ता 'माँ' और कर्म 'बेटी' दोनों स्त्री-लिंग हैं। परन्तु क्रिया 'भाववाच्य' 'बनाया'। (पृष्ठ ७३)

यद्यपि सचाई के लिए लम्बाई की आवश्यकता नहीं होती; तो भी इस पर पृष्ठ के पृष्ठ लिख डाले हैं। आइए, इस पर भी थोड़ा विचार कीजिए।

जैसे 'उठिए' 'बैठिए' 'लीजिए' 'दीजिए' 'कीजिए' आदि क्रियाएँ भाव-वाचक नहीं; वैसे ही 'बनाया' आदि क्रियाएँ भी भाववाचक नहीं। कारण कि भाववाच्य तथा कर्मवाच्य क्रियायों के योग में कर्ता में कभी 'ने' विभक्ति चिह्न नहीं आता। किन्तु 'से' विभक्ति चिह्न आया करता है, जैसे—'मुझ से यह ग्रन्थ पढ़ा नहीं जाता' (कर्मवाच्य) तथा 'मुझ से यहाँ सोया नहीं जाता' (भाववाच्य) आदि। परन्तु यहाँ तो 'माँ ने' कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न है।

दूसरी बात यह है कि निषेध-स्थल को छोड़कर हिन्दी भाववाचक तथा कर्मवाचक दुरूह क्रियाओं से सदा दूर ही हटती चली आई है। इतना ही नहीं, कर्तृवाच्य क्रियाओं के भी वर्तमान कालिक अत्यन्त सरल सुबोध 'पठति'=पढ़ता है, 'चलति'=चलता है, 'खादति'=खाता है, 'करोति'=करता है; आदि रूप तो ले लिए; परन्तु 'लिट्, लुङ्' आदि भूतार्थक लकारों के 'पपाठ—अपाठीत्' 'चकार—अकार्षीत्' 'चखाद—अखादीत्' आदि रूप छोड़ दिए। उनके स्थान पर सरल सुवाच्य कृदन्त क्रियाओं का ग्रहण कर लिया। जैसे—'मया ग्रन्थः पठितः'=मैंने ग्रन्थ पढ़ा, 'मया ग्रन्थाः पठिताः'=मैंने ग्रन्थ पढ़े, आदि। एक अपना नया विशेष नियम बना लिया कि 'यदि कर्म के साथ 'को' विभक्ति चिह्न हो तो भूतकालिक क्रिया सदा एक वचन तथा पुलिंग रहेगी' जैसे—'मैंने ग्रन्थ को पढ़ा' तथा 'मैंने ग्रन्थों को पढ़ा'। यदि 'कर्म' का 'को' उड़ा दिया जाए तो कर्म के अनुसार ही लिंग-वचन होंगे। जैसे—'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' 'मैंने ग्रन्थ पढ़े', तथा 'मैंने पुस्तक पढ़ी', 'मैंने पुस्तकें पढ़ीं' आदि। भूतकालिक सकर्मक क्रिया के योग में 'कर्ता' में सदा 'ने' विभक्ति चिह्न आया करता है तथा भूतकालिक अकर्मक क्रिया के योग में कभी नहीं आता, जैसे—'मैं सोया' 'मैं हँसा' 'मैं गया' आदि। संस्कृत में 'गम्' धातु सकर्मक है तथा हिन्दी में 'जा' धातु अकर्मक है।

तीसरी बात यह है प्रेरणार्थक सभी धातुएँ सकर्मक होती हैं। 'पढ़ाया' 'बनाया' आदि प्रेरणार्थक सकर्मक धातुओं के रूप हैं। सकर्मक धातुओं से

भाव में प्रत्यय कभी नहीं आता। फिर 'बनाया' 'पढ़ाया' आदि भाववाच्य रूप कैसे कहला सकते हैं ?

देखिए—'लड़की पढ़ती है और मैं लड़की को पढ़ाता हूँ', 'लड़की ने पढ़ा और मैंने लड़की को पढ़ाया' तथा 'लड़की योग्य बनती है और माँ लड़की को योग्य बनाती है' 'लड़की योग्य बनी और माँ ने लड़की को योग्य बनाया इसी प्रकार 'लड़की बड़ी बनती है और मां लड़की को बड़ी बनाती है' तथा 'लड़की बड़ी बनी और माँ ने लड़की को बड़ा बनाया'। जब भूतकाल में लड़की रूप कर्म के आगे 'को' विभक्ति चिह्न आया तब झट 'बनाया' क्रिया पुंलिग तथा एकवचन बन गई। 'बड़ा' शब्द क्रिया का विशेषण है—इसलिए उसमें भी पुंवाची एकवचन हो गया। विभक्ति का 'को' चिह्न दूर होते ही 'माँ ने लड़की बड़ी बनाई' ही प्रयोग निष्पन्न होगा। अतः यह नियम सदा ध्यान में रहना चाहिए कि "यदि कर्म के साथ 'को' लिभक्ति चिह्न हो तो भूतकालिक क्रिया सदा एकवचन तथा पुंलिग रहेगी और यदि 'को' विभक्ति चिह्न उड़ा दिया जाए तो कर्म के अनुसार ही लिंग और वचन होंगे"।

'होओ' ठीक या 'हो' ?

"तुम निराश मत हो, काम बन जाएगा' में 'हो' गलत है। 'तुम कपड़े धोओ' बहुवचन है। 'तू कपड़े धो' एक वचन है। 'तुम' के साथ 'होओ' रहेगा 'तू' के साथ 'हो'। हाँ, वर्तमान काल के बहुवचन में जरूर 'हो' मध्यम पुरुष का बहुवचन है—'तुम मूर्ख हो'। 'तुम विद्वान् हो' ठीक; पर आशीर्वाद में 'तुम विद्वान् होओ' ठीक" [हि. श. मी. पृष्ठ ४१]

यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से 'होओ' ही बनना चाहिए। तो भी भाषा-प्रवाह प्रबल होता है। 'किया' का स्त्रीलिङ्ग रूप 'कियी' होना चाहिए और ऐसा ही निखिल-शास्त्र-निष्णात श्रीस्वामी बालरामजी उदासीन ने अपने हिन्दी 'योगभाष्य' में लिखा भी है। 'मैंने सेवा की' के स्थान पर 'मैंने सेवा करी' अब तक चलता आ रहा था। परन्तु हिन्दी बहुत ही वैज्ञानिक भाषा है। यह सुखद उच्चारण को पसंद करती है। 'कियी' के उच्चारण में जीभ दो क्षणों के लिए तालु से चिपकी रहती है। क्योंकि 'य्' का तालु उच्चारण स्थान है और 'ई' का भी। उच्चारण में असुविधा होती है। अतः हिन्दी ने 'कियी' का पहले 'य्' लोप करके तथा फिर स्त्री-प्रत्यय 'ई' का सवर्ण-दीर्घ करके 'की' रूप बना लिया। इसी प्रकार 'लिया' का स्त्री-लिंग 'ली, 'पिया' का स्त्री-लिंग 'पी' एवं 'दिया' का स्त्रीलिंग 'दी' आदि भूतकालिक क्रियाएँ बना लीं।

यहाँ भी 'तुम कपड़े धोओ' आदि में एक साथ दो 'ओ'कार आ जाते हैं। दोनों का कण्ठोष्ठ स्थान है। बोलने में—उच्चारण करने में दो क्षणों के लिए आघात-सा लगता है। इसलिए हिन्दी ने 'धो+ओ=धो, 'हो×ओ=हो, आदि रूप बना लिए। हाँ, एकाक्षरी ये क्रियाएँ छोटी अवश्य हैं। वाक्य समाप्ति पर जो बल आना चाहिए वह नहीं आता। वाक्य निर्बल-सा रहता है, जैसे—'तुम निराश मत हो' 'तुम कपड़े धो' 'उससे बात की' 'मैंने छाछ पी' 'मैंने पुस्तक ली' आदि के स्थान पर साहित्य-मर्मज्ञ 'तुम कपड़े धो लो 'तुम निराश मत बनो' 'उससे बात कर ली या कर ली गई' 'मैंने छाछ पी ली' 'मैंने पुस्तक ले ली 'आदि रूप लिखते और बोलते हैं।

'एक बड़े साहित्यिक बन्धु को बोलते सुना 'सदा काल से ऐसा होता है' क्या पुनरुक्ति कोई गलती नहीं ? जो प्रबुद्ध जन कर रहे हैं' (हि० श० मी० पृष्ठ ४७)।

यहाँ मैंने पूरे-का-पूरा उद्धरण जान-बूझकर नहीं दिया। कारण कि उसमें कटु और कड़े शब्द हैं। हिन्दी में ही नहीं, किन्तु संस्कृत में भी ऐसे प्रयोगों में पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता। प्रातःकाल, सायंकाल आदि का प्रयोग होता है। यद्यपि 'प्रातः' और 'सायं' शब्द काल के ही वाचक हैं, फिर भी इनके साथ 'काल' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'सोमवार के दिन आऊँगा' सभी लिखते और बोलते हैं। 'वार' और 'दिन' एकार्थक ही हैं। 'हिन्दी शब्द-मीमांसा' ने भी 'सोचा मैंने उषः काल में मां का भवन सजाऊँ' प्रयोग किया है। 'काल' एक अखण्ड समय का वाचक है। उसके खण्ड करने के लिए—उसका व्यवच्छेद करने के लिए प्रातः, सायं, उषः आदि शब्दों का प्रयोग करना दोषरहित है तथा प्रवाह-पतित है। शब्द पर बल देने के लिए भी समानार्थक शब्द का प्रयोग कर देते हैं, जैसे—'सदा-सर्वदा ऐसा ही चलता रहेगा क्या ?' आदि आदि।

'अपढ़' या 'अनपढ़' ?

'हिन्दी शब्द-मीमांसा' के पृष्ठ ५३, ५६, पर लिखा है—"मातृसेवा जैसे शब्द अपढ़ किसान मजदूर भी समझ लेते हैं" "अपढ़ जनों में" "साधारण अपढ़ जनता"।

पहले भी एक बार इस शब्द पर चर्चा चल चुकी है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में 'अनपढ़, शब्द लिख दिया था। संस्कृत पण्डित लोग इस पर एक साथ टूट पड़े। 'अपढ़' लिखा

जाना चाहिए—ऐसा सिद्ध किया। वास्तव में देखा जाए तो 'अपढ़' लिखना और बोलना ही गलत है। कारण कि हिन्दी एक स्वतन्त्र भाषा है। इसकी अपनी सरल एवं सुबोध स्वतन्त्र पद्धति है। संस्कृत हलादि शब्दों के 'नञ्' समास में 'ञ्' का लोप कर देती है और बाकी 'अ' रह जाता है। जैसे—अब्राह्मण, अमूल्य, अज्ञान आदि। स्वरादि शब्दों के 'नञ्' समास में 'अन' कर देती है, जैसे—अनीश्वर, अनादर, अनुपम, आदि। हिन्दी ने संस्कृत की 'अन' वाली पद्धति अपना ली। चाहे हलादि शब्दों का 'नञ्' समास हो चाहे स्वरादि शब्दों का 'नञ्' समास हो, हिन्दी सर्वत्र 'अन' ही लगाएगी। जैसे—अनपढ़, अनमोल, अनघड़, अनजान, अनखुला, अनहोनी, अनगिनत, अनचाहा, अनदेखा, अनपच, अनबन, अनमिल, अनरीत, अनहद, अनहितू आदि। 'अन' का प्रयोग हिन्दी अपने शब्दों—संस्कृत के तद्भव शब्दों—के आगे ही करती है। परंतु तत्सम शब्दों को ज्यों-का-त्यों संस्कृत से ले लेती हैं। जैसे—अपठित, अमूल्य, अज्ञान, अगोचर, आदि आदि। संस्कृत के 'पठित' शब्द से 'पढ़' शब्द बना है। अर्थात्—'पढ़' शब्द संस्कृत के 'पठित' शब्द का तद्भव है। इसलिए इसके आगे 'अन' ही आएगा, 'अ' नहीं। 'अपढ़' अशुद्ध है और 'अनपढ़' शुद्ध है।

'एक ही सा' या 'एक-सा ही' ?

'इन तीनों अक्षरों का उच्चारण एक ही सा होता है' (हिन्दी शब्द मीमांसा' पृष्ठ ६७)।

पद्मश्री रामचन्द्र वर्मा—अपनी पुस्तक 'शब्द और अर्थ में पृष्ठ ७८ पर लिखते हैं कि ''हिन्दी शब्द सागर' ने 'सा' अव्यय को संस्कृत के 'सादृश्य' अथवा 'सह' से व्युत्पन्न माना है, परन्तु मेरी समझ में यह सीधे 'सम्' या 'सम' से व्युत्पन्न है।''

अपने राम तो इसे 'समान' शब्द से बना हुआ मानते हैं। जब 'समान' शब्द पद के आदि में होता है तब इसके स्थान में 'स' आदेश हो जाता है और जब 'समान' शब्द पद के अन्त में होता है तब इसके स्थान में 'सा' आदेश हो जाता है। जैसे—समान जाति=सजाति, समान वर्ण=सवर्ण, आदि तथा एक समान=एक-सा, राम-समान=राम-सा, मुझ-सा आदि।

सादर, सप्रेम, सपरिवार आदि पदों में जो 'स' शब्द दिखाई दे रहा है; वह इस 'स' से भिन्न है। वह तो 'सह' शब्द से बना है और सह=साथ, उसका अर्थ है। जैसे—सादर=आदर के साथ, सप्रेम=प्रेम के साथ, सपरिवार=परिवार के साथ, आदि।

संस्कृत में भी 'एक-समानमेव' होता है, 'एकमेव समानम्' नहीं होता। इसलिए हिन्दी में भी 'एक-सा ही' बनेगा, 'एक ही सा' नहीं। दूसरी बात यह है कि 'ही' अव्यय के साथ समास ही नहीं होता। हाँ, जहाँ 'ही' अव्यय में विकार आ जाता है, सन्धि हो जाती है। वहाँ अवश्य समास हो जाता है; जैसे—कभी का, अभी का, तुम्हीं-सा, उसी का-सा, मुझी का-सा आदि। 'ही सा' में 'हिस्सा' की भ्रान्ति हो जाना भी सम्भव है। अतः 'एक ही सा' गलत है और 'एक-सा ही' शुद्ध।

'दिया तले' या 'दिए तले ?'

'हिन्दी शब्द मीमांसा' (पृष्ठ ९९) 'दिया तले अँधेरा' लिखने की पक्षपाती हैं। परन्तु लिखना चाहिए—'दिए तले अँधेरा' कारण कि यहाँ 'दिए' शब्द के आगे की 'के' विभक्ति लुप्त रहती है, 'दिए के तले अँधेरा' वाक्य होता है। हिन्दी उसे 'दिए तले अँधेरा' बना लेती है। यह हिन्दी की प्रकृति है—इसका स्वभाव है। जैसे—'हरिद्वार जाकर लिखूँगा' में 'में', 'पढ़ने जाऊँगा' आदि में 'के लिए' तथा 'हाथ कंगन को' में 'में' विभक्ति चिह्न लुप्त रहते हैं। वैसे ही 'दिए तले' में 'के' विभक्ति चिह्न लुप्त रहता है, जैसे—'हाथ-कंगन' में समास नहीं माना जाता, वैसे 'दिया तले' में समास नहीं माना जाएगा। 'हाथ कंगन' को समास मान लेनेपर तो 'हथगोला' की भाँति 'हाथ' का 'हथ' बन जाएगा। 'दिया तले' में समास मान लेने से ह्रस्व की आपत्ति तो नहीं आती। किन्तु 'विधेयाविमर्श' दोष अवश्य आपन्न हो जाएगा। कारण कि समास में विधेय अर्थ गौण हो जाएगा। 'दिए के' ही विधेय अर्थ है। जो 'दिया' प्रकाश करता है उसी के तले अँधेरा! आश्चर्य है। 'तले' के आगे का 'विभक्ति चिह्न भी लुप्त है। पूरा वाक्य इस प्रकार है—'दिए के तले में अँधेरा'। परन्तु हिन्दी ने इसे झाड़-पोंछकर बना लिया 'दिए तले अँधेरा'। हल्का और श्रवण-सुखद।

'के' 'रे' 'ने'

'हिन्दी शब्द मीमांसा' में पृष्ठ ११० पर लिखा है—'हिन्दी में 'का' 'रा' 'ना' को विभक्ति समझा जाता रहा है। 'भेदक' के अनुसार इनके बहुवचन 'के' 'रे' 'ने' तथा स्त्रीलिंग 'की' 'री' 'नी' रूप बतला कर भी इन्हें विभक्ति कहा जाता रहा है! सो गलती है। ये सम्बन्ध प्रत्यय हैं, तद्धित प्रत्यय हैं, जो सम्बन्ध प्रगट करते हैं। 'के' 'रे' 'ने' हिन्दी की सम्बन्ध विभक्तियाँ हैं जो भेदक के अनुसार बदलती नहीं; जैसे—'अपने चार गौएँ हैं' 'तुम्हारे एक

भैंस हैं', 'राम के चार बकरियाँ हैं' आदि। ये 'के' 'रे' 'ने' विभक्तियाँ लोगों को अज्ञात थीं। इसलिए झमेला था और लोग कुछ-का-कुछ कहते थे।'

इस वर्णन में तो बेचारी 'हिन्दी शब्द मीमांसा' ही झमेले में पड़ गई। क्योंकि कभी तो वह 'के' 'रे' 'ने' को तद्धित प्रत्यय बतलाती है और कभी विभक्तियाँ बतला रही है।

"उदाहरण दिए हैं—

१—राम के बगल में गोविन्द रहता है।

२—राम के लड़की हुई।

३—गोविन्द के लड़का हुआ।

४—राम के चार गौएँ हैं।

५—अपने चार गौएँ हैं।

६—तुम्हारे एक भैंस है।

७—उनके एक बैल है।

८—राम के चार बकरियाँ हैं।

९—तेरे एक लड़की है।

१०—राम के बाईं ओर।

११—तेरे दाहिनी ओर।

११—गोविन्द के चारो ओर आदि आदि।"

पता नहीं क्यों 'के' 'रे' 'ने' को विभक्ति सिद्ध करने के लिए 'हिन्दी शब्द मीमांसा' ने छह-सात पृष्ठ लिख मारे हैं? बहुत ही दूर की दुरूह कल्पना की है। परन्तु ऐसा करने से हिन्दी का अपना सरलता का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। जब संस्कृत का शास्त्री भी इसे नहीं समझ पाता तब हिन्दी के छात्र तो सब क्या समझेंगे?

जैसे १—न (क) कटा। २—क (र) मण्डलु। ३—मान (स) सरोवर। ४—च (र) म रस। ५—अबकी (बार) जरूर आऊँगा, आदि वाक्यों में कोष्टान्तर्गत (कोष्टक में आए हुए) वर्ण और पद विलुप्त रहते हैं। जैसे 'मथुरा निकल गया' में (स्टेशन) 'मथुरा देख लिया' में (शहर या नगर), 'अपने रास्ते जाता है' में (पर) विलुप्त पद स्वीकार किए हैं या उनका अध्याहार माना है' वैसे ही :

१—राम के (घर की) बगल में गोविन्द रहता है।

२—राम के (यहाँ या घर) लड़की हुई।

३—गोविन्द के (यहाँ या घर) लड़का हुआ।

४—राम के (पास या घर) चार गौएँ हैं।

५—राम के (घर की) बगल में गोविन्द रहता है।
६—अपने (यहाँ या घर) चार गौएँ हैं।
७—तुम्हारे (यहाँ या घर) एक भैंस है।
८—उनके (यहाँ या घर) एक बैल है।
९—राम के (यहाँ या घर) चार बकरियाँ हैं।
१०—तेरे (यहाँ या घर) एक लड़की है।
११—राम के (घर की) बाईं ओर।
१२—तेरे (शरीर की) दाहिनी ओर।
१३—राम के (शरीर की) बाईं ओर।
१४—गोविन्द के (शरीर की) दाहिनी ओर।
१५—राम के (शरीर की) चारो ओर।
१६—देवकी के (गर्भ से) लड़का हुआ।

आदि में कोष्ट में के पद विलुप्त रहते हैं। अथवा इनका अध्याहार करना पड़ता है। यही हिन्दी की सरल सरणी है। क्लिष्ट कल्पना हिन्दी की प्रकृति के प्रतिकूल है।

पृष्ठ ११३

'हिन्दी के महान् साहित्यिकों ने प्रयोग किए हैं—'कश्यप और अदिति प्रणाम करते हैं' ही शुद्ध है।' (हिन्दी शब्द मीमांसा)

यहाँ किसी साहित्यिक की महिमा का प्रसंग या प्रश्न नहीं। यहां प्रश्न है कि 'अदिति और कश्यप प्रणाम करते हैं' होना चाहिए ?। क्योंकि गुरु होने से—पूज्य होने से 'सीताराम' 'राधा-कृष्ण' 'गौरी-शंकर' की भाँति 'अदिति' का पूर्व प्रयोग होना चाहिए। शास्त्रों ने पिता के गौरव की अपेक्षा माता का गौरव दसगुना अधिक बतलाया है—'पितु र्दशगुणं माता, गौरवे णाति रिच्यते'। वेद भगवान् ने भी पहले 'मातृदेवो भव' ही कहा है और बाद में 'पितृदेवो भव' कहा है। व्याकरण के नियमानुसार भी अल्पाच् 'छोटा शब्द' होने से 'अदिति' शब्द का ही पूर्व प्रयोग होगा। जो तुलसीदास के 'देखि रूप मोहे नर-नारी' वाक्य का प्रमाण दिया है। वह भी हमारी ही बात की पुष्टि करता है। अल्पाच् होने के कारण ही 'नर' शब्द का पूर्व प्रयोग हुआ है। यहां 'सब' शब्द का अध्याहार करना पड़ता है। परन्तु सूरदासजी के पद्य में तो 'सबै' पद साक्षात् पढ़ा है। 'सबै ग्वाल-गोपी मुरझाए'। इसलिए वह नियम अभीतक ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है जिसका 'हिन्दी शब्द मीमांसा' ने खण्डन किया है। वह नियम है—'यदि वाक्य में

अनेक कर्ता कारक हों तो अन्तिम कर्ता के अनुसार क्रिया के लिंग-वचन आदि होते हैं।' अतः 'कश्यप और अदिति प्रणाम करते हैं' अशुद्ध है तथा 'अदिति और कश्यप प्रणाम करते हैं' ही शुद्ध है।

क्या 'भोजन करना' एक क्रिया है ?

'हिन्दी शब्द मीमांसा' लिखती हैं कि 'रामसे भाषण करना मैं अच्छा नहीं समझता' यहां 'भाषण करना' में 'भाषण' कर्म नहीं। 'भाषण करना' (इतनी) एक क्रिया है। 'मैं आपसे भाषण न करूँगा'—मतलब 'मैं आपसे न बोलूँगा'। 'भाषण करना'-बोलना, बातचीत करना। 'मैं भोजन करता हूँ' में केवल 'करता है' क्रिया नहीं। 'भोजन' कर्म नहीं। 'भोजन करना' एक क्रिया है आदि।"

मैं वाजपेयी जी के राष्ट्रभाषा प्रेम पर, उनके निरन्तर चिन्तन पर तथा उनकी बाल-सुलभ सरलता पर अत्यन्त मुग्ध हूँ। कारण कि जैसा वे सोचते हैं वैसा ही निष्कपटभाव से प्रगट कर देते हैं। किन्तु भाषा में अवश्य प्रखरता आ जाती है।

उनके मनमें है कि 'मैं कथा श्रवण करता हूँ', 'मैं व्यथा अनुभव करता हूं', 'मैं पुस्तक अर्पण करता हूँ' आदि में यदि 'श्रवण' 'अनुभव' 'अर्पण' कर्म मान लिए जाएँगे तो 'मैं कथा का श्रवण करता हूँ', 'मैं व्यथा का अनुभव करता हूँ', 'मैं पुस्तक का अर्पण करता हूँ' आदि होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं। इसलिए 'श्रवण करता हूँ' आदि इतनी लंबी लंबी क्रियाएँ मान लेनी चाहिए।

ऐसा मान लेने पर तो 'मैंने कथा श्रवण की', 'मैंने व्यथा अनुभव की' 'मैंने पुस्तक अर्पण की' आदि की भाँति 'मैंने छाती उन्नमन की', 'मैंने पुस्तक पठन की' 'मैंने गंगा दर्शन की' आदि भी प्रयोग होने चाहिए। परन्तु ऐसे प्रयोग होते नहीं। इसलिए कोई और मार्ग निकालना चाहिए।

जैसे–'यह कोई विशिष्ट बात नहीं' तथा 'यह कोई विशेष बात नहीं' आदि लिखते और बोलते हैं, वैसे ही कुछ प्रयोगों को (जो चल पड़े हैं) शुद्ध मान लेना चाहिए। व्याकरण की दृष्टि से होना चाहिए कि 'मैंने पुस्तक का अर्पण किया'। परन्तु 'मैंने पुस्तक अर्पण की' 'मैंने व्यथा अनुभव की' 'मैंने कथा श्रवण की' आदि कुछ वाक्यों में की खटक निकल चुकी है। अतः इन्हें इसी प्रकार शुद्ध मान लेना चाहिए। किन्तु 'मैंने छाती उन्नमन की' 'मैंने पुस्तक पठन की', 'मैंने गंगा दर्शन की' आदि वाक्यों में खटक है।

इनके स्थान पर 'मैंने छाती उन्नत की' 'मैंने पुस्तक पढ़ी' 'मैंने गंगा के दर्शन किए' आदि प्रयोग ही श्रुति-मधुर हैं। 'मैंने पुस्तक पठन की' 'मैंने गंगा दर्षित या दृष्ट की' आदि प्रयोग अट-पटे हैं। इसलिए 'मैं भोजन करता हूं' में 'भोजन करता हूं' इतनी लंबी एक ही क्रिया नहीं। किन्तु 'करता हूँ' क्रिया है। कौन करता है ? मैं। 'मैं' कर्ता है। क्या करता है ? भोजन। 'भोजन' कर्म है। 'राम से भाषण करना मैं अच्छा नहीं समझता' में 'राम से' सह-अर्थक तृतीया है, 'राम के साथ' इसका अर्थ है। 'मैं' कर्ता है। 'भाषण करना' में 'करना' पुंवाचक सामान्य क्रियार्थक संज्ञा है। 'भाषण' के आगे की विभक्ति का 'का' चिह्न विलुप्त है। 'भाषण का करना' अर्थ है। इसी प्रकार 'मैं उससे बात करना चाहता हूँ' प्रयोग है। 'बात करना' में समास होने के कारण 'करना' क्रिया तो मुख्य हो गई। किन्तु 'बात' गौण पड़ गई। इसलिए 'बात' को मुख्य बनाने के लिए—बात पर जोर देने के लिए 'बात' का समास नहीं करना चाहिए। लिखना चाहिए—'मैं' उससे बात करनी चाहता हूँ' आदि। 'उससे बात करना लड़ाई मोल लेना है' में 'करना' क्रिया ही विधेय है और वही मुख्य है। इसलिए 'भोजन करता हूं' यह सात-अक्षरी एक क्रिया नहीं।

पृष्ठ १४७

'रेल चार घण्टों तक रुकी रही' तथा 'वह चार बरसों तक पढ़ता रहा' गलत है। 'रेल चार घण्टे तक रुकी रही' तथा 'वह चार बरस तक पढ़ता रहा' आदि वाक्य ठीक हैं।' (हिन्दी शब्द मीमांसा)

ये चारो ही वाक्य शुद्ध हैं। अन्तर इतना हैं कि जब संख्यावाचक 'चार' शब्द का 'घण्टे' या 'बरस' के साथ समास कर देते हैं तब 'चार घण्टे' 'चार बरस' ही बनेगा। जब 'चार' शब्द का समास नहीं करते तब 'चार घण्टों तक' 'चार बरसों तक' ही ठीक है। पहले के दो वाक्यों में 'घण्टा' और 'बरस' पर जोर है तथा दूसरे दो वाक्यों में 'चार' संख्या पर जोर है। वही विधेय है—मुख्य है। समास वाले वाक्यों में सरलता पैदा करने के लिए डैस (—) लगा देना चाहिए। 'चार-घण्टे' 'चार-बरस' तक आदि।

क्या 'इच्छानुसार' अव्ययीभाव समास है ?

'इच्छानुसार' पद पर 'हिन्दी शब्द मीमांसा' ने बहुत ही विचित्र कल्पना की है। 'इच्छानुसार' को अव्ययीभाव समास माना है। 'अनुसार' शब्द पुलिंग नहीं, यूं है वूं है आदि। परन्तु यह सब क्लिष्ट कल्पना एवं प्रौढ़ि है।

हिन्दी का तो अपना बहुत ही सुगम एवं सीधा मार्ग है। 'आपकी इच्छानुसार' में जो गड़बड़ प्रतीत हो रही है वह समास ने नहीं पैदा की। परंतु सवर्ण संधि ने पैदा कर रखी है। यदि संधिछेद कर दिया जाए—संधि हटा दी जाए, तो सब गड़बड़ दूर हो जाएगी। भ्रम का भूत भाग जाएगा। 'आपकी इच्छा (के) अनुसार' 'आपकी आज्ञा (के) अनुसार' 'आपकी मति (के) अनुरूप' 'तेरे (कथन के) अनुसार' 'मेरे (कथन के) अनुसार' 'अपने (बल के) अनुसार' 'रामके (स्थान से) उधर' 'सीता के (स्थान से) इधर' आदि वाक्यों को संक्षिप्त रूप से लिखते और बोलते हैं।

१—मति-अनुसार या मति-अनुरूप।

२—अपनी इच्छा-अनुसार।

३—आपकी आज्ञा-अनुसार।

४—तेरे अनुसार।

५—मेरे अनुसार।

६—राम के उधर।

७—सीता के इधर। आदि।

——

७

नागरी लिपि

जैसे 'भारत' इस नाम का सम्बन्ध कुछ लोग दुष्यन्त के पुत्र 'भरत' से जोड़ते हैं, कुछ लोग महाराज 'जड़ भरत' से तथा कुछ लोग राम के भाई 'भरत' से, वैसे ही 'नागरी' नाम का सम्बन्ध कुछ लोग गुजरात के 'नागर' ब्राह्मणों से, कुछ लोग तान्त्रिक यन्त्रों के 'देवनागर' चिह्नों से, कुछ लोग 'नाग लिपि' से, कुछ लोग वास्तु, शिल्प, चित्र कला आदि की 'नागर' शैली से तथा कुछ लोग उत्तर भारत की 'नगर' नामक (यह पाटिलपुत्र, अहिक्षेत्र, कान्यकुब्ज आदि में से कोई एक थी) प्रसिद्ध राजधानी से जोड़ते हैं।

कुछ भी हो, मोनियर विलियम्स देवनागरी को 'संसार की सर्वाधिक सुसंगत एवं पूर्ण वर्णमाला मानते थे'। यह एक सुज्ञात तथ्य है कि कुछ वर्ष पहले एक जर्मन विद्वान् ने इस दृष्टि से देवनागरी अक्षरों की परीक्षा की थी। उन्होंने अक्षरों के मिट्टी के पोले प्रतिरूप तैयार करके उनमें फूंक मारी थी और अ, इ, उ, तथा ए, इन चार अक्षरों को ठीक उनकी ध्वनि के अनुरूप पाया था। नेत्र-विज्ञान वेत्ताओं की मान्यता है कि 'शिरोरेखा देवनागरी की एक असाधारण वैज्ञानिक उपलब्धि है; क्योंकि इसके कारण दृष्टि-शिराएँ व्यतिरेक-जन्य आघात से मुक्त रहती हैं और इसके फलस्वरूप दृष्टि-दुर्बलता की सम्भावना पैदा नहीं होती'। 'इसकी वैज्ञानिकता इसे संसार भर की लिपियों में सर्वोच्च स्थान दिलाती है। भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि की उपयुक्तता न केवल उसकी वैज्ञानिकता के कारण है; बल्कि उन भाषाओं की लिपियों के साथ उसके अत्यन्त निकट सम्बन्धों के भी कारण है।' सन् १९३७ में मद्रास में आयोजित 'भारतीय साहित्य परिषद्' में अपने

अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि 'भारत में कई लिपियों का प्रचलन विभिन्न प्रान्तों की भाषाएँ समझने के मार्ग में बाधक है। यूरोप के तमाम राष्ट्रों ने एक ही लिपि अपनाई है। तब भारत को भी जो एक राष्ट्र होने का दावा करता है, एक ही लिपि अपनानी चाहिए।...रोमन लिपि का व्यवहार भारत में नहीं हो सकता। देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए। क्योंकि अनेक प्रान्तीय भाषाओं की लिपियाँ प्रायः एक-सी हैं'। न्यायाधीश श्री वी० कृष्णस्वामी ऐयर ने (सन् १९१०) इलाहाबाद में आयोजित एक लिपि-सम्मेलन में अध्यक्षपद से भाषण करते हुए पूरा बल देकर कहा था कि 'देवनागरी' का सभी भारतीय भाषाओं द्वारा अपनाया जाना न केवल राष्ट्र के हित में, बल्कि स्वयं उनके हित में भी होगा'। 'सच पूछा जाए, तो रोमन लिपि को अपनाने का प्रश्न लिपि और साहित्य की दृष्टि से उठाया ही नहीं गया। यह कुछ मुट्ठी-भर लोगों का राजनैतिक दाँव-पेच है और इसके लिए विभिन्न भाषाओं के बीच परस्पर ईर्ष्या तथा कटुता पैदा की जा रही है, जो अन्ततः हमारे राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगी'। 'हिन्दी के लेखकों का भी यह कर्तव्य है कि वे हिन्दी-लेखन में सरलता के नाम पर उच्छृङ्खलता को प्रश्रय न दें और देवनागरी के अत्यन्त सरल एवं वैज्ञानिक स्वरूप को नष्ट न करें। हिन्दी-लेखन में उन्हें सावधानी-पूर्वक चन्द्रबिन्दु, अर्धचन्द्र, अनुस्वार, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के अनुनासिकों के अर्धरूप, अल्पविराम, हलन्त, नुकता, आदि का प्रयोग करना चाहिए। विभक्तियों, आदरसूचक सर्वनामों, क्रियाओं के बहुवचन रूप (गया, गये, गई, हुआ, हुए, हुई) आदि के सम्बन्ध में भी उन्हें आवश्यक नियम बना लेने चाहिए। अनियमितता सरलता नहीं। यह बात हमें भली-भाँति समझ लेनी चाहिए। अन्यथा अनजाने में ही हम एक ऐसी भूल कर बैठेंगे जिसका कालान्तर में कोई परिमार्जन सम्भव नहीं होगा।'—श्री विद्याभूषण जी 'रश्मि' [बम्बई हिन्दी विद्यापीठ का रजत जयन्ती ग्रन्थ]

डा० राघवन् ने आधुनिक भाषाशास्त्र के अध्ययन की नींव डालनेवाले सर विलियम जोन्स के शब्दों में कहा है कि 'देवनागरी दुनिया की किसी भी अन्य लिपि की अपेक्षा ज्यादा स्वाभाविक रूप से व्यवस्थित लिपि है।' डॉ० चाटुर्ज्या ने भी माना है कि 'देश के चालीस करोड़ में से अठारह करोड़ लोग देवनागरी के क्षेत्रों में आते हैं और वह संस्कृत की अखिल भारतीय लिपि का स्थान प्रायः सौ वर्ष से ले चुकी है।' डॉ० वी० के० आर० वी० राव ने भी अंग्रेजी की तुलना 'बिल्लियों के झगड़े में काम बनाने वाले बन्दर से की है।' किसी भी लिपि को चुनने का एकमात्र आधार स्पष्टता, सुबोधता

और हाथ से या यन्त्र से उसे सभी प्रकार से लिख सकने की उसकी क्षमता ही है'—प्रो० हुमायूँ कबिर।

'रोमन लिपि को अपनाने का समर्थन करना भाषाओं की पारस्परिक समानता के सिद्धान्त को अव्यवहार्य ठहराना है। इससे ईर्ष्या और असहनशीलता की कुछ ऐसी बू आती है, जो भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय और भावगत एकता कायम करने की इच्छा के प्रतिकूल है और बाद में इसको दूर करना मुश्किल हो जाएगा'—डॉ० वी० के० आर० वी० राव। 'हमारी आज की लिपि-समस्या विदेशी प्रचारकों ने खड़ी की है।......भारतीय भाषाओं के लिए समान लिपि का होना बहुत ही व्यावहारिक बात है। इससे हमारी भाषाएँ निकटतर आएँगी।......मैं नहीं समझता कि यदि कोई आधुनिक तमिल लेखक देवनागरी में लिखने लगे, तो उसका दिमाग काम कर सकेगा?' यह सब भावुक प्रलाप है जो चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे विद्वान् के लिए अशोभनीय है'—एन० वी० कृष्ण वारियर। 'देवनागरी लिपि के समान वैज्ञानिक, नियमित और व्यवस्थित लिपि शायद ही कोई हो'—डॉ० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु'। 'अंगरेजी, जिसे भारत के केवल दो प्रतिशत लोग ही जानते हैं। आज हमारे प्रशासनिक कार्य की भाषा रहे, यह केवल हमारे लिए लज्जाजनक नहीं, हमारे संविधान के लिए भी हास्यास्पद है'—डॉ० सेठ गोविन्ददास।

'हिन्दी केवल राजभाषा ही नहीं, वह राजनतिक एकता की स्थापना का एक अनिवार्य और एकमात्र साधन है'—श्री भालचन्द्र आपटे। 'मेरा यह निश्चित विचार है कि कभी-न-कभी हमें भारतीय भाषाओं के लिए एक समान-लिपि को प्रोत्साहन देना ही होगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि समान-लिपि अन्य भाषाओं की लिपियों का स्थान ले लेगी। किसी को भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हिन्दी-लिपि स्थानीय लिपियों की जगह पर आकर जम जाएगी। सम्भव है, हिन्दी लिपि में ही कुछ परिवर्तन करने पड़ें। लेकिन मेरा सुझाव है कि इसे सभी भाषाओं के लिए एक दूसरी लिपि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इससे एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश की भाषा को ज्यादा आसानी से सीख सकेंगे। वास्तविक कठिनाई भाषा की नहीं; बल्कि लिपि की है।'—जवाहरलाल नेहरू।

[बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ के रजत जयन्ती ग्रन्थ से साभार उद्धृत]

अंत में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि पैर के अनुरूप जूता बनाते हैं, किंतु जूते के अनुरूप पैर नहीं बनाते। अतः लिपि के अनुरूप टाइप बनाना चाहिए, किंतु टाइप के अनुरूप लिपि नहीं बननी चाहिए।

———

८

वर्तनी की एकरूपता

उच्चारणभेद

विशाल भारत के प्रांत-प्रांत में जैसे आकार-भेद विद्यमान है, वैसे उच्चारण भेद भी रहेगा ही, किंतु राष्ट्रीय संस्कार-भेद नहीं होना चाहिए। उच्चारण भेद का कारण है—भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु की भिन्नता। यत्किञ्चित् आकार-भेद और विचार-भेद होने पर भी अन्योन्य व्यवहार तथा प्यार होना ही चाहिए। इस प्यार-प्रचार के प्रधान कारण थे—धर्म, तीर्थ एवं पर्व (मेले)। प्रांत-प्रांत की जनता जितनी संख्या में कुम्भ आदि पर्वों पर एकत्रित होती है उतनी स्यात् विश्व के किसी मेले में भी नहीं होती। आजकल नए-नए धर्म, नए-नए तीर्थ तथा नए-नए मेलों का निर्माण हो रहा है। इस नवनिर्माण से हमारे राष्ट्र की जनता के प्यार में अवश्य न्यूनता आई है। इसका ज्वलन्त उदाहरण है राज्यों का पुनर्गठन।

जैसे हमारी 'श्री अद्वैत पंचपरमेश्वर उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा' नामक संस्था में किसी प्रांत और किसी वर्ण का भी साधु क्यों न हो उसे चार पद्धतियों में ही अंतर्भूत किया जाता है—१—पूर्व पद्धति, २—पश्चिम पद्धति, ३—उत्तर पद्धति तथा ४—दक्षिण पद्धति, ये चार पद्धतियाँ या चार पंगतें हैं। वैसे ही हमारे राष्ट्र के भी चार विभाग होने चाहिए थे—पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण। एक दूसरी बात इसमें और देखने की है कि सर्वश्रेष्ठ गद्यलेखक श्री प्रेमचन्दजी मुंशी ने अपनी 'पंच में परमेश्वर' नामक कहानी 'सरस्वती' में छपने के लिए भेजी थी। उसके सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने उसमें का 'में' चिह्न निकाल कर उसका 'पंच

परमेश्वर' नाम बना दिया था। परन्तु उससे भी बहुत पहले (वि० सं० १८२४ में) हमारे निर्वाणदेव बाबा प्रियतमदासजी ने अपनी सार्वभौम संस्था का नाम 'पंचपरमेश्वर' रख दिया था। अस्तु।

इतने बड़े विशाल राष्ट्र में उच्चारण-भेद होना दूषण नहीं, किन्तु भूषण है। 'यज्ञ' को पंजाबी 'जग्ग' आर्यसमाजी 'यज्य' बंगाली 'योज्ञ' तथा अंग्रेजी वाले 'यजना' बोलेंगे। जैसे—'प्राजना (प्राज्ञ) के परीक्षार्थी खड़े हो जाएँ' आदि। शुद्ध उच्चारण 'यज्ञ' होता है। कारण कि 'ज्ञ' कोई नया अक्षर या वर्ण नहीं। यह तो 'ज् और ञ' को मिलाकर लिखने का एक प्रकार है। जैसे—'क् और ष' को मिलाकर 'क्ष' लिखते हैं। कितना भी उच्चारण भेद हो, परन्तु लिखेंगे सभी 'यज्ञ' ही। 'ऋग्वेद' को पंजाबी 'रिग्वेद' बोलेंगे, गुजराती तथा दक्षिणी 'रुग्वेद' बोलेंगे। परन्तु लिखेंगे 'ऋग्वेद' ही। 'ऋतु' को 'रुत' तो प्रायः सर्वत्र बोलते ही हैं, जैसे—''रुत बसन्त की आई'' आदि। 'सिंह' को कोई 'सिंग' बोलेगा और कोई 'सिंघ' बोलेगा। पर लिखा जाता है 'सिंह' ही। पं० गंगाशंकर मिश्र एम० ए० ने अपने 'वैदिक संस्कृति' नामक निबन्ध में लिखा है कि ''आर्य जाति के लोग बाहर से आकर पंजाब में बसे। उन्हीं में से कुछ लोगों ने समय समय पर वेदमन्त्रों की रचना की''। सम्भव है इसीलिए वेदमन्त्रों में नगण (एक साथ तीन लघु वर्ण) नहीं आता। मुझे जितने वेदमंत्र याद हैं उनमें 'गणपतिं हवामहे' 'गणपति' नाम को छोड़ कर कहीं भी नगण नहीं आया। क्योंकि पंजाबियों ने वेदमंत्रों की रचना की है—उनका दर्शन किया है। पंजाबी लोग नगण का उच्चारण नहीं कर पाते। 'जनता' को 'जंता' 'मिनट' को 'मिण्ट' 'बलदेव' को 'बल्देव' 'कमल' को 'कम्ल' 'बिलकुल' को 'बिल्कुल' ही बोलेंगे। जैसे ये आदि के दो ह्रस्व अकारों का सही उच्चारण नहीं करते, वैसे ही आदि के दो दीर्घ आकारों का भी सही उच्चारण नहीं करते। 'बाजार' को 'बजार' 'जापान' को 'जपान' 'नाराज' को 'नराज' 'सामान' को 'समान' 'समिति' को 'सम्मति', समृद्धि' को 'स्मृद्धि' आदि बोलेंगे। परन्तु लिखेंगे शुद्ध ही। लग-मात्राएँ बिलकुल ठीक लगाएँगे। पंजाबी लोग चतुर्थ वर्णों (घ, झ, ढ, ध, भ) का भी और प्रकार से उच्चारण करते हैं। 'भ' का उच्चारण—जैसा-अन्य प्रान्त करते हैं—उससे नहीं मिलता और न 'प' से ही मिलता है। यह तो 'भ' और 'प' के बीच का उच्चारण होता है। सुनते हैं कि 'भागलपुर' में जब सभापति पद के लिए सर्वसम्मति से श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी का नाम चुना गया तब एक आदमी ने यह कह करके उस नाम का विरोध किया कि ''श्री स्वामीजी पंजाबी हैं और पंजाबी लोग 'भ' को 'प' बोलते हैं। ये 'भागलपुर'

को 'पागलपुर' बोलेंगे।'' वास्तव में उस भाई ने ही 'भागलपुर' बोलकर के 'पागलपुर' सिद्ध कर दिया। कारण कि ऐसे पुरुषसिंह लोकसंग्रही संन्यासी महात्मा 'सभापति' भाग्य से ही मिला करते हैं।

जब तक यह उच्चारण-भेद निराकार रहता है--अर्थात् कानों और मकानों तक सीमित रहता है--तब तक खेद पैदा नहीं करता तथा जब यह उच्चारण वर्णों के वस्त्र पहन कर लेख या पुस्तक के रूप में साकार होकर आता है तब यह आँखों का विषय बन जाता है और दूर तक इसकी गति हो जाती है। राष्ट्र के एक कोने-से लेकर दूसरे कोने तक यह महापुरुषों के विचारों का आदान-प्रदान करता रहता है। शंकराचार्य तथा वल्लभाचार्य के विचार जितने दक्षिण भारत ने अपनाए हैं उतने या उससे अधिक उत्तर भारत ने भी अपनाए हैं। कारण कि वे विचार संस्कृत भाषा का आकार धारण करके आए हैं। जितना पहले से उत्तर के लोग दाक्षरणात्य नामदेव से परिचित हैं उतना गोरा या एकनाथ जी से परिचित नहीं। नामदेव के विचार हिंदी के माध्यम से आए हैं। राष्ट्रीय विचारों को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए राष्ट्रभाषा के प्रचार की बहुत ही आवश्यकता है। राष्ट्रभाषा के समाचार पत्रों का इस विषय में अधिक उत्तरदायित्व है। क्योंकि वे राष्ट्रभाषा के नाम पर ही फलते और फूलते हैं। परंतु उनकी नीति राष्ट्रभाषा के प्रचार में बाधक सिद्ध हो रही है। कोई 'गई' लिखता है तो कोई 'गयी' कोई 'जावेंगे' लिखता है, कोई जायेंगे' लिखता है और कोई 'जाएँगे'। मैंने एक ही रजत-जयंती ग्रंथ में एक ही शब्द के निम्नलिखित रूप देखे हैं—'एकादमी' 'अकादमी' 'एकेदेमी' 'एकेडेमी' 'अकाडमी'। नागरी प्रचारणी सभा, (काशी) के चौहत्तरवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ ५६ एवं ६० पर क्रमशः 'अकैडमी' तथा 'एकाडेमी, शब्द लिखे हैं। यदि इस शब्द के स्थान पर 'साहित्य परिषद्' जैसा कोई शब्द नहीं रखते तो कृपा करके उस शब्द का एक रूप तो निश्चित कर लीजिए। इस बात की बहुत ही अधिक आवश्यकता है कि राष्ट्रभाषा के विद्वान् लोग आपस में मिल करके वर्तनी की एकरूपता निर्धारित करें। पहले मैं पद्मश्री रामचंद्र वर्मा की वर्तनी विषयक सुझावों का पक्षपाती था। परंतु अब मैं पं० किशोरीदासजी वाजपेयी के सुझावों का समर्थक हूँ। कारण कि वाजपेयी जी ने इस विषय में अच्छा चिंतन किया है। उन्होंने कहा है कि 'गई' और 'गए' यथाश्रुत ही लिखने चाहिए। एक बच्चे से लिखवा कर देखिए वह 'गयी' 'गये' न लिखकर 'गई' और 'गए' ही लिखेगा। ऐसा करने का एक वैज्ञानिक कारण भी है। 'गयी' में 'य्' का तालु स्थान है तथा 'ई' का भी तालु स्थान है। दो क्षणों तक जीभ तालु से चिपकी रहती है--अटकी रहती

है, उच्चारण सुखद नहीं। इसलिए बच्चा इसका सुख से उच्चारण नहीं कर सकता। बच्चा ही नहीं बड़े भी इसका उच्चारण नहीं करते; लिखें चाहे कैसे भी। 'गये' में भी 'य्' तालु स्थानीय है और 'ए' कण्ठतालु स्थानीय है— जिससे उच्चारण मुख के लिए सुखद नहीं। हिंदी बहुत ही वैज्ञानिक भाषा है। जैसे—'सोता है' का विधि आदि में 'सोइए' 'रोता है' का 'रोइए' 'बोता है' का 'बोइए' आदि रूप बनाती है वैसे—'लेता है' का 'लेइए' 'देता है' का 'देइए' 'पीता है' का 'पीइए' आदि रूप नहीं बनाती। कारण कि इनमें के एक एक रूप में 'ए इ ए' तीन तीन अक्षर एक स्थानीय आ जाते हैं। इसलिए हिंदी ने इनके बीच 'ज' की अवतारणा कर ली तथा 'लीजिए' 'दीजिए' 'पीजिए' आदि रूप घड़ लिए—बना लिए। जैसे 'आ' का 'आता है' बना लेती है; वैसे 'दा' का 'दाता है' 'पा' का 'पाता है' एवं 'ला' का 'लाता है' नहीं बनाती। कारण कि 'दाता है' में संदेह है—'देने-वाला है या दे रहा है ?' 'लाता है'—'ले रहा है या ले आ रहा है ?' 'पाता है'—'प्राप्त करता है या रक्षा करता है ?' आदि। ऐसे रूप न रख कर हिंदी ने असंदिग्ध रूप चला लिए 'देता है' 'लेता है' 'पीता है' आदि। 'तुम दो' 'तुम लो' की भाँति ('तुम देओ' 'तुम लेओ' नहीं) 'तुम होओ' 'तुम धोओ' के दोनो ओकारों को मिलाकर एक 'ओ' बना लिया 'तुम हो' 'तुम धो' आदि। 'देऊँगा' का 'दूँगा' 'लेऊँगा' का 'लूँगा' 'होऊँगा' का 'हूँगा' वैकल्पिक लघु (हलके) रूप भी चला लिए।

हमारे कितने ही विद्यार्थी—अब सुयोग्य पण्डित—अंग्रेजी की एम. ए. पास कर चुके हैं और उच्च पदों पर योग्यता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं। परन्तु हमारे प्राधानाध्यापक जी मुझ पर बहुत प्रसन्न थे। वे जानते थे कि 'यह फक्कड़ किसी की माननेवाला नहीं; उत्तर देता है—'पढ़नो लिखनो बम्मन को काम, भज ले साधु सीताराम'। फिर भी वे दया-परवश होकर मेरे लिए अंग्रेजी वर्णमाला की पोथी ले ही आए। मैं भी ए. बी. सी. डी. पढ़ने लगा या ऐबी सीढ़ी चढ़ने लगा। अब तो याद नहीं, परंतु उस समय अंग्रेजी की पूरी वर्णमाला मैंने याद कर ली थी। पंडित जी ने कहा— लिखो 'कापी' ? मैंने के. ए. पी. आई. लिख दिया। वे बोले 'के' नहीं 'सी' चाहिए। मैंने पूछा क्यों ? वे बोले ऐसा ही होता है। [वे भी अधिक अंग्रेजी नहीं जानते थे।] इस अड़चन के कारण मैं सदा के लिए अंग्रेजी से पराङ्मुख हो गया। क्या राष्ट्रभाषा की वर्तनी की बहुरूपी अड़चनों से अहिन्दी-भाषी लोग पराङ्मुख तो नहीं होते होंगे ?

अब जितना भी जल्दी हो सके उतना ही जल्दी वर्तनी की एक-रूपता का निर्धारण कर लेना चाहिए। यह किसी एक व्यक्ति का काम नहीं, किन्तु सभी लब्ध-प्रतिष्ठ मान्य विद्वानों को मिलकर इसका निर्णय कर लेना चाहिए।

——

६

'मानक हिन्दी व्याकरण' पर एक दृष्टि

'हिन्दी शब्द मीमांसा' के आधार पर श्री रामचन्द्र जी वर्मा ने 'लिखता है' में 'है' प्रत्यय को सहायक धातु मान लिया, जिससे कई एक पृष्ठों का विवेचन असंगत हो गया।

पृष्ठ ४०

(ख) 'छोटों को प्यार करना चाहिए' में 'छोटों को' के स्थान पर 'छोटों से' होना चाहिए।

पृष्ठ ४६

(क) 'धनी निर्धन को भिक्षा देता है'। तथा (ख) कृष्ण राम के लिए पुस्तक देता है' में 'निर्धन' तथा 'राम' को 'कर्म' बतलाया है; किन्तु 'सम्प्रदान' बतलाना चाहिए।

पृष्ठ ४९

'बड़बड़' अव्यय से 'बड़बड़ाना' क्रिया बनी है' में 'अव्यय' के स्थान पर 'बड़बड़' 'ध्वनि के अनुकरण पर' चाहिए।

पृष्ठ ७८

'अधमरा' 'अधखिला' 'पनचक्की' 'पनडुब्बी' 'हथकड़ी' 'हथौड़ा' आदि 'अध' 'हथ' 'पन' आदि को 'उपसर्ग' बतलाया है तथा पृष्ठ १५१ पर

---

* मानक हिन्दी व्याकरण (द्वितीय संस्करण) : लेखक श्री रामचंद्र वर्म्मा : प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

'पन चक्की'=शब्द को 'पानी से चलने वाली चक्की' समस्त पद बतलाया है। 'घोड़ों की दौड़=घुड़दौड़; पानी से चलने वाली चक्की=पनचक्की आदि। 'घोड़ा' का घुड़ अथवा 'पानी' का पन उनके लघुरूप के सूचक हैं, चाहिए —'घुड़' और 'पन' घोड़ा ओर पानी के लघु रूप हैं।

पृष्ठ १०१

१—'देवदत्त बढ़िया कपड़ा पहनता है' तथा

२—'देवदत्त बढ़िया धोती माँगता' है आदि।

ऐसे विशेषण उभयलिंगी होते हुए भी व्याकरण तथा कोशों में सर्वदा पुंलिग विशेषण ही माने जाते हैं।'

इसी आधार पर आजकल लोग 'आज की ताजा खबर' लिखने और बोलने लग पड़े हैं जो विचारणीय है।

१—सुन्दर लड़का और सुन्दर लड़की।

२—बढ़िया घोड़ा और बढ़िया घोड़ी।

३—घटिया बैल और घटिया भैंस।

आदि में सौन्दर्य, बढ़ियापन, घटियापन, आदि आँख का विषय नहीं; किन्तु अनुमेय तथा अनुभव पर आधारित हैं। घोड़े और बैल का 'बढ़ियापन' चाल से-गति से विदित होता है। सुन्दरता-विषयक संस्कारों से सुन्दरता का अनुभव होता है। वे संस्कार अपने-अपने भिन्न-भिन्न होते हैं। चिपटी नाक नेपालियों को सुन्दर प्रतीत होगी। ऊँट के-से लटकते होठ अफ्रीकी पसंद करेंगे। आँखों का विषय गोरा काला रूप है, सुन्दरता नहीं। इसलिए ये सदा पुंलिग ही होते हैं।

१—काला लड़का और काली लड़की।

२—गोरा लड़का और गोरी लड़की।

३—लम्बा लड़का और लम्बी लड़की।

आदि आँख के विषय 'रूप' आदि में विशेष्य के अनुसार लिंग आएगा। परंतु 'सुडौल' शब्द भी सुन्दरता का वाचक है। अतः 'सुडौल लड़का और सुडौल लड़की' ही बनेगा, 'सुडौली लड़की' नहीं।

'ताजापन' आँख का विषय है। रोटी, गाजर, आदि को देखकर पता चल जाता है कि इनमें ताजापन है या बासीपन। इसलिए 'ताजी रोटी' 'ताजी गाजर' आदि प्रयोग होंगे। तारीख देखकर खबर भी मालूम पड़ जाती है कि यह नई है या पुरानी। इसलिए होना चाहिए—'आज की

ताजी खबर' । यदि 'खबर' को कोई पुलिंग मानता हो, तो 'आज का ताजा खबर' बोले ।

पृष्ठ ११६

'सामान्य भविष्यत् काल से सूचित होता है कि कार्य आरम्भ होने को है ।'

इसी प्रकार लोग लिखने और बोलने लगे कि 'सवा आठ बजने को हैं, अब हिन्दी में समाचार होंगे' 'अभी आपने लतामुङ्गेशकर को सुना' आदि ।

इस 'को' विभक्ति चिह्न ने बड़ों बड़ों को चक्कर में डाल रखा है । कारण कि इसका अनेक कारकों में प्रयोग होता है । जैसे—

१—राम 'को' पढ़ने जाना है । (कर्ता में)
२—राम ने रावण 'को' मारा । (कर्म में)
३—राम 'को' भोजन दो । (सम्प्रदान में)
४—रात 'को' घर में चोर घुस गए । (अधिकरण में)
५—यह रास्ता गाँव 'को' जाता है (अत्यंत संयोग में)
६—कल 'को' जाऊँगा । (अधिकरण में)

७—राष्ट्र पति को शुभ कामना सन्देश भेजा' (चाहिए—राष्ट्रपति के नाम) 'आठ बजने को हैं' अशुद्ध है । यदि कहें कि 'आठ बजना चाहते हैं' इसका अर्थ है जैसे—'राम को जाना है'='राम जाना चाहता हैं' तो हम कहेंगे कि 'आठ' शब्द' घण्टा' का वाचक है । 'घण्टा' जड़ है । उसमें चाहना=इच्छा नहीं हो सकती । 'चाह' तो चेतन का धर्म है । जड़ चाहे 'आठ' हों चाहे 'साठ' इच्छा नहीं कर सकते । सौ अन्धे मिलकर भी एक 'काना' नहीं बन सकते । इसलिए चाहिए—'आठ बजने वाले हैं' 'कार्य आरम्भ होने को है' के स्थान पर चाहिए 'कार्य आरम्भ होने वाला है' ।

पृष्ठ १२६

'यहाँ एक बात और याद रखनी चाहिए । वह यह कि प्रत्यय युक्त धातु और सहायक धातु के बीच में 'रह' प्रत्यय भी लगता है ।······'रह' प्रत्यय अपूर्णता का द्योतक है ।'

क्या 'वह पढ़ता चला जा रहा है' में 'चला' 'जा' 'रहा' सभी प्रत्यय हैं' ? यदि नहीं, तो 'रह' अकेला प्रत्यय कैसे हो गया ? क्या अकेले प्रत्यय का प्रयोग होता है ? परन्तु 'रह' का तो प्रयोग होता है—'वह वहाँ रहता

है'। इस लिए 'रह' प्रत्यय नहीं। किंतु 'रह' धातु है तथा चालू क्रिया इसका अर्थ है।

पृष्ठ १३१

'पीना से पिएगा, जीना से जिएगा, जिए, जिएँ, आदि'। जैसे—पीओगे, जीओ, जीऊँ दीर्घ लिखा है, वैसे 'पीएगा' 'जीएगा' पीएँ जीएँ, दीर्घ क्यों नहीं लिखा ?

पृष्ठ १३२

'जब तू के स्थान पर सरकार, श्रीमान् आदि आदरार्थक शब्द आते हैं तब धातु में 'इए' प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—

१—श्रीमान् बैठिए।

२—सरकार खाइए।

३—महाराज लाइए।

४—सरकार खाइएगा, आदि।

'श्रीमान्' 'सरकार' 'महाराज' आदि शब्द सम्बोधन हैं। क्रिया के कर्ता नहीं। यहां कर्ता का अध्याहार होता है। कर्ता है 'आप'। 'श्रीमान्, आप बैठिए; सरकार, आप खाइए; महाराज, आप लाइए; सरकार, आप खाइएगा, आदि।

पृष्ठ १४०

'राम और सीता आए हैं, के स्थान पर पूज्य होने से 'सीता और राम आए हैं' होना चाहिए। 'दोनो' शब्द अध्याहृत है। 'घोड़ा और गाड़ी खरीदी गई' में 'घोड़े' का क्रिया के साथ अन्वय नहीं होता। कारण कि क्रिया स्त्री वाची और घोड़ा पुंवाची है। अतः 'गाड़ी और घोड़ा खरीदे गए' में 'दोनो' शब्द का अध्याहार है।

पृष्ठ १४१

'वे और मैं सब जाएँगे' के स्थान पर उत्तम पुरुष का पूर्व प्रयोग करना चाहिए 'मैं और वे सब जाएँगे'। यह नियम है कि यदि प्रथम और मध्यम पुरुष का एक साथ प्रयोग हो तो पहले मध्यम पुरुष का प्रयोग करना चाहिए। यदि प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष का एक साथ प्रयोग हो तो उत्तम पुरुष पहले रखना चाहिए। यदि मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष का एक साथ प्रयोग हो तो उत्तम पुरुष पहले आएगा। 'मैं और तू दोनो चलेंगे', 'हम और तुम सब चलेंगे' आदि।

पृष्ठ–१५१

"हिंदी में जो अव्ययीभाव समस्त पद बनते हैं। उनके पूर्वपद अव्यय न होने पर भी क्रिया-विशेषण की तरह प्रयुक्त मान लिए जाते हैं। जैसे—घर-घर, गाँव-गाँव, पल-पल, मन ही मन, बात ही बात, रातोंरात, दिनों-दिन, आदि।" पृष्ठ ११० पर लिखा है—"इधर कुछ संज्ञाओं की भी बहुवचन रूप में पुनरावृत्ति देखी जाती है। जैसे—'लड़के घर-घर जाकर चंदा लाए थे' 'वह बात-बात में आपत्ति करता था।' आदि।

यहाँ अव्ययीभाव समास नहीं। कारण कि अव्ययीभाव समास का विग्रह ही नहीं होता। यदि विग्रह करना हो तो अस्वपद विग्रह होगा। अर्थात् जो समास का पूर्वपद है, उसके साथ विग्रह नहीं होगा। जैसे—अनुरूप=रूप के योग्य। यथाशक्ति=शक्ति के अनुसार।

जैसे 'वर्षों बीत गए'=अर्थात् वर्षों के वर्ष बीत गए या वर्षों पर वर्ष बीत गए। 'सालों हो चुके'=अर्थात् सालों के साल हो चुके या सालों पर साल हो चुके। वैसे ही—'घर-घर (में) 'गाँव गाँव (में)' 'पल पल (में)' 'मन ही मन (में)' 'बात ही बात (में)' 'रातों (पर) रात' 'दिनों (पर) दिन, आदि सभी असमस्त पद हैं। इनमें के 'में' 'पर' आदि चिह्न विलुप्त रहते हैं। जैसे—'कभी तो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान' कान=कान में।

पृष्ठ १६०

"चाहिए'—'चाह' सहायक धातु का वर्तमान कालिक अनिश्चयार्थरूप।"

प्रश्न होता है—जैसे 'आप बैठिए' प्रयोग होता है। वैसे—'आप चाहिए' क्यों नहीं होता ?'

वाजपेयीजी 'चाहिए' को भाववाचक क्रिया मानते हैं। प्रश्न उठता है—जैसे—'हमसे सोया नहीं जाता' वैसे—'हमसे चाहा नहीं जाता' क्यों नहीं होता ?

वाजपेयीजी 'चाहिए' को भाववाच्य क्रिया मानते हैं, तथा वर्माजी 'चाह' को सहायक धातु का वर्तमान कालिक अनिश्चयार्थ रूप मानते हैं। परंतु पतंजलि 'चाहिए' को कर्मवाच्य क्रिया मानता है। इसकी विस्तृत चर्चा हम पहले कर आए हैं।

—

१०

तद्विद्धि परिप्रश्नेन

१——बाबा, यह 'को' विभक्ति चिह्न बहुत तंग करता है। समझ में नहीं आता ?

——हाँ, बेटा, यदि चोर को चोर समझ लिया जाए तथा उसे यह विदित हो जाए कि मुझे अमुक ने चोर समझ लिया है, तो चोर उसे तंग नहीं करता, उसके यहाँ चोरी नहीं करता। समझो।

२——'राम को लिखना चाहिए' में कौन-सा 'को' है ?

——यहाँ कर्ता में 'को' है। कर्ता राम है। इच्छार्थक सामान्य क्रियार्थक संज्ञाओं के योग में 'कर्ता' में 'को' चिह्न लगता है। जैसे——'राम को जाना चाहिए' 'राम को जाना है' आदि।

३——'रामने रावण को मारा' में कौन-सा 'को' है ?

——'मारा' क्रिया है। कौन मारता है ? राम। कौन का उत्तर 'कर्ता' कहलाता है। अतः 'राम' कर्ता है। किसको मारा ? रावण को। 'किसको' का उत्तर कर्म होता है। अतः रावण कर्म है। 'क्या' का उत्तर भी 'कर्म' होता है। जैसे——'राम रोटी खाता है'। क्या खाता है ? रोटी। अतः 'रोटी' कर्म है। 'खाता है' क्रिया है और 'राम' कर्ता है।

३——'राम को पुस्तक दो' में कौन-सा 'को' है ?

——यह सम्प्रदान चतुर्थी का 'को' है, क्योंकि पुस्तक राम को दी जा रही है। ऐसे वाक्यों में 'के लिए' अव्यय का भी विकल्प से प्रयोग होता है। जैसे——'राम के लिए पुस्तक दो'। जब कर्ता और सम्प्रदान दोनों में 'को'

चिह्न आ जाता है तब सम्प्रदान में 'के लिए' का प्रयोग करना चाहिए। अन्यथा कर्ता और कर्म के विषय में संदेह हो जाता है, जैसे—'भारत को नेपाल को धन देना चाहिए'। क्या 'भारत को नेपाल के लिए धन देना चाहिए ?' या 'नेपाल को भारत के लिए धन देना चाहिए'? ऐसा संदेह हो जाता है।

४—'राम रात को जाएगा' में कौन-सा 'को' है ?

—यहाँ अधिकरण अर्थ में 'को' है। 'रात में जाएगा' इसका अर्थ है। 'कालाध्वनोरत्यंतसंयोगे' से द्वितीया का 'को' चिह्न हो गया अधिकरण अर्थ में।

५—'यह पुस्तक राम को पसंद आई' में कौन-सा 'को' है ?

—यह भी कर्ता में सम्प्रदान का 'को' है। 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' रुचि अर्थक धातुओं के योग में 'को' होता है। जैसे—'राम को पुस्तक अच्छी लगी' 'राम को इसकी जरुरत है' आदि।

६—'राम स्टेशन पर जाएगा' या 'राम स्टेशन को जाएगा' ?

—दोनों प्रयोग ही ठीक हैं, कारण कि संस्कृत 'गम्'=जाना धातु, को सकर्मक मानती है। जैसे—'रामः ग्रामं गच्छति' तथा अधिकरण की विवक्षा से 'रामः ग्रामे गच्छति' भी कहती है। परंतु हिंदी का कहना है कि 'क्या' का उत्तर कर्म होता है। 'राम जाता है' में 'क्या जाता है ?' प्रश्न नहीं होता; किंतु कहाँ जाता है ?' प्रश्न होता है। इसलिए 'स्टेशन पर जाता है' अधिकरण सप्तमी होनी चाहिए।

संस्कृत ने कहा कि 'जाना' का प्राप्ति अर्थ भी होता है। अतः 'स्टेशन शब्द को' भी कर्म मान लेना चाहिए।

हिंदी बोली—हाँ, मान लेती हूँ। पर जैसे 'पिता जी, गाँव गए' वैसे ही 'पिताजी, स्टेशन गए' मुझे रुचता है। मैं मर्यादा=सीमा, अर्थ में भी 'को' का प्रयोग करती हूँ। जैसे—पिताजी, घर को गए' 'घर की ओर' 'घर तक' आदि भी। घर मर्यादा है—सीमा है।

७—'आपको, सत्य प्रतीत होगा' या 'आपको सत्य ज्ञात होगा' आदि में कौन-सा 'को' है ?

—यहाँ 'ज्ञात' शब्द भाववाचक है। जिसका अर्थ है ज्ञान। जैसे—'गतं तिरश्चीन मनूरुसारथेः' में 'गतं' का गमन अर्थ है' वैसे ही यहाँ भी 'ज्ञात' का

ज्ञान अर्थ है। यह मतलब हुआ कि 'आपको ज्ञान है'। 'रामको सुख है' 'राम को दुःख है' 'रामको प्रसन्नता है' 'राम को आनंद है' 'राम को संदेह है' आदि आदि। यह 'को' कर्म में है।

संस्कृत कहती है—'अहं प्रसन्नतां प्राप्तोऽस्मि'=मैं प्रसन्नता को प्राप्त हुआ। 'प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतः' (तुलसीदास) आदि।

हिंदी ने कहा—नानी, क्या प्रसन्नता बाहर है जिसे हम प्राप्त करते हैं ? होना चाहिए—'राम को प्रसन्नता प्राप्त हुई' आदि।

संस्कृत ने कहा—'बेटी, क्या प्रसन्नता बाहर है जो हमें प्राप्त होती है ? फिर तुम ऐसा क्यों बोलती हो कि

१—'राम को चार पुत्र प्राप्त हुए'।
२—'राम को प्रसन्नता प्राप्त हुई'।
३—'राम को सुख प्राप्त हुआ'।
४—'राम को दुःख प्राप्त हुआ'।
५—'राम को आनंद प्राप्त हुआ'।
६—'राम को ज्ञान प्राप्त हुआ'। आदि।

हिंदी बोली—'नानी, मुझे ऐसा ही अच्छा लगता है। आज से मैं धीरे-धीरे 'प्राप्त' शब्द का प्रयोग कम करती जाऊँगी। जैसे—

१—'राम को चार पुत्र हुए'।
२—'राम को प्रसन्नता हुई'।
३—'राम को सुख हुआ'।
४—'राम को दुःख हुआ'।
५—'राम को आनंद हुआ'।
६—'राम को ज्ञान हुआ'।

जैसे—'आपको मेरी बात सुनकर सन्तोष हुआ'।

८—'आप को यह बात विदित ही है कि हरिद्वार में जो हमने बातचीत की थी' में कौन-सा 'को' है ? यहां तो 'त' प्रत्यय भाव में नहीं, कर्म में है, बात कर्म है।

ठीक है। सुनो, हिन्दी में जितनी फजीहत-दुरवस्था 'बड़ा' शब्द तथा 'बात' शब्द की हुई है उतनी किसी दूसरे शब्द की नहीं। लोग बोलते हैं 'बड़ा आनंद है' 'बड़ा सुख है' 'बड़ी खुशी है' 'बड़ा पानी है' 'बड़ा रस है' आदि [इसका विवेचन आगे जाकर करेंगे] वैसे ही 'क्या बात है आप दिखाई नहीं देते ?' [कारण के स्थान पर 'बात' शब्द] 'आपकी

बात बन गई ?' [कार्य के स्थान पर बात शब्द] 'आपका उनसे किस बात पर मतभेद हो गया' [विषय के स्थान पर 'बात' शब्द] आदि आदि। परंतु होना चाहिए—'आपको विदित ही है जो हरिद्वार में हमने बातचीत की थी।' दो बार 'बात' शब्द भी नहीं आया।

९—'आठ बजने को हैं' में कौन सा 'को' है ?

यह रेडियो का 'को' है। किसी दूसरी भाषा से आया है। होना चाहिए 'आठ बजने वाले हैं'। आज रेडियो में बोला था 'आठ बजना चाहते हैं'। यह रहस्यवाद की भाषा है जहां जड़ भी चेतन की तरह बोलने लगते हैं।

१०—'मुझे क्या ?' मुझे=मुझको,। 'तुझे क्या?' तुझे=तुझको, आदि में कौन-सा 'को' है ?

—अच्छा, पहले एक बात सुनो।

एक फक्कड़ बाबाजी थे। उनसे किसी ने कहा कि आज अमुक मंदिर में खीर-मालपूआ बन रहे हैं। बाबाजी बोले—'मुझे क्या ?' उस व्यक्ति ने कहा—'आपको निमंत्रित किया है।' बाबाजी बोले फिर 'तुझे क्या ?'

एक साधक किसी की आलोचना न सुनते थे और न ही करते थे। उनसे किसी ने कहा—'अमुक व्यक्ति गालियाँ निकाल रहा है'। वे बोले 'मुझे क्या ?'

—भई, आपको निकाल रहा है।

—फिर 'तुझे क्या ?' समझे ? यहाँ 'क्या ?' के बाद 'मतलब' 'प्रयोजन' आदि शब्दों का अध्याहार करो।

'मुझे क्या ?=मुझे क्या मतलब ?

'मुझे क्या ?=मुझे क्या प्रयोजन ?

'तुझे क्या ?=तुझे क्या मतलब ?

'तुझे क्या ?=तुझे क्या प्रयोजन ?

११—'आपको गालियां निकाल रहा है' में कौन-सा 'को' हे ?

—यह चतुर्थी का 'को' है।

—यहां सम्प्रदान कहां है ?

—'धोबी को कपड़े दो' में जैसे सम्प्रदान है।

भाष्यकार पतञ्जलिजी महाराज ने लिखा है—'खण्डिकोपाध्याय: शिष्याय चपेटकां ददाति'। बात भी ठीक है। वह बेचारा कुछ देता ही है लेता तो नहीं। चाहे वे गालियां ही हों। हां, 'निकाल रहा है' का अर्थ यहां देना है।

१२—'राष्ट्रपति को शुभ कामना संदेश भेजा' में सम्प्रदान कहां है ?

—यहां भी 'भेजा' का अर्थ है 'भेज दिया' 'राष्ट्रपति के नाम शुभ कामना संदेश भेज दिया।'

यह वाक्य ऊपर के वाक्य से उत्तम है।

१३—'राम के लिए भोजन दे दो' के स्थान पर 'राम को भोजन दे दो' क्यों लिखते-बोलते हैं ?

—चेतन व्यक्तियों के साथ तथा क्रियाओं के साथ 'के' एवं 'के लिए' का प्रयोग खटकता है। जैसे—

१—हमारे देखने के योग्य पुस्तकें हैं।
२—यह पढ़ने के योग्य ग्रंथ है।
३—यह लिखने के योग्य बात नहीं।
४—राम पढ़ने के लिए जाता है।
५—मैं खाने के लिए जाता हूँ।
६—क्या आप सोने के लिए जा रहे हैं ?

इनमें से 'के' और 'के लिए' निकाल दो—

१—हमारे देखने योग्य पुस्तकें हैं।
२—यह पढ़ने योग्य ग्रंथ है।
३—यह लिखने योग्य बात नहीं।
४—राम पढ़ने जाता है।
५—मैं खाने जाता हूँ।
६—क्या आप सोने जा रहे हैं ? आदि। परंतु

१—राम पैसों के लिए जाता है।
२—वह बच्चों के लिए जाता है।
३—वह भोजन के लिए जाता है।
४—वह बच्चों के लिए मरता है।
५—वह पैसों के लिए मरता है। आदि में 'के लिए' बदला नहीं जा सकता।

१४—'वह बच्चों पर मरता है' 'वह पैसों पर मरता है' आदि में 'के लिए' बदल देने पर भी प्रयोग शुद्ध हैं ?

—बेटा, यहां हेतुवाचक सप्तमी है। इसका विशेष विधान किया है।

संस्कृत में भी ठीक ऐसा ही है—

"चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयो र्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः ॥"

१५—'समाचारों के बाद आप वन्दना-कार्यक्रम फिर से सुन सकते हैं' को आप गलत कैसे बता रहे हैं ?

'इस बात पर और विचार कीजिए'=अर्थात् विचार को और आगे बढ़ाएँ। 'इस बात पर फिर विचार कीजिए'=अर्थात् इस बात पर दुबारा विचार कीजिए। 'इस बात पर फिर से विचार कीजिए'=अर्थात् फिर से आरम्भ से विचार कीजिए। 'फिर से वन्दना कार्यक्रम सुन सकते हैं' का अर्थ हुआ जो पहले वन्दना-गीत सुनाए गए हैं वे ही आरम्भ से दुबारा सुनाए जाएँगे। परन्तु ऐसा नहीं होता। नए भजन—नए गीत सुनाए जाते हैं। इसलिए गलत है। 'फिर से' में आरम्भ वाचक 'से' नहीं होना चाहिए।

(क) 'हमें सफलता हो सकती है' को वाजपेयी जी ने गलत प्रयोग क्यों सिद्ध किया ?

यह तो उन्हीं से पूछो। अच्छा, तुम्हीं बताओ यह प्रयोग शुद्ध है या अशुद्ध ?

'हमें सफलता हो सकती है' प्रयोग शुद्ध ही है। इसमें 'प्राप्त' शब्द का अध्याहार करना पड़ता है। 'हमें सफलता प्राप्त हो सकती है' जैसे—'आपके पत्र से मुझे प्रसन्नता हुई; प्रसन्नता हुई=प्रसन्नता प्राप्त हुई।

(ख) 'आगे को ऐसा करोगे तो मार खाओगे' में कौन-सा 'को' है ? न यह कर्ता का है, न यह कर्म का है, न यह सम्प्रदान का है, और न यह पूरे अधिकरण का है ? किन्तु अधिकरण के एक अंश में–हिस्से में 'को' आया है। (देखो, निश्चित मत पृष्ठ ४५)

१६—'राम पढ़ता-पढ़ता सो गया ?' या 'राम पढ़ते-पढ़ते सो गया ?' दोनों में से कौन-सा वाक्य ठीक है ?

दोनो ही वाक्य शुद्ध हैं। 'पढ़ता-पढ़ता सो गया' में 'पढ़ता-पढ़ता' विशेषण है राम का। पहले 'पढ़ता हुआ' लिखा करते थे। जैसे—नारदजी वीणा बजाते हुए चलते रहते हैं और चलते हुए वीणा बजाते रहते हैं'। 'हुआ' 'हुए' का अब चलन बन्द हो गया। इसी अर्थ में कृदन्ती क्रिया की द्विरुक्ति कर देने की प्रथा चल पड़ी जो वैज्ञानिक एवं श्रुति-मधुर है। 'राम पढ़ता हुआ' के स्थान पर 'राम पढ़ता-पढ़ता' लिखने-बोलने लगे तथा

'बजाते हुए' 'चलते हुए' के स्थान पर लिखने-बोलने लगे कि 'नारदजी वीणा बजाते-बजाते चलते रहते हैं और चलते-चलते वीणा बजाते रहते हैं'। परंतु जब 'राम पढ़ते-पढ़ते सो गया' ऐसा लिखेंगे और बोलेंगे तब 'पढ़ते-पढ़ते' क्रिया-विशेषण कहलाएगा।

१७—'आप लिखते और बोलते हैं' 'लिखेंगे और बोलेंगे' क्यों लिखते हैं ?

मैं ही नहीं, सभी लिखते हैं तथा सब को ऐसा ही लिखना चाहिए।

बाबा, वाजपेयीजी का कहना है कि पहले बोलना आता है और बाद में लिखना। पहले फूल आते हैं और बाद में फल। इसलिए 'बोलते-लिखते हैं' 'फूलते-फलते हैं' लिखना और बोलना चाहिए।

यह तो वर्माजी की बात का खण्डन करने के लिए लिख गए। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं। क्योंकि उन्होंने ही वहीं लिखा है कि—'एक साथ प्रयुक्त होने वाले शब्दों में (पहले) प्रयोग होता है उसका, जिसमें कम स्वर हों और उसके बाद उसका, जिसमें स्वर अधिक हों—'मेज और कुर्सियाँ' लिखते हैं, 'कुर्सियाँ और मेज नहीं'। इसी तरह 'बाग-बगीचा' होता है, 'बगीचा-बाग नहीं। 'नकुल और सहदेव' लिखते हैं, 'सहदेव और नकुल' नहीं।''

वास्तव में यहाँ स्वरों की संख्या से तात्पर्य नहीं। स्वरों के वजन से, लघु-गुरु से तात्पर्य है। 'मेज' सब्द में तीन मात्राएँ हैं और 'कुर्सियाँ शब्द में पाँच। इसीलिए 'मेज' शब्द का पहले प्रयोग हो गया। तराजू का हल्का पलड़ा पहले उठेगा। यदि बराबर-बराबर वजन हो तो किसी को भी पहले रख सकते हैं। जैसे—'मधुप और कमल' तथा 'कमल और मधुप'। माना कि पहले बोलना आता है और बाद में लिखना। पहले फूल आते हैं और बाद में फल। तो भी उच्चारण की सुगमता के कारण—'द्वन्द्व समास में तथा द्वन्द्व समास की भूमिका में (जहाँ द्वन्द्व समास हो सकता हो) कम वजन वाले शब्द का पूर्व प्रयोग होता है और अधिक वजन वाले शब्द का बाद में। इसलिए 'लिखना-पढ़ना' 'फलो-फूलो' आदि ही लिखा और बोला जाएगा।

१८—बाबा, वर्माजी ने लिखा है कि 'यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो ठीक-ठीक यह बतलाना बहुत कठिन है कि कहाँ 'मेरा' या 'हमारा' होना चाहिए और कहाँ 'अपना'।' आगे चलकर उन्होंने फिर लिखा है कि 'इनके सम्बन्ध में ठीक-ठीक यह बतलाना बहुत कठिन है कि इनमें से कुछ स्थानों पर 'मेरा' 'मेरे' आदि क्यों आए हैं और कुछ स्थानों पर 'अपना' 'अपने' आदि क्यों ?' क्या आप इस पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?

सुनो—बेटा, 'अपना' शब्द सदा कर्ता के साथ तथा भेदक षष्ठी के साथ सम्बद्ध रहता है। जैसे—'राम अपनी पुस्तक पढ़ता है' में 'राम' कर्ता है और 'अपना' शब्द उससे सम्बन्ध रखता है। 'पिताजी, डाकिया अपनी चिट्ठी दे गया' लिखना और बोलना गलत है। कारण कि 'कर्ता' है डाकिया और 'अपना' शब्द डाकिये से ही सम्बन्ध रखेगा। होना चाहिए 'डाकिया हमारी चिट्ठी दे गया'। 'चिट्ठी' स्त्रीवाची शब्द है; अतः 'अपना' का 'अपनी' बन गया। यदि सचमुच डाकिया अपने नाम की—निज के पतेवाली—चिट्ठी भूल से वहाँ फेंक गया हो तो 'अपनी चिट्ठी दे गया' ही होना चाहिए।

'हिन्दी की अपनी पद्धति है' 'उसका अपना स्वभाव है' आदि में 'अपना' शब्द (भेदक) षष्ठी के साथ सम्बन्ध रखेगा, दूसरे किसी के साथ नहीं।

'बाबा, 'अपने-अपने संस्कार हैं।' 'अपने हुए पराए।' आदि में यह लक्षण कैसे घटेगा? क्योंकि पहले वाक्य में 'संस्कार' कर्ता है तथा दूसरे वाक्य में 'अपने' स्वयं कर्ता है।'

'अपने-अपने संस्कार हैं, वाक्य में 'सबके' षष्ठी का अध्याहार होता है। अर्थात् 'सबके अपने-अपने संस्कार हैं' तथा 'अपने हुए अराए' में 'हमारे' शब्द का अध्याहार होता है। यह लक्षण याद रखो कहीं भी दोष नहीं आएगा।

१९—'कलकत्ता जा रहा हूँ' या 'कलकत्ते जा रहा हूँ' 'पटना जा रहा हूँ' या 'पटने जा रहा हूँ' आदि में कौन-सा वाक्य ठीक है?

चारो ही वाक्य ठीक हैं। चारों में ही 'में' विभक्ति चिह्न लुप्त है। तुम्हारा भाव यह है कि प्रथमा विभक्ति को छोड़कर शेष सभी विभक्तियों में प्रातिपदिक में विकार होता है; जैसे—'कलकत्ते में'। फिर दूसरे 'कलकत्ता' में विकार क्यों नहीं हुआ? इसका कारण है कि उस वाक्य में 'नगर' आदि पद का अध्याहार होता है। 'कलकत्ता में' अर्थात् 'कलकत्ता नगर में'। जब कोई शब्द उद्धरण चिह्न से चिह्नित हो तब उसमें प्रातिपदिक में होनेवाले विकार नहीं करने चाहिए। जैसे—'अच्छी हिन्दी का नमूना' में लिखा है। वाक्य में 'में' से पूर्व 'नामक पुस्तक' शब्द का अध्याहार है। अर्थात् 'अच्छी हिन्दी का नमूना नामक पुस्तक में'। १—'अच्छी हिन्दी के नमूने में', २—'अच्छी हिन्दी के नमूना में'; ३—'अच्छी हिंदी की नमूना पुस्तक में' आदि लिखना ठीक नहीं।

'बाबा, मेरा प्रश्न इन आकारान्त शब्दों के बहुवचनों के विषय में भी है। 'खन्नों में' बनेगा या 'खन्नाओं में' 'राजाओं में' बनेगा या 'राजों में' 'छिलकाओं में' बनेगा या 'छिलकों में' आदि आदि।'

संस्कृत में आकारान्त पुलिग शब्दों का प्रायः अभाव ही है। केवल दो-चार शब्द उदाहरण देने के लिए वैयाकरणों ने घड़ लिए हैं—शंखध्मा, विश्वपा आदि। 'राजा' 'कर्ता' 'भर्ता' 'दाता' आदि जो आकारान्त शब्द दिखाई दे रहे हैं, उनमें कोई नकारान्त है और कोई ऋकारान्त है। परन्तु हिन्दी इन्हें आकारान्त ही ग्रहण करती है। 'बड़े-बड़े राजों ने महल बनाए' 'दातों का मिलना बहुत कठिन हैं' आदि वाक्यों में सन्देह होता है कि 'राजों ने' राजाओं ने ? या राजों ने–कारीगरों ने ? 'दातों ने' दाताओं ने ! या दातों ने ? दात=दात्री—काटने का साधन। इस सन्देह की निवृत्ति के लिए हिन्दी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों आगे 'ओं' विकार आदि करने की पक्षपाती है। जैसे—'कर्ताओं ने' 'राजाओं ने' 'दाताओं ने' 'भ्राताओं ने' आदि। परंतु यह अपने देशी शब्दों के साथ 'ओं' को मिला कर लिखने का आग्रह रखती है। जैसे—'चिमटों से' 'छिलक में' 'कूओं में' 'तिनकों में' कपड़ों को, आदि।

आकारान्त स्त्री लिंग शब्द सदा पृथक् 'ओं' विकार से ही लिखे-बोले जाते हैं। जैसे—'पाठशालाओं में' 'लताओं में' 'गंगाओं में' आदि। मेरे एक बंधु थे (उनका जन्म-स्थान अयोध्या है)। मैं कहता-कहता थक गया। परंतु उन्होंने 'हम पाठशाले में गए' बोलना नहीं छोड़ा। आकारांत स्त्रीवाचक शब्दों में 'ए' विकार नहीं होता जैसे पुंवाचक आकारांत शब्दों में होता है—'घोड़े को' 'घोड़े ने'। वैसे ही 'गंगे को' 'गंगे ने' नहीं।

२०—'बाबा, बाजपेयी जी कहते हैं कि—'हिंदी में 'दिक्-निर्देश' चलेगा' क्या ठीक है ?

'दिक्-निर्देश' नहीं चलेगा। क्योंकि पहले तो व्याकरण की दृष्टि से ही गलत है'दिग्-निर्देश' या 'दिङ्-निर्देश' होना चाहिए। दूसरे 'दिक्' शब्द अमंगलार्थक है—जैसे 'तपेदिक'। तीसरे–'क्यों दिक करते हो' आदि में 'तंग करने' के अर्थ में है। हाँ, 'दिशानिर्देश' अवश्य चलेगा

२१—जैसे 'कबूतर' का स्त्रीवाचक 'कबूतरी' मोर का मोरनी, मुर्गे का मुर्गी, चिड़े का चिड़ी, बनता है ऐसे 'कौए' का 'कौई' क्यों नहीं बनता ?

इन पक्षियों में स्त्रीपुंभिदा होती है—स्त्री-पुरुष=नर-मादा में भेद दिखाई देता है। इसलिए इनके स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं। किंतु 'कौए' में नर-मादे के भेद की प्रतीति नहीं होती; जैसे 'दीमक' 'मच्छर' आदि में। 'कीड़ों' और कीड़ियों में जो भेद दिखाई दे रहा है, वह आकारकृत हैं—छोटा-बड़ा होने के कारण है। वास्तव में उनकी जाति भिन्न-भिन्न है।

'बाबा, संस्कृत में 'चिल्ल' शब्द पुलिंग है, उसका हिंदी में 'चिल्ला' क्यों नहीं बनता ? 'चील' क्यों बनता है ?

—हिन्दी ने 'वार्ता' का 'बात' [वात, बनना चाहिए था, परंतु वात-ोग में सन्देह न हो जाए इसलिए 'व' को 'ब' बना लिया] रात्रि का रात, लत्ता का लात, अक्षि का आँख, [पंजाबी की 'आख'='कहा' क्रिया में सन्देह न हो जाए। उसकी निवृत्ति के लिए अनुनासिक 'आ' बना लिया] यात्रा का 'जात' बनना चाहिए था। परंतु 'जात-पात' आदि में सन्देह होता है इसलिए नहीं बनाया। कुक्षि का कोख, कक्ष का काँख, [तृणवाची 'काख' शब्द से व्यावृत्ति करने के लिए अनुनासिक है] लक्ष का लाख, द्राक्षा का दाख, भिक्षा का भीख, शिक्षा का सीख, लिक्षा का लीख, तथा चिल्ल का 'चील' बना लिया। हमारे यहाँ की पंजाबी बोली में 'चील' को 'इल्ल' कहते कहते हैं। अंग्रेजी ने मध्य में 'ग' का आगम करके 'ईगल' बना लिया। हाँ, पुलिंग से स्त्रीलिंग क्यों बन गया ? सो सुनो, चील के आकार-प्रकार का एक दूसरा पक्षी होता है। उसमें सफेदी अधिक होती है तथा उसकी चोंच पीली होती है। हमारे इधर उसे 'घोगड़' कहते हैं। वह गन्दगी-टट्टी पर बैठता है। घोगड़ और चील का जोड़ा-सा प्रतीत होता है। इसलिए 'घोगड़' को पुलिंग तथा 'चील' को स्त्रीलिंग बोलने लग पड़े।

२२—वाजपेयीजी 'चक्कर' 'रस' आदि शब्दों को एकवचनान्त मानते हैं। क्या यह ठीक है ?

—ठीक है भी, नहीं भी।

'ठीक कैसे ? और नहीं कैसे ?'

'ब्रह्म व्यापक है। उसमें हलचल नहीं होती। अतः उसका चक्कर भी नहीं लगता। माया आपेक्षिक व्यापक है। उसका 'चक्कर चलता रहता' है। काल माया का कार्य है। माया से कुछ छोटा है। अतः 'काल का भी चक्कर चालू रहता है'। परन्तु 'मधुप फूलों पर अनेक चक्कर काटता रहता है' 'लट्टू एक मिनट में सैकड़ों चक्कर काट देता है' 'छोटे व्यक्ति बड़े आदमियों के यहाँ बीसियों चक्कर मारते रहते हैं'। हमारे ठाकुर साहब तो अपने चक्करों का और ही मतलब निकाल रहे हैं। सुनिए—

"वा निरमोहिनी रूप की रासि—
जऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहि बार बिलोकि घरी घरी—
सूरति तौ पहचानति ह्वै है।

'ठाकुर' या मन को परतीति है–
जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिए–
इतनो तो विशेष कै जानति ह्वै है॥"

'चक्कर' एक भी होता है और बहुत भी होते हैं। जैसा अवसर हो वैसा प्रयोग करना चाहिए।

रस तो एक क्या? छह होते हैं—खट्टा-मीठा, कड़वा-तीखा, लवण-कसैला। कवि लोग नौ रस मानते हैं—हास्य, शृंगार आदि। भक्ति को भी कुछ लोग रस मानते हैं। 'शान्त' को भी दसवाँ रस माना है।

२३—वाजपेयी जी लिखते हैं—''सन्तरा' तथा 'सन्तरे' में मात्रा का भेद नहीं, वर्ण का भेद है'।

कृपया, इस पर प्रकाश डालिए?

—वर्णों के (अक्षरों के) उच्चारण काल का नाम मात्रा है। उच्चारण काल से भिन्न वर्णों=अक्षरों का कोई स्वरूप नहीं। लिपि उस उच्चारण का केवल संकेत देती है। उच्चारण मुख आदि द्वारा होता है। स्वरों के बिना व्यंजनों का उच्चारण नहीं होता। उच्चारण लघु-गुरुरूप होता है। एक मात्रा-वाले को लघु तथा दो मात्रा वाले को गुरु कहते हैं। ग्वक्रो=ग् (गुरु) वक्र=टेड़ा (ऽ) होता है। 'ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजुः"=और लघु एक मात्रा-वाला होता है। उसका आकार ऋजु=सरल पाई (।) होता हैं। इसलिए लघु-गुरु को लगमात्रा बोलते हैं। ल=लघुरूप, ग = गुरुरूप मात्रा = उच्चारण काल 'लगमात्रा' पद का अर्थ है। आगे तुम सोचो, कि मात्रा का भेद हुआ या नहीं?

२४—'हमको भी जीने का अधिकार है' में के 'को' चिह्न को वाजपेयी जी सम्बन्ध में बतला रहे हैं। क्या यह ठीक हैं?

'हमको भी अधिकार है' में 'को' षष्ठी का—सम्बन्ध का नहीं। व्रजभाषा आदि में सम्बन्ध में 'को' आता है। जैसे 'सन्त और असन्तन को भेद को बतावतो' 'होत न जग जनम भरतको' [सन्तों और असन्तों का, भरत का] यहां तो 'हमें अधिकार है' वाक्य में 'कर्म' में 'को' है। 'है' क्रिया है। कौन है? अधिकार। अधिकार कर्ता है। किसको है? हमें। 'हमें' कर्म है। 'प्राप्त' शब्द का अध्याहार करना होता है। 'हमें जीने का अधिकार प्राप्त है'। 'राम को सुख हुआ'=सुख प्राप्त हुआ, आदि की भाँति।

यह स्वाभाविक भाषा है। बहुत मँजी हुई है। जिन शब्दों के बिना भी जहां अर्थ का बोध हो जाए वहां उन शब्दों की काँट-छाँट कर देती है। जैसे 'गोरखपुरी टाइप के विद्वान् मेरे लिखे 'गई' को भी 'गयी' बना देते हैं,। पूरा वाक्य इस प्रकार है—'मेरे द्वारा लिखे गए 'गई' शब्द को भी 'गयी' शब्द बना देते हैं' आदि।

२५—'अपने पर विश्वास बैठाना चाहिए' में मेरी दो शंकाएँ हैं। एक तो यह कि इस वाक्य में 'अपना शब्द न कर्ता से सम्बद्ध है और न भेदक-षष्ठीसे। दूसरी यह कि आपने कहा था हिन्दी में निषेध स्थल को छोड़कर कर्मवाच्य तथा भाववाच्य क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता। इस वाक्य में निषेध स्थल के बिना भी प्रयोग हो गया ?

—इस वाक्य में वक्ता या श्रोता कोई भी कर्ता हो सकता है। 'बैठाना' क्रियार्थक संज्ञा है। इसके योग में 'कर्ता' में 'को' चिह्न लगेगा। ऊपर से कर्ता का आक्षेप करना पड़ेगा। जैसे—'तुमको अपने पर विश्वास बैठाना चाहिए' या 'मुझको अपने पर विश्वास बैठाना चाहिए' अथवा—'हमको (हम सबको) अपने पर विश्वास बैठाना चाहिए' आदि।

—खड़ी बोली में १—राम जाता है। २—राम गया था,। ३—राम जाएगा,। ४—राम जाए, आदि प्रयोग होते हैं तथा १—राम को जाना है। २—राम को जाना था। ३—राम को जाना होगा। ४—यदि राम को जाना हो तो जाए। इन उदाहरणों में एक विशेष बात दिखाई देती है। वह यह है कि जाना, खाना, पढ़ना आदि क्रियाओं के साथ भूतकाल का प्रयोग नहीं होता। क्योंकि ये जाना, खाना आदि क्रियाएँ सामान्य भविष्यत् की वाचक हैं। जैसे 'राम को जाना है' अर्थात्—'राम जाने वाला है'। एक दूसरी बात और है कि इन क्रियाओं के पेट में—गर्भ में इच्छा-चाहना, आदि अर्थ रहता है। जैसे—'राम को जाना है'='राम जाना चाहता है' जब जाना, खाना आदि क्रियाओं के साथ 'है' 'था' 'होगा' 'हो' प्रत्यय हों तथा जब साक्षात् 'चाह' धातु का कर्मणि प्रयोग हो तब 'कर्ता' में 'को विभक्ति चिह्न आता है। जैसे 'राम को जाना है'='राम जाना चाहता है, आदि। परन्तु जब जाना आदि क्रियार्थक संज्ञाएँ बन जाएँगी क्रियाएँ नहीं रहेंगी, तब भेदक-सम्बन्धवाची शब्द के आगे 'का' 'के' 'की' आदि चिह्न लगेंगे। जैसे —'राम का जाना ठीक नहीं' आदि। 'राम पढ़ने जाता है' 'राम पढ़ने जाएगा' 'राम पढ़ने गया था' 'राम पढ़ने गया होगा' आदि में 'पढ़ने' कृदन्ती अव्यय है। जिसका अर्थ है—'पढ़ने को या 'पढ़ने के लिए'। संस्कृत के

'पठितुं' के स्थान पर। तीसरी बात यह है कि यदि कृदन्ती अव्यय के साथ 'पा' धातु का प्रयोग कर दें तो 'को' 'के लिए' आदि का भी प्रयोग नहीं होता, जैसे—'वह जाने न पाए' 'वह जाने न पाएगा' 'वह जाने नहीं पाया' 'स्यात् वह जाने न पाए' आदि 'वह जाने को या जाने के लिए न पाए' नहीं बनता। संस्कृत के 'स गन्तुं न शक्नुयात्' के स्थान पर।

दूसरी बात। शंका के विषय में मैंने यह कहा था कि हिन्दी में कर्म-वाच्य तथा भाववाच्य क्रियाओं का चलन बन्द होता जा रहा है। 'मुझसे सोया जाता है' के स्थान पर 'मैं सोता हूँ' 'मैं सो रहा हूँ' 'मुझसे खाया जाता है' के स्थान पर 'मैं खाता हूँ' 'मैं खा रहा हूँ' आदि हलके-हलके रूपों का प्रयोग होता है।

जैसे—'मुझसे खाया जाता है' में 'खाया' शब्द है वैसे—'व्यायाम सिखाया जाता है' में 'खाया' शब्द देखकर दोनों को एक समान मत समझ बैठना। कारण कि 'मुझसे खाया जाता है' में कर्म में प्रत्यय है। कर्म है 'भोजन'। कर्ता है अनुक्त। अनुक्त कर्ता में 'से' विभक्ति चिह्न आता है। ऐसे स्थलों में कर्ता का साथ प्रयोग होता है। 'व्यायाम सिखाया जाता है' में दो कर्ता हैं। एक करने वाला; दूसरा कराने वाला। एक प्रेर्य दूसरा प्रेरक। दोनों ही अनुक्त हैं। 'अनुक्त' ही नहीं 'अप्रयुक्त' भी हैं। सारांश यह निकला कि जब प्रेरणार्थक धातुओं से कर्म और भाव में प्रत्यय होते हैं तब अनुक्त कर्ता का साथ में प्रयोग नहीं होता। यदि कोई करे तो भद्दा लगेगा। जैसे—'हमारे द्वारा शिक्षक से व्यायाम सिखाया जाता है' 'हमारे द्वारा अध्यापकों से अमुक विषय पढ़ाया जाता है' आदि प्रयोग हिन्दी पसन्द नहीं करती। यह तो कहेगी।

१. हमारे यहां व्यायाम सिखाया जाता है।

२. अमुक विद्यालय में धर्मग्रन्थ पढ़ाए जाते हैं।

३. स्वतन्त्रता दिवस पर बच्चे बुलाए जाते हैं। इन वाक्यों में प्रेर्य और प्रेरक दोनो कर्ताओं का वाक्य में प्रयोग नहीं होता।

२६—आपने कहा था कि 'नहीं है' कभी नहीं हो सकता। परन्तु 'है नहीं' हो सकता है। यह बात बुद्धि में नहीं बैठती ?

—बैठा लो, 'है' सत्ता का वाचक है एवं 'नहीं' असत्ता का। सत्ता और असत्ता एक साथ नहीं रह सकतीं। पहले सत्ता की बौद्धिक स्थापना करके 'है नहीं' बोला जा सकता है। परन्तु 'नहीं है' कभी नहीं बोलना चाहिए। देखो सभी लोग बोलते हैं—'हाँ या ना' 'हो न हो' किन्तु 'ना या हाँ' 'न हो हो' कोई नहीं बोलता। कारण कि निषेध के तुरंत बाद बदल जाना मूर्खता

या पागलपन है। अपह्नुति में—कह मुकरी में प्रस्तुत का निषेध करके अप्रस्तुत की स्थापना की जाती है। यहाँ ऐसा कुछ नहीं।

२७—बाबा, जैसे—पुस्तक का 'पुस्तकें' सड़क का 'सड़कें' आदि बनते हैं वैसे ही 'इन्द्रिय' शब्द का 'इन्द्रियें' क्यों नहीं बनता ? 'इन्द्रियाँ' क्यों लिखते बोलते हैं ?

—व्याकरण के नियमानुसार 'इन्द्रियें' ही बनना चाहिए। परन्तु हिन्दी परम वैज्ञानिक भाषा है। इसमें ऐसा एक भी शब्द नहीं जो 'यें'कारान्त हो। सारी रामायण (रामचरित मानस) उठाकर देख लो, अथवा सबको बोलते हुए सुन लो, 'कभी यकार-सहित एकार का उच्चारण नहीं करते। पढ़े-लिखे लोग भी 'ये' नहीं बोलते। परन्तु लिखते 'गये' 'लिये' आदि जरूर हैं जो नहीं लिखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने एक बार भी 'कैकेयी' नहीं लिखा, किन्तु 'कैकेई' ही लिखा है। यद्यपि संस्कृत के अनुसार 'कैकेयी' रूप ही होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि जैसे 'गुड़िया' शब्द का बहुवचन 'गुड़ियाँ' 'बतिया' शब्द का 'बतियाँ' डिबिया का 'डिबियाँ' चिड़िया का 'चिड़ियाँ' पुड़िया का 'पुड़ियाँ' एवं चुहिया का 'चुहियाँ' बनता है। वैसे ही हिन्दी में 'इन्द्रियाँ' शब्द नित्य बहुवचनान्त है। परन्तु यदि एकवचन का प्रयोग हिन्दी को करना ही पड़े तो यह संस्कृत के तत्सम 'इन्द्रिय' शब्द का ही प्रयोग करेगी और बहुवचन में अपने तद्भव 'इन्द्रियाँ' शब्द का। अपने यहाँ तो धाँधली मची हुई है। कोई किसी की नहीं सुनता। अपनी-अपनी हाँके जाते हैं। कोई 'गयी' लिखता है तो कोई 'गई'। वर्तनीकी एक-रूपता प्रामाणिक एवं निश्चित अवश्य होनी चाहिए।

२८—बाबा, आप मुझ पर बड़ी कृपा कर रहे हैं जो अश्रुतपुर्व=जो पहले कभी नहीं सुनीं; ऐसी बातें बता रहे हैं ?

सुनो बेटा, कृपा न बड़ी होती है और न छोटी। हाँ, थोड़ी और बहुत जरूर होती है। साकार वस्तुओं के लिए ही 'बड़ा' शब्द का प्रयोग होता है, निराकार वस्तु के लिए नहीं। इसलिए 'कृपा' निराकार चीज है। इसके लिए 'छोटा' या 'बड़ा' शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसका गुर समझ रखो) जिस शब्द के साथ 'छोटा' शब्द जोड़ा जा सके उसी शब्द के साथ 'बड़ा' शब्द जोड़ना चाहिए; जैसे—'छोटी पुस्तक' 'बड़ी पुस्तक'। जब 'छोटी कृपा नहीं होती' तब 'बड़ी कृपा' कहाँ से होगी।

गुजराती भाषा में 'बड़ा' शब्द का पर्याय 'मोटा' शब्द है। 'बड़े महाराज' के स्थान पर वे बोलते हैं 'मोटा महाराज'। हिन्दी में 'मोटा' सब्द स्थूल

का वाचक है। परन्तु हिन्दी भी एक स्थान पर गुजराती भाषा के अनुसार ही प्रयोग करती है; जैसे—'यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं'। गुजराती में 'छोटी-मोटी' को 'नानी-सूनी' कहते हैं।

२९—क्या इस समाचार-पत्र में कोई अशुद्धि है ?

'सरदार का प्रस्ताव करतल ध्वनि के साथ पास हो गया' तथा 'नेहरू पर से बाबू जयप्रकाश का विश्वास हट गया।'

दोनो वाक्यों में अशुद्धियाँ हैं। होना चाहिए—'करतल-ध्वनि के साथ' के स्थान पर 'करतल-ध्वनि-पूर्वक' तथा 'हट गया' के स्थान पर 'उठ गया'। 'हटना' और 'उठना' क्रियाओं में बहुत अन्तर है। (देखिए—आठवाँ प्रकरण (ख) भाग।

३०—क्या यह विवेचन ठीक है ? यथा—

—संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण (पृ० १३२) में लिखा है कि 'पूर्वकालिक कृदन्त और मुख्य क्रिया का उद्देश्य बहुधा एक ही रहता है, पर कभी-कभी पूर्वकालिक कृदन्त के साथ अलग उद्देश्य आता है; जैसे—

(१) चार बजकर दस मिनट हुए हैं।

(२) इस औषधि से थकावट दूर होकर बल बढ़ता है।

(३) इस व्यापार में खर्च जाकर कुछ बचत होती है।'

—यह विवेचन ठीक नहीं। यह नियम है कि जब दोनो क्रियाओं का कर्ता एक होता है तब पूर्वकालिक कृदन्त आता है; जैसे—'लड़का रोटी खाकर पाठशाला जाता है' में—'खा' और 'जा' क्रिया का कर्ता लड़का ही है। एवं—

(१) 'चार बजकर दस मिनट हुए हैं' में भी बजनेवाले भी मिनट ही हैं और होनेवाले भी मिनट ही। क्योंकि साठ मिनट होने पर हम उनका नाम 'घण्टा' रख लेते हैं। 'घण्टा' मिनटों से भिन्न कोई चीज नहीं। 'चार' संख्या घण्टों की वाचक है। इसलिए यह वाक्य बिलकुल शुद्ध है। 'कभी-कभी उद्देश्य अलग आता है' वाली कोई बात नहीं। दूसरे दोनो वाक्य अशुद्ध हैं। उनके स्थान पर होना चाहिए कि

२—'इस औषधि से थकावट दूर होती है और बल बढ़ता है।'

३—'इस व्यापार में खर्च निकालने पर कुछ बचत होती है।'

३१—बाबा, 'दोनो भाई' 'चारो भाई' लिखना-बोलना चाहिए या 'दोनों भाई' चारों भाई' आदि ?

—जब संख्यावाचक शब्द विशेषण के रूप में आते हैं तब उनपर अनुस्वार नहीं लगानी चाहिए। जैसे—'छहो भाई' आदि में अनुस्वार नहीं लगती। परंतु जब संख्यावाची शब्द विशेष्य की भाँति प्रयुक्त होते हों, अथवा—मुहावरे के रूप में आते हों तब अनुस्वार (बिन्दी) लगानी चाहिए। जैसे 'दोनों का यही मत है' 'सैकड़ों, हजारों' आदि।

३२—बाबा, आपने "उर्वशी और चित्रलेखा आदि आकाश मार्ग से इन्द्रपुरी को चली गईं" को अशुद्ध कैसे बताया ?

—सुनो, यदि तो 'उर्वशी' चित्रलेखा आदि से अलग है तब तो यह वाक्य शुद्ध है। यदि उर्वशी, चित्रलेखा, तिलोत्तमा आदि इसका अर्थ है तब अशुद्ध है। क्योंकि द्वन्द्व समास में 'और' शब्द का प्रयोग नहीं होता। द्वन्द्व समास होता ही 'और' अर्थ में है। जैसे—राम, मोहन, गणेश आदि को पुस्तकें दो"। 'राम, मोहन और गणेश आदि को पुस्तकें दो' लिखना और बोलना गलत है। यदि 'और' शब्द का प्रयोग करना है तो अन्त में 'आदि' शब्द मत रखो। 'जैसे—'राम, मोहन और गणेश को पुस्तकें दो'। यदि दो प्रकार के गण हैं तो उनका समुच्चय करने के लिए 'और' शब्द का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। जैसे—"कमला, विमला, सुकीर्ति आदि लड़कियाँ और मोहन, मुरलीधर, श्मामसुन्दर आदि लड़के सब आ गए" लिखना और बोलना शुद्ध है।

संस्कृत में एक नियम है—"द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येक मभिसम्बध्यते" —द्वन्द्व के अन्त में जो भी पद हो वह प्रत्येक के साथ जुड़ जाता है। जैसे—'सुप्-तिङन्तम्' में 'अन्त' पद ही द्वन्द्व के अन्त में है। उसका सुप् और तिङ् दोनों के साथ सम्बन्ध है। जिसका अर्थ होता है—सुबन्त और तिङन्त। हिन्दी में यह नियम थोड़ा-सा परिवर्तित करके ज्यों-का-त्यों गृहीत कर लिया। परिवर्तन यह है कि 'पदं' के स्थान पर 'पद या प्रत्यय' कुछ भी हो, उसका प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है। जैसे—'राम, मोहन, मुरलीधर और गौरीशंकर के पास सौ-सौ पुस्तकें हैं' में 'के' प्रत्यय का तथा 'पास' पद का सबके साथ सम्बन्ध है। 'राम के पास, मोहन के पास, मुरलीधर के पास, तथा गौरीशंकर के पास यह अर्थ है। द्वन्द्व होना चाहिए—चाहे वह समस्त हो चाहे व्यस्त। अर्थात्—द्वन्द्व में आए शब्दों का चाहे समास कर दिया हो चाहे न किया हो उसके अन्त के पद और प्रत्यय का या दोनों का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होगा ही। 'राम, कृष्ण, जगदीश आदि को बुला लाओ' यहाँ द्वन्द्व समास में 'को' प्रत्यय का तीनों के साथ सम्बन्ध है। 'राम, कृष्ण और

जगदीश को बुला लाओ' में असमस्त द्वंद्व में भी 'को' प्रत्यय का तीनों के साथ संबंध है।

एक वर्ष हुआ, मैं हरिद्वार गया था। वहाँ एक आश्रम में संस्कृत-विद्यालय का उद्‌घाटन-मुहूर्त हो रहा था। पण्डितजी महाराज ने आरम्भिक पाठ पढ़ाया। उन्होंने "द्वंद्वादौ द्वंद्वान्ते वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येक मभिसम्बध्यते" ऐसा पाठ उच्चरित किया। यह पाठ पहली बार ही मेरे कान में पड़ा। शेष नियम तो मुझे भी याद था। मैंने पूछा—पण्डितजी, 'द्वन्दादौ' का कौन-सा उदाहरण है ? थोड़ी देर सोचने के बाद वे बोले—सोच-विचार कर फिर इसका उदाहरण बताऊँगा। वहीं बैठे-बैठे मेरे ध्यान में बात आ गई कि 'श्री रामचंद्र-कृष्णचंद्र-रघुनंदन-यदुनंदन महाभागानां पादपद्मेषु मे भूयांसि नमांसि' में आदि में पड़े 'श्री' शब्द का प्रत्येक के साथ संबंध होता है। हिंदी में भी वैसे ही है—"सर्वश्री द्विवेदी जी, शुक्लजी, मुंशीजी, गुप्तजी आदि हिंदी की श्रद्धेय विभूतियाँ हुई हैं" में 'सर्वश्री' शब्द का जो द्वन्द्व के आदि में पढ़ा है—सबके साथ संबंध है तथा "स्वनामधन्य बाबू श्यामसुन्दर दासजी, भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी आदि" में भी द्वंद्व के आदि में पठित 'स्वनामधन्य' पदका सबके साथ संबंध होता है। इसलिए "यह पुकार मेनका, रम्भा, और सहजन्या आदि अप्सराओं की थीं" में का 'और' शब्द लुप्त होना चाहिए। 'मेनका, रम्भा, सहजन्या आदि अप्सराओं की' होना चाहिए।

संस्कृत में एक नियम है कि यदि स्त्री-वाची और पुंवाची शब्दों का एक शेष करना हो—अन्य का लोप करना हो तो पुंवाची शब्द ही शेष रहता है। जैसे—'सा च स च-इति तौ' पुंवाची होगा स्त्रीवाची रूप 'ते' नहीं। संस्कृत में नपुंसकवाची शब्द भी होते हैं। यदि तीनों में का एक शेष करना हो तो नपुंसक शेष=बाकी रहता है—अन्य का लोप हो जाता है। जैसे—'स च, सा च तच्च, इति तानि 'ते' या 'ताः'नहीं होगा। हिन्दी में भी 'सीता और राम गए' होगा, 'सीता और राम गईं' नहीं होगा। 'गई ओर गया' का शेष करने पर पुंवाची शब्द=क्रिया शेष रहेगी। इसलिए 'सीता और राम गए' ही बनेगा। किन्तु 'सीता और राम गईं' नहीं बनेगा 'गीता और भागवत पढ़ लिए' 'भागवत और भगवद्‌गीता पढ़ लिए' ही होगा।

वास्तव में एक नियम है कि 'जब द्वन्द्व समास हो या द्वन्द्व समास हो सकने का स्थल हो तब स्त्रीवाची शब्द ही वाक्य में पहले रखने चाहिए'। जैसे 'भगवद्‌गीता और भागवत पढ़ लिए'। कुछ-एक विद्वान् 'दोनो' शब्द का आक्षेप=अध्याहार करने के पक्ष में हैं। हमारे मत से अध्याहार की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

३३—बाबा, आपने कहा था कि भूतकाल वाची सकर्मक धातुओं के रूपों का प्रयोग होने पर कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है तथा अकर्मक धातुओं के भूतकाल वाची रूपों के योग में 'ने' चिह्न नहीं आता। जैसे—'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' तथा 'मैं हँसा'। परन्तु 'मैं ग्रन्थ पढ़ चुका' में कर्ता में 'ने' चिह्न क्यों नहीं आया ?

—सुनो, यदि सकर्मक धातु के अन्त में अकर्मक धातु का रूप हो तो सकर्मक धातु भी अकर्मक ही बन जाती है तथा यदि सकर्मक धातु के अन्त में सकर्मक धातु का रूप हो तो सकर्मक ही रहती है। जैसे—'मैं ग्रन्थ पढ़ चुका' में 'मैं' कर्ता है। 'पढ़ चुका' क्रिया है। 'ग्रन्थ' कर्म है। किन्तु अन्त में 'चुका' रूप अकर्मक धातु का है। अतः—सकर्मक 'पढ़' धातु भी अकर्मक बन गई। 'मैं ग्रन्थ पढ़ लिया' नहीं बनेगा कारण कि अन्त में 'लिया' रूप सकर्मक 'लेना' धातु का है। अतः 'मैंने ग्रन्थ पढ़ लिया' ही होगा। अथवा यदि सकर्मक धातु के अन्त में अकर्मक धातु का भूतकाल वाची रूप हो तो कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न नहीं आता।

३४—बाबा' 'राम के साथ आया' या 'राम के सहित आया' दोनों में से कौन-सा प्रयोग ठीक है ?

—आजकल दोनो प्रकार का ही प्रयोग चल रहा है। वास्तव में 'साथ' और 'सहित' शब्द पर्याय नहीं। क्योंकि जो लोग—हितेन सह वर्तते इति सहितम्' ऐसी व्युत्पत्ति करते हैं, उनके मत से भी 'साथ' का पर्याय 'स' है 'सहित' नहीं। मैंने भी कई जगह बाँचा है कि 'हितेन सह वर्तते इति सहितम्' सहितस्य भावः साहित्यम्'। परन्तु यह व्युत्पत्ति गलत है। यह गलती 'स' शब्द के कारण हुई है। 'हित' शब्द का अर्थ है जिससे हमारा धारण और पोषण हो। क्योंकि 'डुधाञ्-धारणे' धातु से 'हित' रूप बना है। दधातेर्हि' पाणिनि सूत्र से 'धा' के स्थान में 'हि' आदेश हो गया। सम्यक् हित का नाम 'सहित' है। यहाँ का 'स' न तो 'सह' के स्थान में आया है और न 'समान' के स्थान में आया है। यह तो सम्यक् अर्थक 'सम्' के स्थान में विकल्प से आता है। जैसे 'सतत' और संतत' शब्द का अर्थ 'विस्तार के साथ' नहीं होता। वैसे ही 'सहित' और 'संहित' शब्द का अर्थ भी 'हित के साथ' नहीं होता। जैस 'सतत' और 'सन्तत' शब्द का अर्थ 'निरन्तर' है, वैसे ही 'सहित' और 'संहित' शब्द का अर्थ भी 'सम्यक् हित' है, 'साथ' नहीं। संस्कृत में इसके लिए विशेष नियम बना हुआ है—"समो वा हित-ततयोः"='सम्' के मकार का विकल्प से लोप होता है 'हित' और 'तत' शब्द यदि आगे हों

तो। सम्यक् हित का साधक होने के कारण ही 'आचार संहिता' तैयार की जाती है।

३५—बाबा, 'बैन' शब्द कैसे बन गया ?

सुनो, हिन्दी में ऊष्म वर्णों का उच्चारण सुखपूर्वक नहीं होता। हिन्दी संस्कृत के 'तत्सम' शब्दों को ज्यों का त्यों गृहीत कर लेती है तथा उसके तद्भव शब्दों में परिवर्तन कर लेती है। जैसे वार्ता का बात, शोक का सोग, लोक का लोग, प्रकट का प्रगट, यथा का जैसे, मयन का मैन, नयन का नैन, वचन का (पहले वयन) फिर वैन, 'व' को 'ब' बैन, बना लिया। इवर्ण के अन्त में या इवर्ण के आदि में 'य' का उच्चारण हिन्दी नहीं करती। जैसे—'गयी का 'गई' कैकेयी का 'कैकेई' नियम का नेम (नित्यनेम) गये का 'गए' आदि।

३६—'ये दो काम तुम्हें करने हैं' तथा 'ये काम तुम्हारे करने के हैं' वाक्यों में एक स्थान पर चतुर्थी एवं दूसरे स्थान पर षष्ठी कैसे आ गई ?

पहले वाक्य में योग्य आदि अर्थक 'करना' क्रिया के योग में 'तुम्हें' (तुमको) यह कर्ता में उपपद चतुर्थी का 'को' विभक्ति चिह्न आया है।

दूसरे वाक्य में 'करने के' संज्ञा है। इसलिए 'तुम्हारे' षष्ठी हो गई। 'द्वारा' तथा 'योग्य' इन दो शब्दों का अध्याहार करना पड़ता है। जैसे—'ये काम तुम्हारे द्वारा करने के योग्य हैं'। इसी प्रकार 'यह काम राम को करना है' तथा 'यह काम राम के करने का है' आदि प्रयोग होते हैं।

३७—'उन सब बातों की रुकावट नहीं हो सकती; जिन्हें हमें नहीं करना चाहिए' [चिन्तामणि; आ. रा. चं. शुक्ल]

—'जिन्हें हमें' में सन्देह हो जाता है कि दोनों में से कौन कर्ता है और कौन कर्म है ? जैसे—'राम को कृष्ण को बुलाना है' में कर्ता और कर्म में सन्देह है। राम कृष्णको बुलाना चाहता है या कृष्ण रामको ? 'जिन्हें हमें नहीं करना चाहिए' के स्थान पर 'जो हमें नहीं करनी चाहिए' होगा।

३८—'हिन्दी शब्दानुशासन' 'गँठ-बन्धन' तथा 'पँचमेल मिठाई' लिखने का आदेश देता है। आपका क्या आदेश है ?

—'गठ-बंधन' तथा 'पंचमेल' या 'पञ्चमेल' रूप शुद्ध हैं। यहां का 'गठ' शब्द 'गाँठ' से नहीं बना। अपितु 'संगठन' वाला 'गठ' शब्द यहां है। 'पाँच' को समास में 'पच' आदेश हो जाता है या तत्सम 'पंच' ही रहता है।

जैसे—'पचीस' 'पचास' पचपन, 'पचहत्तर' 'पचासी' 'पचानवें' आदि। कहीं कहीं 'पच' के चकार का लोप भी हो जाता है। जैसे—'पन्द्रह' 'पसेरी' 'पैंतीस' 'पैंतालीस' आदि।

३९—'यह सब उन हिन्दी व्याकरणों का परिणाम है जो संस्कृत के आधार पर लिखे गए हैं (पृ० २५२) इस (हिन्दी-शब्दानुशासन) ग्रन्थ के सिद्धान्त विज्ञान की भित्ति पर हैं जो कभी बदलेंगे नहीं' (पृ० ४४९)

'राम को ज्वर है' में 'रामको' कर्मकारक है। 'है' का यहां—सकर्मक प्रयोग है।' (वाजपेयी जी)

—'है' क्रिया का सदा अकर्मक प्रयोग ही होता है। कारण कि यह केवल सत्ता की बोधक है। 'रामको' में 'को' देखकर जो सकर्मक की कल्पना की गई है—वह ठीक नहीं। ऐसे स्थलों पर 'प्राप्त' आदि पदों का अध्याहार करना पड़ता है। जैसे—'रामको ज्वर प्राप्त हुआ है'। 'रामको ज्वर हुआ या रामको ज्वर है' ज्वर बाहर से नहीं आता; किंतु आन्तर होता है। इसलिए हिन्दी 'प्राप्त हुआ' आदि पदों को सदा लुप्त करके बोलती है।

४०—'मैंने हँस दिया' या 'मैं हँस दिया' 'मैंने रो दिया' या 'मैं रो दिया' आदि में कौन-सा वाक्य शुद्ध है?

—ये दोनो ही वाक्य अशुद्ध हैं। कारण कि संस्कृत गणी धातु रूपों को छोड़कर सकर्मक धातुओं से कर्म में तथा अकर्मक कातुओं से भाव में प्रत्यय करती है। जैसे 'मया पठितम्' तथा 'मया हसितम्'। 'पठितम्' कर्म में प्रत्यय है 'पुस्तकम्' कर्म है। 'हसितम्' भाव में प्रत्यय है।

हिन्दी ने अपना नया मार्ग निकाल लिया। यह भाव में प्रत्यय करने की पक्षपाती नहीं। अकर्मक धातुओं से तीनों कालों में सदा कर्ता में ही प्रत्यय करती हैं; जैसे—'मैं हँसता हूँ' 'मैं हसूँगा', 'मैं हँसा।' सकर्मक धातुओं से वर्तमान तथा भविष्यत् काल को छोड़कर भूतकाल में कर्म में प्रत्यय करती है। जैसे—'मैं पढ़ता हूँ' 'मैं पढ़ूँगा' 'मैंने पढ़ा'। 'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' कर्म में प्रत्यय है एवं भूतकाल है। 'ग्रन्थ' कर्म है। 'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' 'मैंने ग्रन्थ पढ़े' आदि।

इतना और विवेक कर लेना चाहिए कि जब सकर्मक धातुओं के आगे 'चुका' भूतकालिक रूप का या किसी अकर्मक धातु का प्रयोग हो तब भी कर्ता में ही प्रत्यय आता है। जैसे—'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' के स्थान पर 'मैं ग्रन्थ पढ़ चुका' या 'मैं सारा ग्रन्थ पढ़ गया' आदि। किन्तु अकर्मक धातुओं के आगे सकर्मक धातुओं का प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे—'मैंने हँस दिया' 'मैंने रो दिया' आदि लिखना या बोलना ठीक नहीं। हाँ अकर्मक धातु के आगे

अकर्मक धातु का रूप आएगा। परंतु 'मैं हँस पड़ा' आदि लिखना-बोलना ठीक है। इस सिद्धान्त या नियम अनुसार 'मैंने हँस दिया या मैं हँस दिया' दोनो प्रयोग ही अशुद्ध हैं। होना चाहिए 'मैं हँस पड़ा' 'मैं रो पड़ा' आदि। इसलिए 'मैं मर लिया' 'मैं सो लिया' लिखना-बोलना अशुद्ध है। होना चाहिए—'मैं मर चुका या मर गया' 'मैं सो चुका' आदि। 'हम रो दिए' 'हम मर लिए' ये उर्दू प्रयोग हैं। भावार्थ यह निकला कि सकर्मक धातु के आगे अकर्मक धातु तो आ सकती है; पर अकर्मक धातु के आगे सकर्मक धातु नहीं आ सकती। जब सकर्मक धातु के आगे अकर्मक धातु आएगी तब सकर्मक भी अकर्मक बन जाएगी;—'मैं ग्रन्थ पढ़ गया आदि।

४१—'मेरा किया हुआ अभिनन्दन सम्पूर्ण हिन्दी जगत का अभिनन्दन है'—आचार्य किशोरीदास वाजपेयी।

यह वाक्य पद्मश्री श्रीरामचन्द्रजी वर्मा का अभिनन्दन करते हुए 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (९ जनवरी १९६६) में श्री वाजपेयी जी ने लिखा है; जो युक्तियुक्त नहीं।

कारण कि 'मेरा किया हुआ सम्मान' 'मेरा लिखा हुआ लेख' 'मेरा किया हुआ काम' आदि में तथा 'मेरे द्वारा किया हुआ सम्मान' 'मेरे द्वारा लिखा हुआ लेख' 'मेरे द्वारा किया हुआ काम' आदि में महान् अर्थ-भेद है। पहले के तीनो उदाहरणों में 'स्व-स्वामी-भाव' सम्बन्ध है तथा दूसरे तीनो उदाहरणों में 'कर्तृ-कार्य-भाव' सम्बन्ध है। अर्थात् पहले के तीनो उदाहरणों का अर्थ 'मत्स्वामिक, सम्मान, लेख एवं काम। सम्मान, लेख तथा काम मेरे 'स्व' हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। 'मेरा' 'किया' 'हुआ' 'लिखा' शब्द सम्मान, लेख तथा काम के व्यावर्तक हैं। दो-दो विशेषण हैं एवं 'मेरा' भेदक षष्ठी है, विशेषण नहीं। कारण कि विशेष्य और विशेषण समान विभक्तिक होते हैं; किंतु षष्ठी भिन्न विभक्तिक होती है।

'मेरे द्वारा किया हुआ सम्मान' आदि तीनो उदाहरणों में 'कर्तृकार्य-भाव' सम्बन्ध है 'मत्कर्तृक' जिसका अर्थ है। अर्थात्—मैं कर्ता हूँ तथा सम्मान लेख एवं काम मेरे कार्य हैं। यहाँ 'मेरे द्वारा' यह भेदक षष्ठी नहीं; अपितु कर्तृतृतीया है। 'द्वारा' अव्यय के कारण कर्ता में 'मेरे' षष्ठी हो गई। यह बात निम्नलिखित उदाहरण से और अधिक स्पष्ट हो जाएगी; जैसे—'मेरा छपा हुआ लेख' अर्थात्—जो लेख है वह मेरा 'स्व' है और में उसका स्वामी हूँ। छापनेवाला कोई दूसरा है। 'मेरे द्वारा छपा हुआ लेख' उदाहरण में छापनेवाला मैं ही हूँ, वह लेख चाहे मेरा हो चाहे किसी दूसरे का। इसलिए 'मेरा किया हुआ अभिनन्दन सम्पूर्ण हिंदी-जगत् का अभिनन्दन है' के स्थान

पर होना चाहिए 'मेरे द्वारा किया हुआ अभिनन्दन सम्पूर्ण हिंदी जगत् द्वारा किया हुआ अभिनन्दन है'।

४२—'श्लोक कण्ठ कर लिया या श्लोक कण्ठस्थ कर लिया ?'

—दोनो ही वाक्य शुद्ध हैं। कण्ठ के आगे की 'में' विभक्ति लुप्त है; 'कण्ठ में कर लिया' अर्थ है; जैसे—'बनारस रहता हूँ' में 'बनारस' शब्द के आगे का 'में' विभक्ति चिह्न लुप्त है।

४३—'मैं वहाँ गया था। और मैंने उससे जाकर कहा' में क्या गलती है ?

—विराम के बाद संयोजक 'और' अव्यय नहीं आना चाहिए। किंतु अन्य-अर्थक 'और' आ सकता है; जैसे—'मैं वहाँ गया था। और बातों की भी चर्चा चलाई थी' आदि।

जिसके दर्शन से हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ तृप्त=खुश हो जाएँ उस मानसिक प्रफुल्लता के कारण का नाम 'प्रिय' है। प्रिय की प्राप्ति से 'मोद' होता है और उसके उपभोग से 'प्रमोद' होता है, अर्थात्—दर्शनजन्य प्रियता' प्राप्ति-जन्य 'मोदता' कथा उपभोगजन्य 'प्रमोदता' होतीं है।

जब वह प्रियता दोनो ओर (परस्पर) होती है तब वह 'प्रीति' कहलाती है। 'हृदयमेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्'।

जिसके आचरण का हमारी मानसिक वृत्तियों पर रंग चढ़ जाता है उसके प्रति हमारा 'राग' हो जाता है। जिनके आचरण से खराब रंग चढ़ने लगता है उसके प्रति 'विराग' हो जाता है। 'राग' हो जाने के बाद जो मानसिक अवस्था है वह 'अनुराग' कहलाती है।

वह 'प्रीति' जब अपने से छोटे की ओर हो जाती है तब 'स्नेह; कहलाती है। स्नेह (तरल पदार्थ) नीचे की ओर बहता है। अतः 'सस्नेह आशीर्वाद' लिखना या बोलना तो ठीक है; परंतु 'सस्नेह प्रणाम या नमस्कार' लिखना या बोलना ठीक नहीं।

जब यही प्रीति अपने से बड़े की ओर होती है तब 'श्रद्धा' कहलाती है तथा बराबर वाले के साथ 'प्रेम'।

——

राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप

(ख)

१

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति

यदि हम हिन्दी-भाषा को भगवती भागीरथी का रूप मान लें तो संस्कृत-भाषा को उसका उद्‌गम-स्थान गंगोत्तरी मानना होगा। व्याकरण तो भाषारूपी भागीरथी का उन्नत किनारा होता ही है, जो भाषा-भागीरथी के साथ-साथ चला चलता रहता है तथा उसकी स्वच्छन्द गति में किसी प्रकार की कोई बाधा न डालकर उसे इधर-उधर भटकने से सदा रोकता रहता है। जिसके कारण भाषा-भागीरथी अपनी उसी स्वच्छन्द गति से निर्बाध बहती चली चलती है, इधर-उधर भटककर (अनेक धाराओं में बिखरकर) नष्ट-भ्रष्ट नहीं होती। इसी गति का दूसरा नाम 'ढंग' है। यह ढंग प्रत्येक भाषा का अपना अपना स्वतंत्र होता है। किसी एक भाषा के ढंग को किसी दूसरी भाषा में व्यवहृत या प्रयुक्त करके उस भाषा का ढंग ही नहीं बिगाड़ना; उसका स्वरूप भी बिगाड़ना है। भाषा के नैसर्गिक स्वरूप की रक्षा उसके अपने ढंग से ही हो सकती है। इसलिए प्रत्येक लेखक या वक्ता का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी भाषा के स्वरूप की सब प्रकार से रक्षा करे।

व्याकरण को किनारा कहने का यह मतलब कदापि नहीं कि वह भाषा में बाहर से कुछ आने ही नहीं देता। भले ही बाहर से कुछ आए; पर उसे व्याकरण के शासन में ही रहना पड़ेगा। 'नौ बैरागी, ग्यारह चूल्हे' नहीं हो सकेगा। उसे तो इधर भरती होते ही दूसरों की भाँति उन्हीं के वेश में और उन्हीं के साथ-साथ पैर उठाना होगा—कन्धे से कन्धा भिड़ाकर

चलना होगा—और उतार कर दूर रख देना होगा अपने उस धारीदार तहमत तथा वियद्-विहारी तुर्रे को। यहाँ तो 'कागजात' को 'कागज', 'फीट' को 'फुट' 'लैनटर्न' को 'लालटैन' और 'जरूरियात' को 'जरूरतें' जरूर ही बनना पड़ेगा। यही तो वेदान्तियों का 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' है।

जिस प्रकार भगवती भागीरथी अपने उद्गम-स्थान पर बहुत ही लघु रूप में होती है। पर ऋषिकेश तक आते आते वह 'बृहदाकार' हो जाती है, और हरिद्वार पहुँचने पर तो उसका अनेक प्रकार से उपयोग भी होने लगता है। वह हमें अपना जीवन (जल) देकर स्वस्थ, नीरोग तथा हृष्ट-पुष्ट बनाती है; हमारी इस रत्नगर्भा वसुन्धरा को उर्वरा, शस्य श्यामला, विश्वम्भरा और भी न जाने क्या-क्या बना डालती है। क्या मार्ग में उसमें अन्य पहाड़ी स्रोत नहीं मिलते? क्या वे उसके उस नैसर्गिक रूप में कुछ बाधा डालते हैं? वे तो अपना जीवन (जल) देकर उसके उस रूप को विपुल बनाते हैं, उसे गति देते हैं, और उसकी युगान्त स्थायी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाते हैं। तरल स्रोतों के ही कारण वह शुद्ध सुनिर्मल बनी हो यह बात नहीं। अपितु आते समय ननिहाल से जो अपने साथ कंकड़ लेती आई थी; उनका भी इसमें बहुत-कुछ हाथ है। नीलधारा या सप्तसरोवर पर पड़े हुए छोटे-छोटे उन गोल-मटोल कंकड़ों को देखकर भले कोई शैव या वैष्णव शिवलिङ्ग या शालिग्राम की भावना कर बैठे, पर किसी पेट के धनी व्यक्ति की जीभ तो उन्हें देखते ही बंगाली टोले के रसगुल्लों और गुलाब-जामुनों की याद से गीली हुए बिना नहीं रह सकती।

सारांश यह कि कितनों (स्रोतों) को तो भागीरथी ने बिलकुल आत्मसात् कर लिया है, कितनों का रूप परिवर्तित कर डाला है (गोल-मटोल बना दिए हैं) और कितने उसके प्रवाह में न बहकर अपने उसी रूप में ज्यों-के-त्यों पड़े हैं।

ठीक इसी प्रकार हमारी हिन्दी भी अपनी नानी (संस्कृत) के यहाँ से बहुत-से शब्द अपने साथ लेती आई थी। जो तो आते आते घिस गए; भाषा शास्त्री उन्हें 'तद्भव' कहने लगे, जो ज्यों-के-त्यों पड़े रहे; उनका नाम पड़ा 'तत्सम' जो बाहर से आकर मिल गए; वे कहलाए 'परकीय' और जो यहाँ के निवासियों की बोलियों में से लिए गए; वे हुए 'देशी'।

हिन्दी शब्द-विभाग

१—**तद्भव**-खेत, सेज, मेह, दूध, हाथ, आदि। इनके मूलरूप—क्षेत्र, शय्या, मेघ, दुग्ध, हस्त आदि।

२—**तत्सम**–राजा, माता, कवि, नदी, वृक्ष, सूर्य, आदि ।

३—**परकीय**

अरबी—इम्तिहान, औरत, तारीख, आदि ।

फारसी—आदमी, आबादी, बाग, चश्मा, चाकू आदि ।

तुर्की—कोतल, तोप, लाश, आदि ।

पोर्चगीज—पादरी, गिर्जा, कमरा, पलटन, आदि ।

अंग्रेजी—अपील, डाक्टर, कोर्ट, पैंसिल, इन्च, पैंशन, फुट, बैंक, होटल, आदि ।

४—**देशी**–रोड़ा, खिड़की, ठेस, होड़, टोला, पगड़ी, झिलमिल, रिमझिम, ऊधम, खलबली, खटखटाना आदि ।

सब प्रकार के इन शब्दों से हमारी हिन्दी का कलेवर खूब पुष्ट हुआ। इसका कोश बढ़ा; इसमें दूसरी भाषाओं के समान अनेक विषयों पर ग्रन्थ निर्माण की योग्यता आई। इस विषय में श्रद्धेय आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने उस यन्त्र का-सा काम किया; जो (यन्त्र) नदी के आविल (गँदले) जल को शुद्ध और पेय बनाकर लोह-नलिकाओं द्वारा लोगों के घरों तक पहुँचाता है। द्विवेदी जी ने भी हिन्दी को शुद्ध (व्याकरण-सम्मत) बनाकर अपनी प्रगट 'सरस्वती' के द्वारा लोगों तक पहुँचाया। 'हमारा साहित्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे।......गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी तब तक बना रहेगा'—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

जिस प्रकार किसी कुम्भ आदि पुण्य पर्वों पर धार्मिक लोग गुप्तदान करना कोटिगुना फलजनक मानते हैं, और इसी प्रकार से प्रेरित होकर वे रुपया, सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ जल में बहा देते हैं। पर वे गरिष्ठ होने के कारण तल पर जा बैठती हैं तथा कुछ लोग काशीफल (कुम्हड़ा-पेठा) आदि में स्वर्ण, रत्न आदि डाल या भर कर प्रवाह में बहा देते है; पर काशीफल के पोले होने के कारण वे ऊपर ही तैरते रहते हैं।

ठीक उसी प्रकार आजकल हमारी हिन्दी भाषा में भी गुप्तदान चल रहा है। पुराने संस्कारों के कुछ लोग तो संस्कृत को देववाणी मानकर अवसर हाथ लगते ही चुपचाप गुप्तदान कर जाते हैं। पर वे गरिष्ठ एवं क्लिष्ट होने के कारण निम्नतल में ही पड़े रह जाते हैं; वर्तमान में उनका चलन नहीं हो

पाता। भले ही समयान्तर में वे सौभरि ऋषि के समान हाड़-माँस गलाकर चल पड़ें तो यह दूसरी बात होगी। 'अन्ताराष्ट्रिय' (अन्तर्राष्ट्रीय) 'पुन-रचना' (पुनर्रचना) 'क्लिष्ट' 'अविमृष्ट' आदि शब्द इसी कोटि के हैं, कुछ लोग मानसिक परतंत्रता के कारण परकीय शब्दों के प्रयोग करने में जरा भी हिचकिचाते नहीं; वाक्य वाक्य पर 'फूल' (मूर्ख) 'माइण्ड' (मस्तिष्क) आदि, शब्दों को निधड़क प्रयुक्त करते चले जाते हैं। पर ये शब्द भाषा के अंग न बनकर उसी काशीफल के समान ऊपर ही ऊपर तैरते दिखाई देते हैं। 'आचार्य शुक्ल जी.........केवल शैली को महत्त्व देनेवाले कोरे अभिव्यञ्जनावादियों के सख्त खिलाफ हैं' में 'सख्त खिलाफ' पर ध्यान गए बिना नहीं रह सकता। कारण कि आरम्भ से लेकर यहाँ तक उस लेख में एक भी परकीय शब्द नहीं आने पाया। लगभग पौने सौ पंक्तियों के बाद इस 'युगल-जोड़ी' के दर्शन होते हैं। इसलिए यह प्रयोग खटकता है। मानो किसी ने खड़ाऊँ, धोती और बगलबन्दी पहने हुए किसी मारवाड़ी सेठिया भक्त के सिर पर यह काली पूँछवाली लाल टोपी रख दी हो। यहाँ तो अमृती-सी गुँथी हुई गुलाबी पगड़ी ही फब सकेगी। यदि कहें कि 'कट्टर विरोधी' रख देने से तो 'श्रुतिकटु' (जो कानों को मधुर न लगे) दोष आ जाएगा। पर 'सख्त खिलाफ' रख देने पर भी 'अम्बूकृत' (जिसके उच्चारण में थूक गिरे) दोष आ ही गया। प्रथम तो एक-दो टकारों के उच्चारण में 'श्रुतिकटु' दोष होता ही नहीं, होता भी हो तो वह शृंगार रस में। पर यहाँ तो 'कट्टर' कहे बिना वह कटुता व्यक्त ही नहीं हो पाती जो इस वाक्य का असली विधेय है।

निष्कर्ष यह निकला कि अब हमें आवश्यकता के बिना दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में ठूंस-ठूंस कर इसे कृत्रिम तथा कठिन नहीं बनाना चाहिए। तभी दूसरी भाषाओं से शब्द लेने चाहिए, जब हमारे शब्द हमारे हार्दिक भाव प्रगट करने में अशक्त-से प्रतीत होते दिखाई दें। बिना आवश्यकता के किसी के आगे हाथ पसारते फिरना तो 'घर की खाँड किरकरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा' के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

जिसे देखिए वही जहाँ-तहाँ बिना समझे-बूझे 'बड़ा' शब्द का प्रयोग करके चलते बनता है। मानो 'बड़ा' शब्द के अतिरिक्त हमारे कोश में कोई दूसरा शब्द है ही नहीं। यथा—

१—विराम चिह्न बड़े सहायक होते हैं।

२—बड़े-बड़े सूक्ष्मभावों का।

३–दोनों प्रकार के निबन्धों के बीच की रेखा बड़ी क्षीण है।

४--हास्यरस में सुरुचि की बड़ी आवश्यकता है।

५--बड़े आदर से लिया जाता है।

६--प्रेम का बड़ा सुन्दर स्वरूप दिखाई देता है।

८—इन्होंने बड़े सुन्दर नीति के दोहे लिखे हैं।

श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'अच्छी हिन्दी' तथा 'हिन्दी प्रयोग' लिखकर हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की है। इन दोनो पुस्तकों में लेखकों से होनेवाली हजारों भूलों का मार्मिक विवेचन किया गया हैं। उन्होंने 'बड़ा' शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में बताया है कि "बड़ा' शब्द विशेषण ही है और इसलिए उसका प्रयोग केवल संज्ञाओं से पहले होना चाहिए; विशेषण, क्रिया या क्रिया विशेषण के पहले नहीं होना चाहिए"। यद्यपि इस लक्षण के अनुसार ऊपर के सब उदाहरण अशुद्ध ठहरते हैं। फिर भी कुछ उदाहरण ऐसे हैं; जो इस लक्षण के अनुसार शुद्ध होने पर भी अशुद्ध ही हैं। जैसे—

अशुद्ध	शुद्ध
१—बड़ा शब्द है।	१—घोर या ऊँचा शब्द हैं।
२—बड़ा स्पर्श है।	२—कोमल या मृदु स्पर्श है।
३—बड़ा ही रूप है।	३—सुन्दरतम रूप है।
४—बड़ी सुगन्ध है।	४—उत्कट गन्ध है।
५—बड़ा तेज है।	५—उग्र या चण्ड तेज है।
६—बड़ी बुद्धि है।	६—तीव्र या तीक्ष्ण बुद्धि है।
७—बड़ा दुःख है।	७—महा, अति या बहुत...।
८—बड़ी हवा है।	८—तीव्र या तेज...।
९—बड़ा आकाश है।	९—विपुल या व्यापक...।
१०—बड़े-बड़े सूक्ष्म भाव	१०—सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव।

अपने लक्षण का अनुसरण करने से ही श्री वर्माजी की लेखनी से भी कुछ ऐसे उदाहरण निकल ही गए हैं। जैसे—'बड़ी बड़ी आशाएँ' (बहुत बहुत, होना चाहिए)। 'बहुत बड़े सुखजीवी' (बहुत ही या बहुत अधिक, होना चाहिए) 'बहुत बड़ी अराजकता फैली हुई थी' (बहुत अधिक लिखना ही संगत है)। मेरी सम्मति में 'बड़ा' शब्द को 'बृहत्' शब्द का तद्भव मानना चाहिए। इसलिए "इसका प्रयोग सदा साकार पदार्थों के लिए ही करना

चाहिए या जिनका आकार बन सके उनके लिए; निराकार पदार्थों के लिए नहीं"। 'बड़ा पानी या बड़ा घी अथवा बड़ा आटा" आदि लिखना या बोलना ठीक नहीं। क्योंकि पानी, घी, आटा आदि पदार्थ नीरूप भले ही न हों; पर निराकार अवश्य हैं। आधार के आकार से भिन्न इनका स्वतन्त्र कोई आकार ही नहीं। 'आटा' भी छोटे-छोटे कणों का पुञ्ज है; उसका छोटा-बड़ा आकार नहीं होता। यद्यपि 'संख्या, बात आदि पदार्थ भी निराकार ही हैं; तो भी इनका आकार बनाया जा सकता है। जैसे—१, १०, १००. कोई बात दस पंक्तियों में लिखी जाती है तो कोई बीस पंक्तियों में। इसलिए 'छोटी संख्या' तथा 'छोटे मुँह बड़ी बात, लिखना और बोलना सर्वथा शुद्ध है। नए विद्यार्थियों को चाहिए कि जिस शब्द के साथ 'छोटा' शब्द का प्रयोग ठीक बैठ सके; उसी के साथ 'बड़ा' शब्द बैठाना चाहिए।

हिन्दी के मँजे हुए लेखक भी संस्कृत के 'अल्पायु' शब्द का अनुवाद 'थोड़ी अवस्था' कर गए हैं, जो मेरी सम्मति में ठीक नहीं। कारण कि 'अल्प' शब्द 'लघु' शब्द का पर्याय नहीं; 'लघु कौमुदी=(छोटी कौमुदी) के स्थान पर हम 'अल्प कौमुदी' (थोड़ी कौमुदी) नहीं कह सकते। 'अल्पायु' शब्द की उत्तर अवस्था का बोधक भी 'दीर्घायु' शब्द है, न कि 'बह्वायु'। इसलिए थकारानुप्रास के लोभ से 'थोड़ी अवस्था' न लिखकर 'छोटी अवस्था' ही लिखना चाहिए। संस्कृत में भी 'लघ्वायु' शब्द के स्थान पर 'अल्पायु' शब्द का प्रयोग मुखसुखार्थ ही किया गया जान पड़ता है।

'लिया' क्रिया का बहुवचन 'लिये'* होता है; और एक 'लिए' अव्यय भी है। पर इस अत्यन्त साधारण बात पर भी लेखक ध्यान नहीं रखते। 'लिए' अव्यय को भी 'लिये' लिखते चले जाते हैं। यह सदा यकार-रहित ही लिखना चाहिए। नए विद्यार्थियों को चाहिए कि 'किस' किसी, उस, उसी, इस, इसी, 'के' 'ने' और 'रे' के आगे सदा यकार-रहित 'लिए' ही लिखा करें (जैसे—राम के लिए, तेरे लिए, अपने लिए)।

एक संस्कृत का 'सहज' शब्द है। जिसका प्रयोग एक योग्य लेखक 'सुगम' शब्द के स्थान पर बार-बार करते चले जाते हैं। परन्तु 'सहज' शब्द की

---

*अब मैं सर्वत्र 'ये' के स्थान पर 'ए' लिखने का प्रबल समर्थक हूँ। क्योंकि 'ए' लिखना ही वैज्ञानिक है।

अपनी अलग भूमि है। इसी के लिए इसका प्रयोग होना चाहिए, जैसे—'सहजं कर्म कौन्तेय ! सदोषमपि न त्यजेत्' 'क्रोध करना तो उसका सहज स्वभाव है' 'उसकी सहज बुद्धि पर सब लट्टू थे' आदि। सच तो है कि इस लोक और परलोक में कोई शब्द तब तक हमारे भाव ठीक-ठीक नहीं दुह सकता; जब तक वह सम्यक् ज्ञात और सुप्रयुक्त न हो।

—oo—

२

मुखं व्याकरणं स्मृतम्

पहले कहा जा चुका है कि व्याकरण भाषा-भागीरथी का उन्नत किनारा माना जाता है। अतः भाषा-भागीरथी का अवगाहन करने के लिए लेखक को व्याकरण का सहारा लेना ही पड़ता है। यदि लेखक इस उन्नत किनारे से किंचित् भी स्खलित हो जाता है; तो उसकी टाँग टूटे बिना नहीं रह सकती। उसे 'पंगुर्व्याकरणं विना' होना ही पड़ता है।

कुछ लोग व्याकरण पढ़े बिना भी शुद्ध भाषा लिख और बोल लेते हैं; और कुछ लोग व्याकरण पढ़कर भी शुद्ध भाषा लिख और बोल नहीं सकते। इससे व्याकरण की उपादेयता में कुछ भी कमी नहीं आती। व्याकरण के ज्ञान-द्वारा लेखक अज्ञान से होनेवाली अपनी भूलों से सतर्क रह सकता है। किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से कोई आपत्ति उठाने पर उसका योग्य समाधान कर सकता है। मान लीजिए किसी ने व्याकरण तो नहीं पढ़ा; पर वह शुद्ध भाषा लिख और बोल लेता है। यदि उससे पूछा जाए कि 'आज्ञानुसार' एक पद है या दो? यदि दो हैं तो 'आज्ञा' शब्द के आगे कौन-सी विभक्ति है? यदि कहें कि 'तत्पुरुष' है उसमें तो उत्तरखण्ड (पद) प्रधान होता है, जैसे 'राज-पुरुष जाता है' में उत्तरखण्ड 'पुरुष' पद ही प्रधान है; वही जाता है, राजा नहीं। इसी प्रकार प्रकृत उदाहरण 'आज्ञानुसार' में भी उत्तरखण्ड प्रधान होना चाहिए। वह है 'अनुसार' पद पुंलिंग का वाचक। 'उनका राज-पुरुष है' की भाँति 'उनका आज्ञानुसार' लिखा और बोला जाना चाहिए। बस, अब वह 'पंगु' के साथ-साथ 'मूक' भी हो जाता है; और बन जाता है 'अवैयाकरण-खसूचिः' नीचे-ऊपर ताकने वाला।

अथवा—'चाँद के समान मुख' और 'कमल के समान आँखें' आदि वाक्यों में, जैसे—'चाँद' और 'कमल' उपमान हैं, 'मुख' और 'आँखें' उपमेय हैं। दोनों के साधारण धर्म (सादृश्य) का वाचक है 'समान' पद। जो सदा उपमान के ही आगे आता है। क्रमशः 'वर्तुल होना, आनन्द देना, आदि' तथा 'कुछ कुछ नीलापन लिए खिले रहना, विशालता आदि' साधारण धर्म हैं, अतः यह 'उपमा' है। वैसे ही 'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आँखें' आदि वाक्यों में भी 'भीम' और 'मृग' को उपमान, 'बल' और 'आँखों' को उपमेय माना जाना चाहिए। पर इनका साधारण धर्म सिद्ध नहीं होता। क्योंकि न तो 'बल' के ही भीम के समान आगे को उभरी हुई तोंद और बिच्छू की पूँछ जैसी मुड़ी हुई मूँछें हैं; और न 'आँखों' के ही मृग के समान नुकीले बलदार लम्बे-लम्बे सींग और लकड़ी जैसी पतली-पतली चार टाँगें हैं; फिर उपमा कैसे? बस, 'मौनं सर्वार्थसाधनम्'। यदि वह मुझ से ही इसका उत्तर पूछ बैठें तो मैं कहूँगा कि पहले 'चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः' कर आइए।

मेरा तो मत है कि व्याकरण भाषारूपी रेल का टिकट है। जिसके बिना निश्शंक यात्रा हो ही नहीं सकती। बिना टिकट के यात्री के लिए तो प्रत्येक काली टोपी 'टिकट देखनेवाला' बन-बन कर आती है। गन्तव्य स्टेशन के सीखचों के बाहर पैर रखने तक यह धुक्-धुकी बनी ही रहती है। यदि कहीं बीच में ही टिकट देखनेवाला आ जाता है, तो बेचारे की नानी मर जाती है और देने पड़ जाते हैं, एक के बदले दो।

व्याकरण एक विशाल शास्त्र है और उसका अपना स्वतन्त्र विषय है। न तो वह इस छोटी-सी पुस्तक में आ ही सकता है और न मैं ही उसे लाने की चेष्टा करूंगा। क्योंकि यह पुस्तक उन लोगों के लिए लिखी जा रही है। जिन्होंने व्याकरण का थोड़ा-बहुत ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है, पर भाषा लिखने से हिचकिचाते हैं। आगे के किसी एक प्रकरण में व्याकरण की भी कुछ विशिष्ट बातें मिलेंगी। पर वे गौण ही होंगी। इस पुस्तक का मुख्य विषय तो शुद्ध वाक्यों का ज्ञान कराना है; और बताना है कि लेखक किस प्रकार दूषित वाक्य लिख जाते हैं। उन दोषों से कैसे सावधान रहा जा सकता है आदि आदि। अस्तु, अब पिछले प्रश्नों का उत्तर देकर यह प्रकरण समाप्त करना चाहिए।

पहला प्रश्न यह है कि 'उनका राजपुरुष' है कि भाँति 'उनका आज्ञानुसार' या 'उनका इच्छानुसार' क्यों लिखा और बोला नहीं जाता? जब कि तत्पुरुष समास में उत्तरखण्ड प्रधान होता है।

सुनिए—'आज्ञानुसार' यह समस्त पद नहीं, सवर्ण-दीर्घ ही समास की भ्रांति पैदा कर रहा है। वास्तव में यह 'असमस्त' पद है, जो 'आपकी आज्ञा-अनुसार' ही लिखा जाना चाहिए। 'आज्ञा' शब्दोत्तरवर्ती 'के' विभक्ति चिह्न का लोप हो गया है। यदि 'अनुसार' 'अनुकूल' और 'अनुरूप' शब्द आगे हों तो षष्ठी विभक्ति का विकल्प से लोप होता है। जैसे—'आपका आज्ञानुसार' या 'आपकी आज्ञाके अनुसार' 'शास्त्र की रीत्यनुकूल' या 'शास्त्र की रीति के अनुकूल', एवं उसकी आकृत्यनुरूप' या 'उसकी आकृति के अनुरूप'।

यदि—'बिना' 'पीछे' और 'अनुसार' भूतकालिक कृदन्त आगे आ जाएँ तो भी इनके पहले विभक्ति नहीं आती। जैसे—'काम किए बिना' गए पीछे' 'कहे अनुसार'।

एवं—

१—वह कीड़ियाँ (को) मारता है।
२—मोहन आम (को) चूसता है।
३—पत्र (को) लिखा गया।
४—चिट्ठी (को) भेजी जाएगी।
५—रात (को) बहुत वर्षा हुई।
६—श्याम कलकत्ते (को) गया।
७—दमयन्ती पढ़ने (को या के लिए) जाती है।
८—उसे आड़े हाथों (से) लिया।
९—आँखों (से) देखी बात।
१०—पाँव (पर) पड़कर मनाओ।
११—इस जगह (पर) मत रहो।
१२—यह धन किस काम (में) आएगा।
१३—चार आने (में) सेर चावल।
१४—सारा सामान एक ही बार (में) उठा ले गया
१५—कभी तो दीनदयाल के, भनक पड़ेगी कान (में)।
१६—वह बनारस (में) रहकर कलकत्ते जाएगा।

उक्त वाक्यों में के( ) कोष्ठान्तर्गत विभक्ति-चिह्न सदा लुप्त ही रहते हैं।

पद्मश्री वर्माजी 'आपके इच्छानुसार' लिखने के पक्ष में हैं; और स्वयं लिखते भी हैं। तब तो 'उनकी बात करना महा पाप है' के स्थान पर 'उनके बात करना महा पाप है' लिखा जाना चाहिए; पर यह ठीक नहीं।

कारण कि ऐसे स्थानों पर विभक्ति चिह्न लुप्त रहता है, समास नहीं माना जाता (बात करना=बात (का) करना)।

दूसरा प्रश्न है 'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आँखें' यहाँ साधारण धर्म (सादृश्य) कैसे बनाया जाए ?

अच्छा, लीजिए—'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आंखें' वाक्यों में क्रमशः 'के' विभक्ति के उत्तरवर्ती 'बल' और आँखें' शब्द लुप्त हैं। उनका अध्याहार करने से यह अर्थ सम्पन्न होता है कि 'भीम के बल के समान बल' और 'मृग की आँखों के समान आँखें'। यह बात द्योतित करने लिए या सुगमता के लिए बीच में 'का, की, रा, री, विभक्ति चिह्न भी जोड़ दिए जाते हैं। जैसे--'भीम का-सा बल' 'मृग की-सी आँखें' ('भीम-सा बल, 'मृग-सी आँखें' के स्थान पर)। 'तुम्हारा-सा रूप' ('तुम-सा रूप' के स्थान पर) 'तुम्हारी-सी बुद्धि' (तुम-सी बुद्धि' के स्थान पर)।

लगे हाथ एक और बात (विशेषतः पंजाबी विद्यार्थियों के लिए) लिख देता हूँ। 'हमने खाना है' 'हमने जाना है' 'तुमने देना है' 'उसने लेना है' आदि रूप पंजाबी ढंग कहकर प्रयोगानर्ह ठहराए गए हैं। मेरी सम्मति में इन्हें 'ढंग' न कहकर 'अशुद्धि' ही कहना चाहिए। जैसे--'हाथी आती है' पूरबी ढंग नहीं; वैसे 'हमने खाना है' भी पंजाबी ढंग नहीं। पहले प्रयोग में 'लिंग' की अशुद्धि है और दूसरे में 'कर्ता' की। 'ढंग' तो वही कहा जाना चाहिए, जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अपनी भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल न पड़े और दूसरी किसी भाषा में बोला जाता हो। जैसे--'निकट भविष्य में' लिखना या बोलना अंग्रेजी का अपना ढंग है और यह हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध भी है, (निकट=पास का, भविष्य=आनेवाला समय, अर्थात्-जल्दी)। पर यह हिन्दी का 'ढंग' नहीं। हिन्दी का अपना ढंग तो 'शीघ्र' ही है। यही लिखा और बोला जाना चाहिए। भले ही दूसरे 'सौगन्ध खाना' और 'टट्टी खाना' कहा करें; पर हमें तो 'शपथ करना' और 'टट्टी घर' ही कहना चाहिए।

हाँ 'हमने खाना है' आदि वाक्य अशुद्ध कैसे और क्यों हुए ?

सुनिए—इन इन सभी वाक्यों में क्रिया का सामान्य रूप (खाना, जाना आदि) 'सामान्य भविष्यत्' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिसके कारण 'हमने खाना है' का अर्थ होता है 'हम खाएँगे 'और' हमने जाना है' का अर्थ होता है 'हम जाएँगे' भविष्यदर्थक क्रिया के साथ कभी तृतीयान्त कर्ता नहीं आता। जैसे 'हमने खाएँगे' लिखना या बोलना व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, वैसे 'हमने खाना' आदि वाक्य भी अशुद्ध हैं। होना चाहिए 'हमें खाना' है 'हमें जाना है'

आदि इन प्रयोगों में 'राम को चाहिए' आदि की भाँति उपपद चतुर्थी विभक्ति आई है। इसका अधिक विवेचन (क) भाग में देखिए।

यह अशुद्धि हुई क्यों ? इसके मैं दो कारण समझता हूँ। एक तो यह कि संस्कृत में 'अस्माभिः भक्षणीयम्' लिखा और बोला जाता है। जिसका अनुवाद संस्कृत के पुराने पण्डितों ने हमें तृतीयान्त कर्ता रखकर ही सिखाया है (अस्माभिः=हमने, भक्षणीयम्=खाना है) तथा 'वयं भक्षणीयाः' का 'हमको या हमें खाना है' अनुवाद सिखाया। इस उदाहरण में 'कर्मणि' प्रत्यय है, कर्म है 'हमको या 'हमें' तृतीयान्त कर्ता 'सिंहेन' उपरिष्ठात् आक्षिप्त है। जिसका अर्थ होता है 'हमको या हमें सिंह खा जाएगा'। बस यही संस्कृत व्याकरण के संस्कार हमसे अशुद्धि करा डालते हैं। यद्यपि संस्कृत, हिन्दी पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं की प्रकृति सर्वथा एक ही है। फिर भी इनके व्याकरणों के कुछ-एक नियम स्वतन्त्र भी हैं। उनका सदा ध्यान रखना चाहिए। दूसरा कारण "मैंने सुना है" यह हिन्दी का प्रयोग है। इसकी देखा-देखी पंजाबी छाती के बल 'मैंने खाना है' 'मैंने जाना है' लिखते और बोलते चले जाते हैं। यह सोचते तक भी नहीं कि भाषा में छाती के बल काम नहीं चला करता। इसमें तो खोपड़ी को कष्ट देने की थोड़ी आवश्यकता पड़ती है। 'मैंने सुना है' यह 'आसन्नभूत है'; 'सामान्य भविष्यत्' नहीं। आज से जरा सोच-विचार कर ही इसका प्रयोग कीजिएगा, नहीं तो वैयाकरण लोग रुष्ट हो जाएँगे।

वस्तुतः किसी भाषा का व्याकरण जाने बिना उसका अवगाहन करना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिए संस्कृत में कहावत है कि "मुखं व्याकरणं स्मृतम्" अर्थात्—व्याकरण भाषा का मुख है, मुख के बिना बोल लेना अवश्य आश्चर्य की बात है। वेदभगवान् तो यही बात और भी आलंकारिक रूप में कह रहे हैं कि "उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव..." अर्थात्—व्याकरण भाषा का 'परिणय' है; एक बार परिणय हो जाने पर भाषा परिणेता से कुछ भी (प्रकृति-प्रत्यय आदि) लुका-छिपा नहीं रखती। व्याकरण शब्द का अर्थ ही विभाग करके भली-भाँति समझाना है।

——

)

३

अज्ञात-कुल-शीलस्य, वासो देयो न कस्यचित्

हम मनुष्य में जन्मजात एक प्रवृत्ति पाते हैं कि वह प्रत्येक विषय को जानना चाहता है। उसकी यह जिज्ञासा—"क्या है ? कौन है ? कहाँ से है ?" आदि प्रश्नों के रूप में अभिव्यक्त होती है। उसकी यह जिज्ञासा छोटी अवस्था में उत्कट तथा उत्सुकता-पूर्ण होती है। दस वर्षों के अंदर-अंदर वह छोटे-मोटे पदार्थों की जितनी आकृतियाँ नाम सहित जान लेता है; उतनी आकृतियाँ वह आजीवन नहीं सीख पाता। यदि उसकी इन आकृतियों की नामावलि का एक संग्रह तैयार कर दिया जाए तो वह इतना बड़ा तथा भारी हो जाए कि स्यात् वह उसे उठा भी न सके। पर यह सब उसका ज्ञान पदार्थों की बाह्य आकृतियों तक ही सीमित रहता है। वह उनके स्वभाव की (व्युत्पत्ति की) गहरी गुहा में नहीं घुस पाता। बड़ा होने पर उसमें एक तर्क-वितर्क की शक्ति पैदा हो जाती है। अब वह प्रत्येक पदार्थ को अपनी इसी कसौटी पर कसने-परखने लग जाता है। जिससे वह पारखी (अनुभवी) बन जाता है। वह अपने इस अनुभव के बल पर ही भले व्यक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध गाँठता रहता है और बुरे व्यक्तियों से सदा दूर हटता चला जाता है; उन्हें अपने पास तक फटकने नहीं देता।

साहित्य-संसार में उतरते ही हमें नए नए व्यक्तियों के दर्शन होते हैं; ये व्यक्ति हैं 'नाम' (संज्ञाएँ)। जब ये ध्वनि के रूप में होते हैं; तब हमारे कानों का ही विषय रहते हैं जब वर्णों (अक्षरों) के वस्त्र पहन कर हमारे सामने आते हैं; तब हम इन्हें आँखों से देख लेते हैं। अर्थात्--अब ये हमारी आँखों का विषय भी बन जाते हैं। आँखों से इनकी बाह्य आकृतियाँ पहचान भर लेते हैं कि ये किस कुल और किस देश के हैं। इसी के आधार पर हम

अपनी भाषा के नाम (शब्द) चार भागों में बाँट आए हैं—१—तद्भव २—तत्सम, ३—परकीय और ४—देशी।

यहाँ तक तो हमारी दृष्टि उनके बाह्य आकार पर ही टिकी रहती है। इससे कुछ गहरे स्तर तक पहुँचने पर (उनके शील-स्वभाव-व्युत्पत्ति, बनावट के सम्बन्ध में विचार करने पर) उन विभक्त नामों में भी कई प्रकार के नाम (शब्द) दिखाई देंगे कुछ तो ऐसे होंगे जिनकी प्रकृति (धातु-स्वभाव-बनावट) का कुछ प्रत्यय (निश्चय) ही नहीं होता। यदि हो भी जाए तो वे उस अर्थ में प्रयुक्त ही नहीं होते; जैसे—घड़ा, गाय, खाट, झट, पीला धन, गज, घोड़ा आदि। पहले तो इनके खण्ड (टुकड़े) होते ही नहीं। क्योंकि ये किसी दूसरे शब्द के जोड़ से नहीं बने। यदि इनके खण्ड 'घ' और 'ड़ा' 'खा' और 'ट' 'झ' और 'ट' 'पी' और 'ला' आदि बना भी लिए जाएँ तो इनसे कोई अर्थ ही नहीं निकलता। ये निरर्थक हैं, सार्थक नहीं। यदि कथञ्चित् (खींचातानी से) इनसे अर्थ निकाल भी लिया जाए तो ये सर्वत्र उस अर्थ में प्रयुक्त ही नहीं होते। जैसे—'घट' (संघाते) धातु का 'घड़ा' बना लें और 'गम्' (गतौ) का 'गाय'; तो इनका अर्थ होगा घड़ा=घड़ा हुआ पदार्थ, गाय=चलनेवाली चीज। सब पदार्थ घड़े हुए हैं, पर उन्हें कोई 'घड़ा' नहीं कहता और असंख्येय जड़-चेतन पदार्थ चलते-फिरते हैं; पर उन्हें कोई 'गाय' नहीं कहता। अब इनका एक-एक विशेष अर्थ में ही चलन हो चुका है। उस अर्थ में ही इनका संकेत गृहीत होता है। इसलिए ऐसे शब्दों को साहित्य-संसार में 'रूढ़' कहते हैं।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनके प्रत्यय की पूरी पूरी पहचान तो हो जाती है अर्थात्–किस धातु और किस प्रत्यय के योग से ये बने हैं इनके खंड (टुकड़े) भी हो जाते हैं; और वे (खण्ड) सार्थक भी होते हैं, निरर्थक नहीं। जैसे—'कतरनी' 'लड़कपन' 'पूजक' 'पानवाला' 'बुद्धिमान्' 'घुड़चढ़ा' 'पाठशाला' आदि। इनमें का 'कतरनी' शब्द ही लीजिए; इसके दो खण्ड किए जा सकते हैं 'कतर' और 'नी'। 'कतर' धातु है; जिसका अर्थ है काटना, और 'नी' प्रत्यय है, जिसका अर्थ है करण (साधन)। दोनो खण्डों को मिलाकर अर्थ होता है कतरनी=काटने का साधन। इसी प्रकार 'लड़कपन' आदि शब्दों में पन, क, वाला, मान् आदि प्रत्यय हैं, जो सार्थक हैं। 'घुड़चढ़ा' 'पाठशाला' समस्त पद हैं। इनके दोनो खंड सार्थक हैं। जिनका अर्थ है—'घुड़=घोड़े पर, चढ़ा=चढ़ा हुआ;' ,पाठ=पढ़ने का, शाला=घर (स्थान)। भाव यह कि जिन शब्दों के दोनो खंड सार्थक हों; उन्हें साहित्य-संसार में 'यौगिक' कहते हैं।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं; जिनके दोनों खंड सार्थक तो होते हैं, पर वे जहाँ जहाँ उन खंडों के अर्थ मिलते हों, वहाँ वहाँ यौगिक शब्दों की भाँति प्रयुक्त नहीं होते। जैसे हम सभी पान बेचनेवालों को 'पानवाला' तो कहते हैं; पर सभी चार पाँव वालों को 'चारपाई' नहीं कहते। जब कि उनके भी चार चार पाँव होते हैं। अङ्गों पर रक्खे जानेवाले सभी वस्त्रों को हम 'अँगरखा' नहीं कह सकते; और न ही पङ्क=कीचड़ से ज=पैदा होनेवाले--जोंक, मेढ़क, आदि जन्तुओं को 'पंकज' ही कहा जाता है। ये शब्द यौगिक होते हुए भी अपने एक एक अर्थ में ही रूढ़ रहते हैं। चारपाई=खाट, अँगरखा=खुला लम्बा पहरावा, पंकज=कमल, आदि। इसलिए ऐसे शब्द साहित्य-संसार में 'योगरूढ़' कहे जाते हैं। तात्पर्य यह कि व्युत्पत्ति (बनावट) के कारण शब्दों के पुनः तीन भेद हो जाते हैं; १-रूढ़, २-यौगिक, और ३-योगरूढ़।

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी हैं; जो अपनी अर्थभूमि छोड़ कर दूसरे शब्दों की अर्थभूमि पर ही अधिकार जमाए बैठे हैं। जैसे— 'उदार' उस बैल का नाम है, जो आर=(बैल हाँकने के लिए डंडे के मुख-पर लगाई हुई तीखी कील) से उद्=दूर निकल गया हो, अर्थात्--इतना चलनेवाला हो कि आर लगने ही न दे, और 'धुरन्धर' उस बैल का नाम है; जो धुर=बैल गाड़ी का जुआ, धर=उठाता हो। पर अब ये शब्द पशुवृषभों के लिए नहीं, किन्तु नरवृषभों के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। 'नर-वृषभ' में 'वृषभ' शब्द श्रेष्ठता का वाचक है। एवं--नरसिंह, नरकुञ्जर, नरशार्दूल, नरव्याघ्र आदि पदों में भी सिंह, कुञ्जर आदि शब्द श्रेष्ठता के वाचक हैं।

आपको ऐसे भी कुछ शब्द मिलेंगे, जो अपने साथ अपनी कोई न कोई कथा भी लपेटे रहते हैं। मधूकड़ी (रोटी), बरवै (एक छन्द), तस्मै (खीर), टेढ़ी खीर (कठिन), सूरदास (अन्धा) आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं। जिस प्रकार मधुकर (भ्रमर) एक एक फूल में से थोड़ा-थोड़ा रस लेता फिरता है। किसी फूल को कुछ बाधा नहीं पहुँचाता उसी प्रकार संन्यासी के लिए भी विधान है कि वह निर्धूम तथा अपरिचित सात घरों में जाकर भिक्षा माँगे। किसी पर भार न बने। यह चर्या 'मधुकरी वृत्ति' कहलाती है। धीरे धीरे यही 'मधुकरी वृत्ति' भिक्षा का नाम पड़ गया। 'भिक्षा कर आए' के स्थान पर 'मधुकरी कर आए' कहने लगे। आगे चलकर 'मधुकरी कर आए' न बोलकर 'मधुकरी ले आए' बोलने लगे। अब 'मधुकरी' रोटी का पर्याय बन गया। ह्रस्व को दीर्घ और 'र' को 'ड़' करने में क्या देर लगती थी।

झट 'मधुकरी' का 'मधूकड़ी' बना लिया गया; 'कंकर' का 'कंकड़ बनता ही आया है।

'बरवै' एक छन्द का नाम है। कहते हैं कि रहीम की प्रेयसी ने उसे ये दो पंक्तियां लिखकर भेजी थीं—

"प्रेम-प्रीति को बिरवा, चल्यो लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय॥"

रहीम जी इन पंक्तियों में के 'बिरवा' शब्द पर इतने लट्टू हो गए कि उन्होंने इस के नाम पर 'बरवै' छन्द ही बना डाला और लिख डाला इसी छन्द में 'बरवै नायिकाभेद'।

मुझे तो जो खीर को 'तस्मै' कहा जाता है; उसकी भी कुछ ऐसी ही कथा जान पड़ती है। ब्राह्मण लोग भोजन और भजन के समय बोला नहीं करते। अधिक आवश्यकता पड़ने पर देववाणी (संस्कृत) में कुछ बोल-बुला लेते हैं। पहले-पहल यह 'तस्मै क्षीरं दीयताम्' (उसे खीर दो) होगा। संक्षेप में इसे 'तस्मै दीयताम्' कहने लगे होंगे। धीरे धीरे 'कर्म' और 'क्रिया' दोनो उड़ा दिए गए; रह गया 'तस्मै' सम्प्रदान। अब यह सम्प्रदान से 'कर्म' बन गया है। इसलिए साधु लोग बोलते हैं 'अजी ! आज तो तस्मै (खीर) घुट रही है'। 'टेढ़ी खीर', सब अन्धों को 'सूरदास' कहना आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं।

मनुष्य सदा अपने तथा अपनों को दूसरों की अपेक्षा कुछ उत्कृष्ट देखना चाहता है। यदि यह उसकी अभिलाषा काम से नहीं सिद्ध होती तो नाम से ही सही। चाहे वह अपना सारा जीवन दूसरों की चाटुकारिता में ही बिताए; पर अपने पुत्र का नाम तो 'कुबेर' या 'लखपत' ही रखेगा। अधेड़ उमर की किसी औरत को 'माई' कहकर तो देखिए, यदि उसका पारा न चढ़े तो कहना। कारण कि वह सदा अपने को 'नित्ययौवना' ही देखना चाहती है। भले ही वह शूर्पणखा की बहन हो; पर आप उसकी प्रशंसा के झूटे-सच्चे दो-चार शब्द कह दीजिए; बस, आप से बढ़कर उसकी दृष्टि में कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं होगा। वह अपनी सन्तान का नाम रखेगी—रजनी कान्त, कमलनयन, उषासुन्दरी, प्रेमलता, मोहिनी, आदि। ठीक भी है भाई ! काञ्चन-कामिनी-कीर्ति का मोह किसने छोड़ा है ? नाम-रूप को मिथ्या पुकारने वाले लोग भी तो अपने साथ लंगूर की-सी नाम की लम्बी पूँछड़ी लगाए ही फिरते है। अस्तु।

प्रत्येक देहधारी के साथ 'मैं सदा जीता रहूँ और मैं कभी न मरूँ' यह अभिनिवेश लगा ही हुआ है। इसलिए वह अप्रिय और अशुभ पदार्थों को

भी सदा प्रिय और शुभ रूप में ही देखना चाहता है। यद्यपि वह उन अशुभ और अप्रिय पदार्थों को वस्तुतः शुभ और प्रिय बना नहीं सकता। तो भी वह उनके नाम तो बदल ही लेता है। अर्थात्—अमांगलिक वस्तुओं से भी मंगल की भावना कर लेता है। जैसे—मरने को 'स्वर्गवास, गंगालाभ, साकेतवास आदि, साँप को 'बाबा' पेशाब को 'लघुशंका' टट्टी को 'शौच' दीया बुझाने को 'दीया बढ़ाना' (एवं—दुकान बढ़ाना, चूड़ियाँ बढ़ाना आदि) मेहतर लोग भी अपने काम को 'कमाना' ही कहते हैं। विवाह के दिनों में 'नाई' को 'राजा' और 'कुम्हार' को 'प्रजापति' बोलते हैं। ये सब 'मंगल-भाषित' कहलाते हैं।

सब मंगल-भाषितों में भय, अनिष्ट की आशंका, घृणा आदि में से कोई न कोई भाव रहता ही है। पर कुछ स्थानों पर हम भय आदि के बिना भी किसी विशेष प्रयोजन के लिए ऐसे शब्द प्रयुक्त कर जाते हैं जो वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं। जैसे—मूर्ख को 'पण्डित' मनुष्य को 'गधा' निर्बल को 'भीम' दुष्ट को 'साधु' किसी पुंश्चली को 'सती सावित्री या सती सीता' आदि यह विपरीत लक्षणा, ताना या व्यङ्ग्य कहाता है।

मतलब यह कि हमारे पास एक भी शब्द ऐसा नहीं होना चाहिए; जिसके कुल-शील (प्रकृति-प्रत्यय आदि) के सम्बन्ध में हम कुछ न जानते हों। नीति ठीक ही तो कहती है कि—

"अज्ञात-कुल-शीलस्य, वासो देयो न कस्यचित्"

——

४

"लेख को पन्थ करार महा तरवार की धार पे धावनो है"

यद्यपि भाषा अपने विचार दूसरों पर प्रगट करने और दूसरों के विचार समझने का सबसे सुगम तथा अभ्रान्त साधन है, तथापि इसके लिखने और बोलने में बहुत ही सावधानता की अपेक्षा रहती है। किसी एक अक्षर पर थोड़ा-सा बल दे देने से ही कुछ-का-कुछ (भूत की आज्ञा और आज्ञा का भूत) बन जाता है। 'बना' शब्द में दो अक्षर हैं। इसमें के पहले अक्षर 'ब' पर जरा जोर दे दीजिए';=स्वराघात कर दीजिए; अर्थ होगा 'भूतकाल;' जैसे–"बहुत अच्छा भोजन बना"। एवं–दूसरे अक्षर 'ना' पर स्वराघात कर देने से अर्थ होगा 'आज्ञा'; जैसे–"रोटी बना"। यहाँ तो एक ही शब्द के एक-एक अक्षर वर स्वराघात हुआ है। कहीं-कहीं तो वाक्य के पूरे शब्द पर स्वराघात किया जाता है–बल दिया जाता है, जैसे–

'वह वहाँ है'–(वहाँ वही है और कोई नहीं) 'वह वहाँ है'–(वह वहीं है, किसी दूसरी जगह नहीं) 'वह वहाँ है' (उसका वहाँ होना निश्चित है)। 'वह आएगा' यह एक सामान्य विधि वाक्य है। इसके उच्चारण में किंचित् स्वर-भेद कर देने मात्र से प्रश्नवाक्य बन जायगा 'वह आएगा ?' संस्कृत का एक श्लोक है–

"यद्यपि बहु नाधीषे, तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत्, सकलं शकलं, सकृत् शकृत् ॥"

अर्थात्–बेटा ! यदि बहुत नहीं, व्याकरण तो अवश्य ही पढ़ लेना; क्योंकि कहीं स्वजन का श्वजन, सकल का शकल, और सकृत् का शकृत् न

बन जाए, (स्वजन=बन्धु, श्वजन=कुत्ता, सकल=सम्पूर्ण–सारा, शकल = खण्ड–एक हिस्सा, सकृत् = एक बार, शकृत् = विष्ठा–टट्टी)।

यहाँ तक तो हुई उच्चारण (बोलने) की बात। लिखना तो बोलने से भी कुछ टेढ़ी खीर है। जरा-सी कलम दबी कि 'कुत्ती का 'कुन्ती' बना। दाईं ओर जरा हाथ घुमा कि 'दिन' का 'दीन' बना। 'वेद' का 'बेद' बना डालना तो बाएँ हाथ का खेल है। इन्हीं बातों से तंग आकर किसी ने कह ही डाला कि 'शतं वद, मा लिख' अर्थात्–सौ बातें भले कह जाओ, पर लिखो मत।

निस्सन्देह लिखना बोलने की अपेक्षा कहीं अधिक दायित्वपूर्ण तथा कठिन काम है। सरकारें जब अपना-अपना विधान बनाती हैं, तो न जाने उन्हें कितना फूक-फूक कर पाँव रखना पड़ता होगा, यह तो वही जानती हैं। किसी एक विषय का पूरा-पूरा ज्ञान होने पर भी उस विषय का लेखक नहीं कहलाया जा सकता। लेखक बनने के लिए तो अभ्यास की परम आवश्यकता है। वह भी कोई दो-चार दिनों का ही नहीं "स तु दीर्घ-काल-नैरन्तर्य-सत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः" (योगदर्शन) अर्थात् बिना नागा मनोयोगपूर्वक लम्बे समय तक चलते रहने पर ही अभ्यास पक्का बनता है।

लेख कितना भी शुद्ध क्यों न हो; यदि उसमें अक्षर उनके अपने नियत स्थान से अणुमात्र भी इधर-उधर लिखे जाएँगे तो अर्थ का अनर्थ या अर्थान्तर हुए बिना नहीं रहेगा। जैसे—

१–'दशरा मशराः' (दश राम-शराः)
२–"सुन्दरी वादरी वा" (सुन्दरी वा दरी वा)
३–'आप भीतर जाएँगे' 'आप भी तर जाएँगे'
४–'सावन के बादलो' 'सावन के बाद लो'
५–'कहो तो ला दूँ' 'कहो तोला दूँ'
६–'वह दयनीय जीव न था' 'वह दयनीय जीवन था'
७–'लारी ! ला' 'लारी ला'
८–'मनन करेगा' 'मन न करेगा'
९–'ठिकाना जेब में अपने नहीं चार पाई का' 'ठिकाना जेब में अपने नहीं चारपाई का'
१०–राजा को अपना कर सबसे लेना चाहिए' 'राजा को अपनाकर सबसे लेना चाहिए'
११–'सुन्दर कोप नहीं सपने' 'सुन्दर को पनहीं (जूती) सपने'

१२–'कुलीन बनो' 'कुली न बनो'

१३–'दीवा ना बन' 'दीवाना बन'

१४–'परदा-रहित' 'पर-दारहित' आदि।

आदि के दो उदाहरणों में वर्णों के अपने स्थान से आगे-पीछे हो जाने के कारण कितना अनर्थ हो गया है तथा बाकी के सभी उदाहरणों में अर्थान्तर स्पष्ट ही है।

इसी अनर्थ या अर्थान्तर के कारण ही विराम-चिह्नों की सृष्टि हुई होगी। अब ये विराम-चिह्न अंग्रेजी भाषा में से छायावाद-रहस्यवाद की तरह अपनी हिन्दी में भी आ गए हैं। इनसे लेख में स्पष्टता, सुन्दरता और सुबोधता आ जाती है। जैसे–"पकड़ो मत जाने दो" वाक्य में यदि आप किसी को पकड़-वाना चाहते हैं तो 'मत' के पहले (पकड़ो के बाद) अल्प विराम लगाना होगा—'पकड़ो, मत जाने दो' और यदि आप पकड़ने का निषेध करना चाहते हैं तो 'जाने' के पहले (मत के बाद) विराम लगाना होगा—'पकड़ो मत, जाने दो'। 'अब मेरी हँसी नहीं, तेरी हँसी है' 'अब मेरी हँसी, नहीं तेरी हँसी है' तुमसे खर क्या पढ़ सकते हैं? तुम-से खर क्या पढ़ सकते हैं? देखी उस (—) की करामात। आदमी से गधा बना दिया। रामायण के इस सोरठे को—

"फूले फले न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम॥"

आचार्य बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए० ने अपने 'साहित्यालोचन' में प्रकृतिविरुद्ध दोष का उदाहरण माना है। क्योंकि बेत का फूलना प्रत्यक्ष सिद्ध है। पर मेरी समझ में यह उनकी भ्रांति है। भ्रांति का कारण है, अल्प विराम का न होना। यदि हम 'फूले' के आगे (बाद) विराम-चिह्न लगा दें तो भ्रांति और दोष के लिए कोई अवसर ही नहीं रह जाता "फूले, फले न बेंत, अर्थात्—बेत फूलती तो है, पर फलती नहीं*। इसलिए लेख में विराम चिह्नों का पूर्णतया सन्निवेश और पालन होना चाहिए।

विराम-चिह्न

१–अल्प विराम	(,)	५–भावबोधक सम्बोधन चिह्न	(!)
२–अर्ध विराम	(;)	६–निर्देशक चिह्न	(–)
३–पूर्ण विराम	(।)	७–कोष्टक	( ) [ ]
४–प्रश्न-काकु-चिह्न	(?)	८–उद्धरण चिह्न	'......'

* मेरे एक बन्धु का कहना है कि बेत फलती भी है। कुछ लोग 'बेत' शब्द का आकाश अर्थ भी करते हैं। पर इसमें चमत्कृति नहीं।

पूर्ण विराम (।) के तुरंत बाद 'और' एवं 'तथा' अव्यय नहीं आते। क्योंकि ये दो वाक्यों के योजक हैं। हाँ, अन्य अर्थ का वाचक और शब्द आ सकता है। यह बात मुझे एक अक्षर-योजक (कम्पोजीटर) से विदित हुई है।

लेखक बनने के लिए इतना ही अलं नहीं। लेखक और राजा को कोष की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना तो वर्णमैत्री (श्रुतिमधुर वर्णविन्यास तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों के साथ मित्रता) हो ही नहीं सकती। क्या नीचे के उदाहरणों की आशा किसी शब्द-दरिद्री से की जा सकती है ?

'तर्क-कर्कश-विचार-चातुरी--
का तुरीय-वयसा विभाव्यते।
आतुरी भवति यत्र मानसं--
धातु रीप्सित मपाकरोति कः॥'

'सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मनहुं जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥'

'जो जन-रंजन दुष्ट-विभंजन,
गंजन गर्व 'हरि' सुख-धाम है।
सोई त्रिलोकी को नाथ अली !
वृषभानु-लली की गली को गुलाम है॥'
'माई री साँकरी गली में पग काँकरी चुभति है'।

किस पदार्थ के कितने नाम हैं ? उनका लिंग क्या है ? कौन-कौन शब्द अनेकार्थक हैं ? आदि बातों का ज्ञान कोश के द्वारा ही होता है, और कहाँ किस शब्द का कौन-सा अर्थ लेना है; यह बात वक्ता या लेखक के तात्पर्य के अधीन होती है। वक्ता या लेखक का तात्पर्य प्रकरण आदि से ज्ञात होता है; जैसे—'इन्हें जब देखो तब अपने बड़ों की ही याद करते रहते हैं' यदि याद करनेवाला हलवाई है, तो 'बड़ों' का अर्थ होगा 'उड़द की पीठी की गोल टिक्कियाँ'। यदि याद करनेवाला कोई दूसरा है तो अर्थ होगा (बड़े=पूर्वज) एवं--'क्या इन पेड़ों के देखने से पेट भर जायगा ?' यदि यह वाक्य बाजार में बोला जा रहा है तो इसका अर्थ होगा 'दूध से बने पेड़े' यदि कोई जंगल में इसका प्रयोग कर रहा है तो इसका अर्थ होगा 'जंगल के वृक्ष'। जहाँ वक्ता या लेखक का तात्पर्य दो-तीन अर्थों से सम्बन्ध रखता है, वहाँ दो-तीन अर्थ ही लिए जाते हैं। उसे 'श्लेष' कहते हैं; जैसे—

'चरण धरत चिन्ता करत, चितवत चारो ओर।
सुवरण ही ढूँढ़त फिरैं, कवि-व्यभिचारी-चोर॥'

कवि—सुवरण=मधुर अक्षर, व्यभिचारी—सुवरण=सुन्दर रूप, चोर—सुवरण=सोना, सदा ढूँढ़ते फिरते हैं। इस पद्य के 'चरण-चिन्ता-चितवन' शब्द भी श्लिष्ट हैं।

कोशों में एक-एक पदार्थ के कई-कई नाम (पर्याय) दिए रहते हैं। हम उन्हें भूल से समानार्थक ही मान बैठते हैं। जो शब्द पहले-पहल हमारे सामने आता है; हम उसे ही वाक्य में बैठाकर छुट्टी पा लेते हैं। यह सोचते तक भी नहीं कि पर्यायों के भी भिन्न-भिन्न भाव होते हैं। जब हम अर्जुन को 'पार्थ' कहते हैं तब हमारा भाव उसकी भीरुता द्योतित करना भी होता है। कारण कि पृथा उसकी माता का नाम है; अर्थात्—माँ पर ही गए न ! 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् !' कहकर तो उसकी रही-सही वीरता भी उड़ा दी गई, बाएँ हाथ में शक्ति ही कितनी होती है। जब हम उसे 'गाण्डीवी' कहते हैं तब हमारा भाव उसकी वीरता अजेयता आदि द्योतित करना भी होता है। क्योंकि उसका 'गाण्डीव धनुष' अमोघ माना जाता है। जब किसी कवि को राजा की ओर से कुछ नहीं मिलता तब वह राजा को 'पार्थिव' (मिट्टी का माधो) कहकर चलता बनता है। इसलिए शब्दों का चुनाव बहुत ही सोच-समझ कर करना चाहिए। हम यहाँ एकार्थक से प्रतीत होनेवाले कुछ शब्दों के अर्थ देते हैं।

शब्द	अर्थ
महिला	भले घर की स्त्री।
पत्नी	विधिपूर्वक विवाहिता।
खेद	मनकी क्षणिक अप्रसन्नता।
दुःख	मन की अधिक अप्रसन्नता।
शोक	प्रिय-वियोग-जन्य।
प्रार्थना	कुछ करवाने की इच्छा से कहना।
निवेदन	केवल नम्रतापूर्वक कहना।
आकार	वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई।
रूप	लम्बाई-चौड़ाई सहित वस्तु का रूप-रंग।
युद्ध	सेनाओं का।
लड़ाई	साधारण लोगों की।
मेल	प्राणियों का।
समानता	अप्राणियों की भी।
आयु	जन्म से मृत्यु तक का समय।
अवस्था	उमर, वय, आयुष्य।
लक्षण	अमूर्त या अदृश्य आसार।
चिह्न	मूर्त या दृश्य।
अधिवेशन	सम्मेलन, जलसा।
बैठक	अधिवेशन में होनेवाली गोष्ठी।
संग्रह	सब चीजों का।
संकलन	विशेष चीजों का।
संसार	जगत्।

शब्द अर्थ	शब्द अर्थ
विश्व—ब्रह्माण्ड ।	**सुन्दर**—अभिराम ।
सर्व—सब ।	**विहीनता**—दुर्गुणों की ।
अखिल—सम्पूर्ण ।	**राहित्य**—अच्छे बुरों का ।
संकर—दूधपानी-सम मिला हुआ ।	**आकृष्ट**—खिंचा हुआ ।
संसृष्ट—तिलचावल-सम मिला हुआ ।	**आकर्षित**—खींचा हुआ ।
टेढ़ी निगाह—क्रोध से ।	**विकृत**—रूपान्तरित ।
तिरछी निगाह—प्रेम से ।	**दूषित**—सदोष ।
उधार—पैसों का ।	**पवित्र**—पावन, निर्मल ।
मँगनी—अन्य चीजों की ।	**धवल**—सुफेद ।
अधिकारी—पद पुरस्कार का ।	**खेल**—क्रीड़ा ।
भागी—दण्ड आदि का ।	**खिलवाड़**—दिल्लगी ।
अनुमोदन—हाँ में हाँ भरना ।	**थाना**—पुलिस चौकी ।
समर्थन—दृढ़ीकरण ।	**कोतवाली**—कोतवाल का दफ्तर ।
अनुसार—क्रियाविशेषण ।	**लिपि**—लिखी जानेवाली ।
अनुरूप—विशेषण ।	**भाषा**—बोली जानेवाली ।
प्रस्ताव—मन्तव्य ।	**चित्र**—हाथ से बनाया हुआ ।
निबन्ध—किसी विषय पर लेख ।	**फोटो**—यंत्र से खींचा हुआ ।
सहज—स्वाभाविक ।	**लेख**—निबन्ध ।
सुगम—सरल, आसान ।	**लिखावट**—लिखने का ढंग ।
अच्छाई—उत्तमता ।	**बाजार**—क्रयविक्रय का स्थान ।
भलाई—उपकार ।	**हाट**—दूकान ।
भयंकर—भयप्रद ।	**चीज**—वस्तु ।
भोंड़ी—भद्दी ।	**सामान**—सामग्री ।
सुखदाता—चेतनों का विशेषण ।	**कर**—लगान ।
सुखदायक—चेतनों और अचेतनों का विशेषण ।	**राजस्व**—आय, शुल्कादि के रूप में ।
आगामी—निश्चित के लिए ।	**शिक्षा**—सीख, उपदेश ।
भावी—अनिश्चित के लिए ।	**अध्ययन**—पठन ।
अनभिज्ञ—अपरिचित ।	**राजा**—स्वामी, नरपति ।
मूर्ख—न समझनेवाला ।	**शासक**—अधिकारी, दण्डदाता ।
शुद्ध—निर्दोष ।	**प्रजा**—रैयत ।
	निवासी—बसनेवाला ।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
आचरण—इन्द्रिय-सम्बन्धी ।		**ऊपर**—व्यवहित ।	
व्यवहार—बरताव ।		**पर**—(विभक्ति) सटा हुआ ।	
नाती—बेटी का बेटा ।		**दया**—पसीजना ।	
पोता—बेटे का बेटा ।		**अनुग्रह**—अपनाना ।	
अंश—चौथा या सोलहवाँ हिस्सा ।		**निर्वेद**—तत्त्वज्ञान से,	
भाग—कुछ हिस्सा ।		**दैन्य**—दरिद्रता से ।	
सचाई—वास्तविकता ।		**कुछ**—सत्ता-सूचक ।	
ईमानदारी—विश्वास-पात्रता ।		**कोई**—सम्बन्ध सूचक ।	
पाजीपन—बदमाशी ।		**मद**—मादक वस्तु के सेवन से ।	
नीचता—बुराई ।		**उन्माद**—काम, शोक आदि से ।	
मकान—साधारण घर ।		**गर्व**—धन, विद्या आदि से ।	
कोठी—बड़ा मकान ।		**शंका**—अनर्थ की तर्कना ।	
चिन्तनीय—विचारणीय ।		**असूया**—गुणों को अवगुण समझना ।	
चिन्ताजनक—चिन्ता पैदा करनेवाला ।		**ईर्ष्या**—किसी का लाभ देखकर जलना	
अधिकांश—संज्ञा है ।		**विषाद**—उपाय के अभाव से उत्पन्न खिन्नता ।	
अधिकतर—क्रियाविशेषण है ।		**त्रास**—बिजली आदि से मनःक्षोभ ।	
छज्जा—दीवार के बाहर निकला हुआ छत का भाग ।		**कुछ**—सारे में से कुछ ।	
बरामदा—दालान ।		**कई**—बड़ी संख्या में से कुछ ।	
पेड़—बड़े वृक्ष ।		**आजन्म**—जन्म से लेकर ।	
पौधे—छोटे गुल्म ।		**आजीवन**—जीवनभर ।	
घोड़ा—अश्व ।		**हेतु**—उद्देश्य ।	
टट्टू—ठिगना घोड़ा ।		**कारण**—निमित्त ।	
छड़ी—पतली लकड़ी ।		**लगभग**—संख्या, समय आदि के लिए ।	
डण्डा—मोटा-सोटा ।		**प्रायः**—अधिकतया ।	

एवं—चित्त और मन में, अन्तःकरण और बुद्धि में, भक्ति और श्रद्धा में, प्रेम और अनुराग में, स्नेह और प्यार में, आशंसन और अभिनन्दन में, आमन्त्रण और निमन्त्रण में, अपेक्षा और उपेक्षा में, लज्जा और संकोच में, विधि और विधान आदि में भी अन्तर है ।

अशुद्ध शब्दों के प्रयोगों के कुछ उदाहरण

१—अपने सुन्दर भावों को सुन्दर ढंग से सुन्दर भाषा में लिखकर प्रगट कर देने का नाम ही 'लेखनकला' है।

२—वहाँ उसे न रखना भयंकर त्रुटि है, बड़ा भारी दोष है।

३—नवीन लेखक जान-बूझकर बीहड़ शब्द देते हैं।

४—उनकी रचना वैसी विकृत हो जाती है जैसी भयंकर नाक से शूर्पणखा की आकृति।

५—रचना में अश्लीलता अत्यन्त भयंकर दोष है।

६—पूजो देश के धवल चरण।

७—आर्यपुत्र मूर्च्छित होकर पृथ्वी के ऊपर पड़े हुए हैं।

८—उसकी नीची नजर से तो पुरुष की गर्दन ऊपर रहती है।

९—हम 'सजा' ओर 'शूरू' को सहज समझते हैं और 'दण्ड' तथा 'आरम्भ' को कठिन। मुश्किल तो हमारे सहज होता है।

१०—शुद्ध और संकर समस्त पद।

११—इस मेले में बहुत पत्नियां आई थीं।

१२—मुझे इस बात का शोक है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया।

१३—प्रार्थना है कि आज मेरे भाई का शरीर अच्छा नहीं।

१४—निवेदन है कि मुझे एक पुस्तक दिलवा दें।

१५—आज पुस्तक छपे आकार में देखकर प्रसन्नता हुई।

१६—इस नाले का रूप पहले से बहुत बढ़ गया है।

१७—इन दोनो पुस्तकों में बहुत मेल है।

१८—डाकुओं और ग्रामीणों में युद्ध।

१९—इस समय मेरी आयु बीस वर्ष की है।

२०—राजपुरुषों ने प्रजा से राजस्व वसूल किया।

१–सुन्दर भाषा (शुद्धभाषा), २-भयंकर (महान्), बड़ा भारी (अक्षम्य) ३–बीहड़ (जटिल, कठिन) ४–विकृत (दूषित, भद्दी)। भयंकर (भोंड़ी) ५–भयंकर (अक्षम्य) ६–धवल (पवित्र) ७–ऊपर (पर) ८–ऊपर (ऊंची) ९–सहज (सुगम-सरल) १०–संकर (संसृष्ट) ११–पत्नियां (स्त्रियां) १२–शोक (खेद) १३–प्रार्थना (निवेदन) १४–निवेदन (प्रार्थना)। १५–आकार (रूप) १६–रूप (आकार) १७–मेल (समानता) १८–युद्ध (लड़ाई) १९–आयु (अवस्था, उमर) २०–राजस्व (कर, लगान)।

२१—महात्मा गांधी, तेज बहादूर सप्रू और सरोजिनी नायडू की याद वास्तव में बहुत दुःखदायी है, क्योंकि बहुत अर्से तक उनके स्थानों की पूर्ति नहीं हो सकती। (हिन्दुस्तान)

वास्तव में कोश का काम नाम और उसके लिंग का निर्णय करना है। क्योंकि इसका नाम ही 'नामलिंगानुशासन' है।

आचार्य रामचन्द्रजी वर्मा एक स्थान पर लिखते हैं कि "साधारणतः हिन्दी भाषा के दो रूप माने जाते हैं—एक पश्चिमी, दूसरा पूर्वी। कुछ कारणों से शब्दों के पश्चिमी रूप और पश्चिमी शब्द ही अधिक अच्छे माने जाते हैं; और हिन्दी में अधिकतर वे ही चलते हैं" कितना अच्छा होता यदि आप उन कारणों का निर्देश भी कर जाते। लिंग की चर्चा करते हुए आप कहते हैं कि "पश्चिम वाले इस विषय में अपेक्षाकृत अधिक सतर्क रहते हैं' आदि। परन्तु 'लिंग के सम्बन्ध में मैं अपने विचार लिख देना ही आवश्यक समझता हूँ। आशा है विद्वान् लोग इस पर विचार करेंगे।

हिन्दी व्याकरणों में स्त्रीलिंग बनाने के जो नियम दिए गए हैं। उनके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना (कोई आपत्ति नहीं।) पर "हिन्दी भाषा में लिंग का विषय बहुत ही जटिल है" (वर्माजी) यह मैं नहीं मान सकता। संस्कृतवाले भले यह बात कहें। क्योंकि उनके यहाँ कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो न तो स्त्रियों का ही काम दे सकते हैं और न पुरुषों का ही। पर हिन्दीवाले यह बात कैसे कह सकते हैं? इनके यहाँ तो यह झगड़ा नहीं। वर्माजी स्वयं मानते हैं कि "पश्चिमवाले इस विषय में कुछ (बहुत) अधिक सतर्क रहते हैं।" फिर क्यों न हम जिन कारणों से हिन्दी का पश्चिमी रूप अपनाया है; उन्हीं कारणों से पश्चिमी लिंग भी अपना लें। सब जटिलता दूर हो जाएगी। हिन्दीवाले 'जामुन, तार गेंद, दही, गेहूँ' आदि शब्दों को पुलिंग मानते हैं और 'पिस्तौल, नाक, थूक' आदि शब्दों को स्त्रीलिंग। पर पश्चिमवाले जामुन आदि शब्दों को स्त्रीलिंग और पिस्तौल आदि शब्दों को पुलिंग मानते हैं। जो सर्वथा युक्तियुक्त है। 'जामुन' शब्द स्त्रीलिंग है। इसका पुलिंग 'जमोआ' होता है, जो रूप-रंग में बिलकुल जामुन जैसा ही होता है। इसके फल जामुन के फलों की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं तथा लगभग बीस-पचीस दिनों का अन्तर इनके पकने में रहता है। पतली तथा लम्बी होने के कारण 'तार' दूध की धार के साथ ही बैठती है। रबड़, फूल कपड़े आदि की कोमलांगी

२१—याद (अभाव)।

लाड़ली 'गेंद' पत्थर के कठोर गोले से आँख तक भी नहीं मिलाती, भले ही वह देखने में इसके आकार-प्रकार का हो। 'मूँग-उड़द' 'ज्वार-बाजरा' 'गेहूँ-जौ' या 'गेहूँ-चने' 'मक्की आदि को लीजिए। सहजन्मा होने के कारण इन्हें आप 'बहन-भाई' समझिए या साहचर्य के कारण 'पति-पत्नी', हैं ये भिन्न-भिन्न जाति के ही। काले-कलूटे फुलवैरी वाले उड़दों के साथ सबजरंगी, 'मूँग' की क्या समानता? गौरांगी रक्तवदना 'ज्वार' के सामने सीमेएट-मार्का 'बाजरा' कैसे आ सकता है? गलग्राह कर्कश-कलेवर 'जौ' को मार्किट में भगवती गौरवर्णा मृदुस्पर्शा मृदुपाका मृदुस्वादा 'गेहूँ' के सामने कौन पूछता है? प्रकृति देवी ने इसे नाम से ही नहीं आकार से भी इस पर कुछ गहरी रेखा खींच कर 'स्त्रीलिंग' बना दिया है। स्वर्णवर्णा रूपगर्विता 'मकई' तो अभी तक कुमारी ही है। निहंग लोग इसका 'वसन्तकौर' 'वसन्तकुमारी' कहकर सम्मान करते हैं। 'दही' भी मक्खन की माँ होने के कारण या बार-बार दूध औटाने से बनी होने के कारण 'कढ़ी' 'खीर' के साथ ही मेल खाती है।

'पिस्तौल' बन्दूक का छोटा भाई होने के कारण स्त्रीलिंग से सदा दूर भागता है। 'थूक' भी लार का बड़ा भाई होने के कारण मुख में ही रहता है। 'चूक' के साथ बैठने की कभी चूक नहीं करता। यदि 'ऊक' मात्र देखकर चूक के साथ 'थूक को बैठाइएगा तो 'सन्दूक' साहब भी एकदम आ कूदेंगे। 'नाक' भी 'कान' के साहचर्य से समझिए या 'हीरा' 'राही' वर्णविपर्यय से, पर है पुलिंग ही। भावार्थ यह कि "जिन वस्तुओं में प्रधानतया, कोमलता, लघुता, दीर्घता, कृशता, सुन्दरता, आदि गुण हों वे स्त्रीलिंग ही होती हैं"।

किसी शब्द का सही-सही अर्थ और सही-सही लिंग जान लेने पर भी उसे यों ही जहाँ-तहाँ बैठाया नहीं जा सकता। 'दाता' और 'दायक' एक ही दानार्थक 'दा' धातु से बने हैं तथा कर्ता अर्थ में दोनो प्रत्यय आए हैं। लिंग का भी ज्ञान है। पर "यह स्थान बहुत सुखदाता है" से "यह स्थान बहुत सुखदायक है" लिखना या बोलना अच्छा लगता है। क्यों? यही तो शब्दों की प्रकृति (स्वभाव) है, जो अवश्य जानना चाहिए। "यह स्थान अत्यन्त सुखद है" बोलना तो उससे भी हलका तथा श्रुतिमधुर है। कारण? इस में विशेष्य-विशेषण का वजन बिलकुल बराबर है। दोनो ही तीन-तीन मात्राओं के हैं। 'आरम्भ' और 'अन्त' शब्द का अर्थ सब लोग जानते हैं। पर "निबन्ध के अन्त में निबन्ध के आरम्भ का ही निचोड़ रहता है" में जैसे 'अन्त' शब्द ठीक-ठिकाने पर है, वैसे "लिखनेवाले ने सब बातें ठीक

तरह से कह दी हैं और अब वह स्वयं उनका अन्त कर रहा है" में 'अन्त' शब्द के स्थान पर 'समाप्ति' शब्द ही ठीक ठिकाने का कहा जाएगा। हाँ, "इस दूषित प्रवृत्ति का अन्त होना ही चाहिए" में 'अन्त' शब्द बिलकुल यथास्थान सुप्रयुक्त है। इसीलिए तो कहा है—

"लेख को पन्थ करार महा-
तरवार की धार पे धावनो है"।

———

५

"न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः" "प्रत्ययः परश्च"

कोश की सहायता से यह तो हम जान लेते हैं कि अमुक शब्द का अमुक अर्थ और अमुक लिंग है। पर शब्दों के आगे भी 'को' 'ने' आदि चिह्न लगे रहते हैं; जो प्रत्यय या विभक्तियाँ कहलाते हैं। ये जिसके उत्तर (आगे) होते हैं, उसे प्रकृति कहते हैं। प्रत्यय सदा प्रकृति के अव्यवहित उत्तरवर्ती रहते हैं। "उसी आदमी, जो आपके पास जाएगा, को यह पुस्तक दे दीजिए" "उसी स्थान, जहाँ आप मुझे मिले थे, पर यह घटना हुई थी" यहाँ 'आदमी' और 'स्थान' के तुरन्त बाद क्रमशः 'को' और 'पर' आना चाहिए। प्रकृति के विना प्रत्यय का और प्रत्यय के बिना प्रकृति का कुछ अर्थ नहीं होता; केवल पागलों का-सा प्रलाप होता है। किस शब्द का किस शब्द के साथ कौन सम्बन्ध है, यह प्रत्ययों से ही ज्ञात होता है। वक्ता या लेखक क्या कहना चाहता है, इसका प्रत्यय (निश्चय) प्रत्यय ही कराते हैं। "शत्रुओं ने नगर पर चार टन गोले बरसाए" कहने से वक्ता या लेखक का भाव होगा कि सब गोले मिलकर तौल में चार टन थे। यदि 'शत्रुओं ने नगर पर चार टन के गोले बरसाए' होगा तो तात्पर्य निकलेगा कि बरसनेवाला प्रत्येक गोला चार टन का था। एवं 'हमारे मकान नहीं, (हमारा कोई जद्दी मकान नहीं) 'हमारा मकान नहीं, (किसी दूसरे का मकान है) 'यह घड़ी कितने की लाए' (इसका निश्चित मूल्य क्या है ?) 'यह घड़ी कितने में लाए' (इसके मूल्य की सीमा क्या है ?) 'चार दिनों पर आए' (चार दिनों के बाद) 'चार दिनों में आए' (चार दिनों के भीतर) 'लंका भारत से दक्षिण है' (भारत के बाहर है)। 'कुमारी अन्तरीप भारत के दक्षिण

है' (भारत के अन्तर्गत है)। यद्यपि यह विषय अर्थ और लिंग की अपेक्षा कुछ सूक्ष्म है। तथापि थोड़ा मनोयोग देने पर–अन्तर्मुख होने पर–अवश्य सुगम हो जाता है। केवल 'सात' तो विभक्तियाँ हैं। यदि एक एक विभक्ति को सात-सात दिन दे दिए जायँ तो निस्सन्देह हम उन्चास दिनों में ही विभक्तियों का निर्भ्रान्त प्रयोग करने लग जाएँगे। अब विभक्तियों पर कुछ विचार किया जाता है।

१–प्रथमा विभक्ति

पुंलिंग में—राम है, राम हैं। घोड़ा है, घोड़े हैं। हरि है, हरि हैं। धोबी है, धोबी हैं। साधु है, साधु हैं। डाकू है, डाकू हैं। दुबे है, दुबे हैं। बर्रें है, बर्रें हैं। माधो है, माधो हैं। जौ है, जौ हैं।

स्त्रीलिंग में—पुस्तक है, पुस्तकें हैं। बाला है, बालाएँ हैं। मति है, मतियाँ हैं। नदी है, नदियाँ हैं। धेनु है, धेनुएँ हैं। बहू है, बहुएँ हैं, सेए हैं, सेएँ हैं। व्यासो है, व्यासोएँ हैं। गौ हैं गौएँ हैं।

विशेष वक्तव्य—प्रथमा विभक्ति का कोई चिह्न नहीं होता। होता भी हो तो वह सदा लुप्त रहता है। 'रीतियें' 'विधियें' आदि लिखना सर्वथा अशुद्ध है।

२–द्वितीया विभक्ति

पुलिङ्ग में—राम को, रामों को। घोड़े को, घोड़ों को। हरि को, हरियों को। धोबी को, धोबियों को। साधु को, साधुओं को। डाकू को, डाकुओं को। दुबे को, दुबेओं को। बर्रें को, बर्रेंओं को। माधो को, माधोओं को। जौ को, जौओं को।

स्त्रीलिङ्ग में—पुस्तक को, पुस्तकों को। बाला को, बालाओं को। मति को, मतियों को। नदी को, नदियों को। बहू को, बहुओं को। से को सेओं को। रै को, रैओं को। व्यासो को व्यासोओं को।

विशेष वक्तव्य—द्वितीया विभक्ति का चिह्न 'को' है। यह कर्म के आगे (बाद) आता है। जिस पर कर्त्ता की क्रिया का फल पड़े, वह कर्म होता है। पर 'को' चिह्न सभी कर्मों के साथ नहीं जोड़ देना चाहिए। जो कर्म सजीव तथा महान् हों उन्हीं के साथ 'को' लगाना चाहिए, जैसे–'राम रावण को मारता है' 'भगवान् को भजो' आदि। निर्जीव तथा क्षुद्र कर्मों के साथ 'को' शोभा नहीं देता। 'वह पत्र (को) लिखता है' 'वह कीड़ियां (को)

मारता है' 'मैं अपना नौकर (को) आपके पास भेज दूँगा' आदि कभी-कभी कर्म पर जोर देने के लिए 'को' अवश्य जोड़ना पड़ता है; जैसे 'मैं अपने नौकर को आपके पास भेजूंगा' अर्थात्—मैं या कोई दूसरा नहीं आ सकेगा। सर्वनाम शब्दों के द्वितीया विभक्ति में दो-दो रूप बनते हैं; तुझको—तुझे, तुमको—तुम्हें। मुझको—मुझे, हमको—हमें। उसको—उसे। उनको उन्हें। इनमें का दूसरा रूप ही शिष्टसम्मत माना जाता है, पर कविता (पद्य) में इनका पहला रूप भी ठीक बैठ जाता है। जैसे—'आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना' 'हम गमको खा रहे हैं गम हमको खा रहा है'

नीचेके प्रयोगों में 'को' खटकता है—

१—उन्होंने इसी भाषा को पढ़ाया है।
२—यह कविता कई एक भावों को प्रगट करती है।
३—फल को खूब पका हुआ होना चाहिए।
४—उन्होंने इस सटीक ग्रंथ के अनुवाद को लिखा।
५—कवियों पर लगे हुए कलङ्क को धो डालो।
६—उसने ऊपर को देखकर कहा।
७—इस ग्रन्थ को कई हकीमों ने बनाया था।
८—इस औषध को जल में घोलकर पिलाओ।

इस 'को' की खटक मिटाने के लिए पहले हमें अपना वाक्य 'को' के बिना बनाना चाहिए। यदि वाक्य ठीक बन जाए तो साधु। अन्यथा 'को जोड़ देना चाहिए।

१—उन्होंने यह भाषा पढ़ाई है।
२—यह कविता कई एक भाव प्रगट करती है।
३—फल खूब पका हुआ होना चाहिए।
४—उन्होंने इस सटीक ग्रन्थ का अनुवाद लिखा।
५—कवियों पर लगा हुआ कलंक धो डालो।
६—उसने ऊपर देखकर कहा।
७—यह ग्रन्थ कई हकीमों ने बनाया था।
८—यह औषध जल में घोलकर पिलाओ।

नीचेके उदाहरणों में 'को' का दुरुपयोग किया गया है—

१—वह प्रत्येक प्रश्न को (का) वैज्ञानिक ढंग पर विश्लेषण करने का पक्षपाती था।

२—उनको (की) समझौते की इच्छा नहीं थी। (प्रकरण के अनुसार 'को' भी ठीक है)

३—हिन्दी सीखनेवालों को (के लिए) यह उत्तम सहायक ग्रन्थ है।

४—मैं पण्डित नहीं, जो आपको (से) कुछ कह सकूँ।

५—कांग्रेस को (के लिए) ६० प्रतिशत वोट पड़े।

६—गाय को (के लिए) भूसा करके पानी पीऊँगा।

७—वह इस बात को लेकर (के कारण) दिन-रात रोता रहता है।

८—इस विषय को लेकर (पर) उनमें मतभेद हो गया।

यह 'को लेकर' बहुत ही भद्दा प्रयोग है। इससे सर्वथा बचे रहना चाहिए।

१—रामको जाना है (कर्ता में)।

२—रामको सुख हुआ (कर्म में)।

३—रामको पुस्तक दो (सम्प्रदान में)।

४—'भक्तन को मन भामतो' (सम्बन्ध में) ब्रजभाषा।

५—रात को जाएगा (अधिकरण के एक अंश में)।

यहाँ के सभी 'को' शुद्ध हैं।

३—तृतीया विभक्ति

द्वितीया विभक्ति के 'को' के स्थान पर 'ने' और 'से' रखते जाइए। बस, तृतीया के रूप बनते जाएँगे। तृतीया 'कर्त्ता' और 'करण' में आती हैं। क्रिया करनेवाला 'कर्ता' होता है। 'कर्तृ' तृतीया का चिह्न 'ने' है और 'करण' तृतीया का 'से'। यह 'ने' भी तभी आता है; जब सकर्मक धातु की भूतकालिक कृदन्ती क्रिया का योग हो। जैसे 'राम ने पुस्तक पढ़ी' 'भक्त ने भगवान् को पुकारा' आदि। 'मैंने हँस दिया' 'मैंने नाचा' आदि प्रयोग सर्वथा अशुद्ध हैं। 'मैं हँसा या हँस पड़ा 'मैं नाचा' होना चाहिए। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्ता भी करण के समान प्रयुक्त होता है। इसलिए उसके साथ भी 'से' चिह्न ही लगता है। वह भी जहाँ निषेध करना हो वहीं। जैसे—'मुझसे रोटी नहीं खाई जाती' (कर्मवाच्य) 'मुझसे सोया नहीं जाता (भाववाच्य)' आदि। 'मुझसे खाया जाता है' 'मुझसे सोया जाता है' आदि शिष्ट प्रयोग नहीं माने जाते।

क्रिया का साधन 'करण' होता है। उसके साथ सदा 'से' ही चिह्न लगता है। जैसे—'बाण से रावण को मारा' 'मुँह से बोलता है' 'रथ से आता है' आदि।

विशेष वक्तव्य—आजकल इस 'से' का बहुत ही अशुद्ध प्रयोग किया जा रहा है। अत्यन्त सावधानता से इसका प्रयोग करना चाहिए। नीचे के उदाहरणों में 'से' ठीक ठिकाने पर नहीं।

१—आप की राय से यह काम जरूरी है ('में' होना चाहिए)।
२—फिर कुछ देर से उसने कहा ('के बाद' होना चाहिए)।
३—उसे कान से पकड़कर बठा दिया (पकड़ने का साधन तो हाथ है, कान नहीं। इसलिए होना चाहिए 'उसे कान पकड़ कर उठा दिया')

कुठ लोग 'से' के स्थान पर 'सहित' 'के साथ' 'द्वारा' और 'मार्फत' लिख जाते हैं, जो बहुत ही भ्रामक होते हैं। 'मैं आपकी पुस्तक धन्यवाद के साथ या सहित लौटाता हूँ' का तो अर्थ होगा कि धन्यवाद भी लौटाया जा रहा है। जहाँ दो या अधिक वस्तुओं का साहचर्य्य होता है, साथ साथ रहना पाया जाता है; वहीं 'साथ' और 'सहित' का प्रयोग होना चाहिए। इसलिए 'धन्यवादपूर्वक लौटाता हूँ' ही लिखना और बोलना चाहिए। 'वह प्रेम के साथ पढ़ रहा है' का तो यही अर्थ होगा कि प्रेम और वह दोनो साथ साथ पढ़ रहे हैं। 'वह प्रेम से पढ़ रहा है, कहना भी उतना अच्छा (निर्भ्रान्त) नहीं जितना 'प्रेमपूर्वक' कहना है। इससे तो यह भी भ्राँति हो सकती है कि 'प्रेम' किसी व्यक्ति का नाम है, जिससे वह पढ़ रहा है। 'रात मैं शान्ति के साथ सोया था,' बोलकर तो झगड़ा और कलंक मोल लेना है। इसलिए 'शांतिपूर्वक' ही लिखना और बोलना चाहिए।

'से' और 'के द्वारा' के अर्थों में भी महान् अन्तर है, जो 'हमने यह बात उनसे कही थी' और 'हमने यह बात उनके द्वारा कहलाई थी' से स्पष्ट हो जाता है। इसलिए 'हमने यह बात उनके द्वारा सुनी थी' न कहकर 'हमने यह बात उनसे सुनी थी' ही कहना चाहिए। निम्न लिखित उदाहरणों म 'से' का प्रयोग साधु कहा जाएगा।

१—वह रोग से दुबला हो गया (हेतु)।
२—मुझे आप से मिलकर बहुत प्रसन्नता हई (साथ)।
३—घोड़ा दो सौ रुपयों से लिया (मूल्य)।
४—आँख से काणा, कान से बहिरा (अंगविकार)।
५—जटाओं से साधु, बोलचाल से विद्वान् (चिह्न)।
६—प्रकृति से कोमल, स्वभाव से मृदु (लक्षण)।
७—तुम से क्या हो सकेगा (निषेधार्थक क्या)।
८—जंगल में रोने से क्या लाभ ('')

९—मैंने अपनी इच्छा से किया (इच्छा)

१०—आप किस प्रयोजन से आए हैं (प्रयोजन)।

कुछ प्रयोगों में 'से' चिह्न लुप्त रहता है। 'आँखों देखी घटना' 'कानों सुनी बात' 'बच्चा घुटनों चलता है' 'अपने हाथों अपनी इज्जत न खोओ' 'किस के सहारे रहूँ' 'साँप पेट के बल चलता है' आदि।

४—चतुर्थी विभक्ति

'से' के स्थान पर 'को' या 'के लिए' 'के वास्ते' 'के निमित्त' 'के अर्थ' लगाने से चतुर्थी विभक्ति बन जाती है। चतुर्थी 'सम्प्रदान' में होती है। जिसके लिए क्रिया की जाती है, वह 'सम्प्रदान' होता है। सजीव पदार्थों के लिए 'को' चिह्न ही प्रयुक्त होता है और निर्जीव पदार्थों के लिए, के वास्ते, के निमित्त, या के अर्थ, प्रयुक्त होता है। जैसे 'गौ को चारा डालता है' 'श्याम को फल दिए' आदि। 'पैसे के लिए, (वास्ते, निमित्त, या अर्थ) मेहनत करता है' 'यश के लिए (वास्ते, निमित्त, या अर्थ) दान करता है' आदि आदि।

विशेष-वक्तव्य—निम्नलिखित उदाहरणों में 'को' चिह्न ही अच्छा लगता है।

१—भूखे को रोटी दो। (सम्प्रदान में)

२—भगवान् के दर्शनों को गए। (सम्प्रदान में)

३—राम को पाठ याद करना है (कर्ता में)

४—मोहन को कल रोते-रोते बीता (सम्बन्ध में) मोहन को = मोहन का*

५—गुरुजी को प्रणाम (नमस्कार)।

६—आपको धन्यवाद। (सम्प्रदान में)

७—परतन्त्रता को धिक्कार। (धिक् योग में कर्म)

८—धोखेबाज को फटकार। (धिक् अर्थ में कर्म)

९—आपको ऐसा करना योग्य नहीं। (कर्ता में)

१० छोटों को बड़ों की सेवा करनी चाहिए। (कर्ता म)

---

*'मोहन को कल मैंने रोते-रोते देखा' में 'मोहन को' कर्म 'मैंने कर्ता 'देखा' क्रिया तथा रोते-रोते क्रिया-विशेषण, कर्ता से सम्बद्ध। यदि 'रोते-रोते मोहन को देखा, हो तो 'रोते-रोते' विशेषण मोहन का माना जाएगा। जिसका जो विशेषण हो वह उसी के पहले रखना चाहिए।

११ यह भोजन चार आदमियों को पर्याप्त (काफी) होगा (सम्प्रदान में)। पर्याप्त=अलं के योग में।

५–पंचमी विभक्ति

अपादान में पञ्चमी विभक्ति आती है। जिस जगह से अलग हुआ जाए, वह 'अपादान' होता है। इसका चिह्न भी 'से' है। परन्तु कारण के 'से' में क्रिया की साधनता रहती है, इसके 'से' में संज्ञा की पृथक्ता। जैसे 'लता से पुष्प गिरते हैं' 'लड़का घर से निकलता है', आदि।

विशेष-वक्तव्य—नीचे दिए उदाहरणों में किसी न किसी रूप में पृथक्ता अवश्य पाई जाती है।

१–वृक्ष से पता गिरता है (अपादान)।

२–पृथ्वी से अनन्त पदार्थ पैदा होते हैं (उत्पत्ति)।

३–लाहौर से काश्मीर तक (आरम्भ)।

४–धन से विद्या श्रेष्ठ है (तुलना)।

५–लाहौर से अमृतसर २५ मील दूर है। (स्थान की दूरता)।

६–आज से बरसों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी (समय की दूरता)।

७–वह उससे भिन्न है। ८ घर से बाहर। एवं परे, रहित हीन, दूर, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, लज्जा, डर, बनाव आदि शब्दों तथा इनके अर्थ-वाले शब्दों के योग में और दिशावाचक शब्दों के योग में अपादान का 'से' आता है। जब षष्ठी का 'के' चिह्न लगता है तब अर्थ में भी भेद हो जाता है। जैसे 'लंका भारत से दक्षिण है; (भारत के बाहर है) 'कुमारी अन्तरीप भारत के दक्षिण है, (भारत के अन्तर्गत है)। 'पूछना' और 'कहना' धातुओं के गौणकर्म तथा क्रियाविशेषणों में 'से' आता है। जैसे 'तुम उन से क्या पूछते थे ? 'राम तुम से क्या कहता था ? 'कहाँ से आए ?' कब से खड़ा हूँ। कहाँ से कहाँ चला गया' आदि। निर्धारण (निश्चय) अर्थ में सप्तमी के आगे भी 'से' आता है (इन में से कौन लड़का अच्छा है)। 'सिर से बोझ उतारता है' 'मकान से गिरता है' पुल से गिरता है, आदि प्रयोगों में कहीं कारण का भ्रम न हो जाए, इसलिए 'से' के पहले 'पर' और लिखना चाहिए। सिर पर से, मकान पर से, पुल पर से आदि।

६–षष्ठी विभक्ति

सम्बन्ध में छठी विभक्ति होती है। इसके चिह्न का-के-की 'रा-रे-री' हैं। स्त्रीलिंग में 'की' और 'री' आते हैं, एवं-पुलिंग में 'का, के, रा, रे,।

शेष सभी विभक्तियाँ 'कारक' होती हैं। पर यह 'कारक' नहीं होती। क्योंकि इसका क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसे 'विशेषण-विभक्ति' भी कहते हैं। इसका अर्थ केवल 'सम्बन्ध' है। सम्बन्ध दोनो पदार्थों में रहता है। पर षष्ठी भेदक (विशेषण) के आगे ही आती है 'द्विष्ठो यद्यपि सम्बन्धः, षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात्'। जैसे—राम की पुस्तक, मेरा ग्रंथ, मेरी बहन आदि।

विशेष वक्तव्य—आगे कोष्ठक में दिए अर्थों में षष्ठी आती है। १—प्रताप का घोड़ा (सम्वन्ध)। २—अब मैं नहीं आने का (भविष्यत् अर्थ)। ३—दस रुपयों का घी (मूल्य)। ३—कल की बात (समय)। ५—पांच गज की साड़ी (परिमाण)। ६—अस्सी बरस का बूढ़ा (अवस्था)। ७—चांदी का थाल (उपादान)। ८—तलवार का लोहा (कारण)। ९—मोहन का भामा (नाता)। १०—सबके सब (व्याप्ति)। ११—झुण्ड के झुण्ड (आधिक्य)। १२—गंगा की सौगंध (शपथ)। १०—राईका पहाड़, राजा का रंक, (बदला)। १४—घोड़े का पानी (आधार)। १५—पानी का घड़ा (आधेय)। १६—सच्चे का सच्चा झूठे का झूठा आप ही जाना जाता है (निश्चय)। १७—शरीर का हलका (चिह्न)। १८—जबान का मीठा (लक्षण)। १९—बात की बात में ठीक कर देता हूँ (शीघ्रता)। २०—पीने का पानी (योग्यता)। २१—धर्म की नौका—धर्मरूपी—(आरोप) तथा 'प्रेम का बंधन —प्रेमरूपी'। योग्य, अधीन, तुल्य, अनुसार, प्रति, साथ, समीप, लिए, मारे, निमित्त, कारण, द्वारा, भीतर आदि शब्दों के तथा इनके अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी आती है। (इनके उदाहरण स्वयं बनाइए)। क्रिया-विशेषणों के आगे भी षष्ठी आती है। 'बदमाश कहीं का' 'वह कहां का भला मानस है' 'वह कहां का कहां चला गया, 'मैं आजतक कहीं का कहीं पहुंच गया होता' 'नन्हीं तुम्हें कब की पुकार रही है', मैं कब का खड़ा हूँ' आदि। कभी कभी 'में' और 'पर' के आगे भी षष्ठी आ जाती है, जैसे—'आले में का सेव' 'सिर पर का बोझ'। कभी कभी विधेय लुप्त भी रहता है, जैसे—'मनकी (इच्छा) मन माहि रही' 'किसी की (बात) नहीं सुनता' 'कल रात की गाड़ी से चलने की (सलाह) ठहरी' आदि। सम्बन्ध के कुछ भेद—स्व-स्वामिभाव (मेरी घड़ी), सेव्य-सेवक-भाव (भगवान् का भक्त-राजा का सेवक), अंगागिभाव (बच्चे का हाथ, पलङ्ग का पाया), जन्य-जनकभाव- (मोहन का लड़का), कर्तृकर्मभाव (विहारी की सतसई, तुलसी की रामायण), कार्यकारणभाव (सोने का कण्ठा) आदि अनेक भांति के सम्बन्ध होते हैं। इसलिए षष्ठी का विषय बहुत ही विस्तीर्ण माना जाता है।

७–सप्तमी विभक्ति

सप्तमी 'अधिकरण' में होती है। आधार और अधिकरण एक ही चीज है। आधार तीन प्रकार का होता है, औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक। औपश्लेषिक आधार के आगे सप्तमी का 'पर' चिह्न ही आता है; जैसे–'चटाई पर सोता है' आदि। पर अन्यत्र सप्तमी का 'में' चिह्न लगता है; जैसे'–'तिलों में तैल' 'घड़े में पानी' आदि।

विशेष वक्तव्य—स्मरण रखना चाहिए कि सप्तमी का चिह्न 'पर' है 'ऊपर' नहीं। 'ऊपर' एक स्वतन्त्र शब्द है। इनके अर्थों में महान् अन्तर है। जहां 'पर' आता है, वहां आधार और आधेय संयुक्त होते हैं, 'ऊपर' का आधार से कोई सम्बन्ध नहीं होता तथा 'ऊपर' के पहले 'के' या 'रे' चिह्न अवश्य आएगा। जैसे—'सिर पर पगड़ी' 'सिर के ऊपर छतरी' सिर और पगड़ी का परस्पर संयोग सम्बन्ध है। पर 'छतरी' के साथ 'सिर' का सीधा कोई सम्बन्ध नहीं, परम्परा भले ही हो। नीचे के उदाहरण से 'में' 'पर' और 'ऊपर' के अर्थों का भेद और भी स्पष्ट हो जाता है— 'आज गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि डब्बे 'में' लोग ठसाठस भरे थे, और कुछ लोग डब्बों 'पर' ही बैठे थे, पर जहाज डब्बों के 'ऊपर' उड़ा जा रहा था'। औषधों के भीतर (अन्दर या बीच) बहुत-से गुण होते हैं' लिखना या बोलना महामहा अशुद्धि है। जहां 'में' से काम चल सकता हो वहां 'के अन्दर-के भीतर-के बीच' लिखना सर्वथा अनुचित है। 'घड़े में पानी है' न कहकर 'घड़े के बीच पानी है' कहना क्या अच्छा लगेगा ? इसलिए 'के बीच' आदि की बीमारी से सदा बचते ही रहना चाहिए।

कोष्ठान्तर्गत अर्थों में सप्तमी का 'में' चिह्न ही आएगा।

१—बर्तन में घी (आधार)।

२—पक्षियों में कौआ चालाक (निर्धारण)।

३—वह मुझमें और तुझमें फूट डालता है। (भेद)।

४—घर में चलो (भीतर)।

५—वह काम करो जिसमें निन्दा न हो (कारण)।

६—यह पुस्तक कितने में ली ? दो रुपयों में (मूल्य)।

७—वह इन दिनों बहुत झंझट में है (अवस्था)।

८—योगी ईश्वर के ध्यान में लीन है (अवस्था)।

९—सुख-दुःख में भगवान् को न भूलो **(अवस्था)**

१०—एक ही गोली में शेर का काम तमाम हो गया **(कारण)**।

नीचे के कोष्ठान्तर्गत शब्दों के अर्थों में सप्तमी का 'पर' चिह्न आता है—

१—अटारी पर कबूतर (औपश्लेषिक-आधार)।

२—मीनार पर चढ़ो (ऊपर की ओर)।

३—नियम पर रहो (अनुसार)।

४—तीर पर तीर छोड़ने लगा (सातत्य)।

५—हमारा गाँव यहाँ से सात-आठ कोस पर है (दूरी)।

६—उसके यह कहने पर बुढ़िया बोली (अनन्तर)।

कुछ उदाहरणों में विरुद्धार्थक सप्तमी भी होती है; जैसे—'पैर में जूता' (जूते में पैर होता है) 'हाथ में कड़ा' (कड़े में हाथ होता है) 'गले में माला' (माला में गला होता है) 'कमर में करधनी' (करधनी में कमर होती है) यहाँ इनका ऊपर-नीचे इर्द-गिर्द इसी प्रकार का कुछ अर्थ कर लेना चाहिए। (विशेष (क) भागमें देखिए)।

अशुद्ध प्रयोगों के कुछ उदाहरण

१—बहुत-से शब्द ऐसे होते हैं; जो ऊपर से (स्थूल दृष्टि से या आपाततः) एक से जान पड़ते हैं।

२—हाल ही में बिहारी के ऊपर (पर या विषय में, सम्बन्ध में) पुस्तक निकली है।

३—आधुनिक कवियों के ऊपर कई ग्रन्थ निकल चुके हैं।

४—सूरदास जी के ऊपर श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी ने बहुत उत्तम ग्रंथ लिखा है।

५—यद्यपि प्रधानता भावों पर (की) है।

६—वह तुरन्त स्टेशन पर (को या की ओर) भागा।

७—भारत के प्रश्न पर (में) रूस की दिलचस्पी।

८—आंख में (पर) लगाने का चश्मा।

९—देखो भाई देश की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर (तुम पर) है।

१०—वृक्ष में (पर) फल लगे हैं।

मैं सम्बोधन को अव्यय मानता हूँ। इसलिए उसकी चर्चा अगले प्रकरण में की जाएगी। पूर्व-लिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि प्रत्यय-विशिष्ट प्रकृति से ही हमारा भाव प्रगट होता है। न तो 'राम बाण रावण मारा' का कुछ अर्थ है, और न 'ने से को मारा' का ही। इसलिए अपने ठीक-ठीक भाव प्रगट करने के लिए प्रत्यय-विशिष्ट प्रकृति का ही प्रयोग करना चाहिए 'राम ने रावण को बाण से मारा' आदि। यही सिद्धान्त है कि 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः।'

६

"यन्न व्येति तद्व्ययम्"

जिसमें कोई विकार न हो वह 'अव्यय' होता है। यद्यपि 'को 'ने' आदि प्रत्ययों में भी कोई विकार नहीं होता। फिर भी वे अव्यय नहीं कहलाते। कारण कि उनका प्रकृति के बिना स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। इसलिए वे प्रत्यय ही हैं, अव्यय नहीं। कभी कभी सम्बोधन प्रकृति के पहले आता है और कभी कभी बाद। इस लिए इसे अव्यय ही मानना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। सम्बोधन नाम अभिमुखीकरण का है; हे, अयि, आदि इसके सूचक हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति आती है। अव्यय अनेक हैं और उनके अर्थ भी। यह सब आपने व्याकरण में देख ही लिया होगा। 'अव्यय' का एक अर्थ और भी होता है। 'नास्ति व्ययो यस्य' अर्थात् जिसका फजूल खर्च न हो। पर आजकल इसका बहुत ही व्यर्थ-व्यय (फजूल खर्च) हो रहा है। लिए, ऊपर, साथ, सहित, द्वारा, मार्फत आदि के सम्बन्ध में तो पहले कुछ लिख ही आए हैं। अब तो—केवल, मात्र, ही, आदि के सम्बन्ध में ही कुछ लिखना चाहते हैं।

'केवल, मात्र, भर, ही

ये चारो अव्यय समानार्थक (एकार्थक) हैं। जैसे—(क) आज हम केवल दूध पीकर रहेंगे। (ख) आज हम दूध मात्र पीकर रहेंगे। (ग) आज हम दूध भर पीकर रहेंगे। (घ) आज हम दूध ही पीकर रहेंगे। इसलिए एक ही वाक्य में इनका एक-साथ प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे—

१—शब्द केवल संकेत मात्र होते हैं।

२—केवल कहने मात्र से कुछ नहीं होता।

३—ये बातें केवल दिखावा भर थीं।
४—यह केवल उत्तरी ध्रुव में ही दिखाई देता है।
५—यह सब तो केवल आप पर ही निर्भर है।
६—समस्त प्रजामात्र से सहायता ली जाएगी (समस्त या मात्र)।
७—हम=स्वयं (ही) उनसे मिलेंगे।
८—हम तो अवश्य (ही) वहाँ जाएँगे।
९—अवश्यमेव (ही) यह काम करना होगा।
१०—कोई बात (ही) नहीं।
११—वह किसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा (ही) नहीं रखता।
१२—इन दोनों में (केवल) यही अन्तर है।
१३—(केवल) वे ही लोग वहाँ जाएँगे।
१४—(केवल) इसीलिए मैं वहाँ नही गया।
१५—(केवल) तभी काम होगा।
१६—दोनों (ही) आदमी जाएँगे, आदि। **(अच्छी हिन्दी–वर्माजी की)**

'केवल' शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक 'अकेला' और दूसरा 'ही' तथा 'और' शब्द के भी दो अर्थ होते हैं—एक 'अन्य' एवं दूसरा 'योजक'। जैसे—पूर्णविराम के तुरन्त बाद योजकार्थक 'और' अव्यय नहीं आता; किन्तु 'अन्यार्थक' 'और' शब्द आ जाता है। कोई खटक प्रतीत नहीं होती। वैसे ही 'ही' अव्यय के साथ 'अकेला' अर्थ के वाचक 'केवल' शब्द का प्रयोग नहीं खटकता। यह बात पहले के पाँचों उदाहरणों में स्पष्ट है। छठे उदाहरण में अवश्य ही आर्थिक पुनरुक्ति है। परन्तु 'अवश्य' 'एव' 'ही' आदि का भी एक साथ प्रयोग नहीं खटकता। इनका अधिक प्रयोग करने से इनमें की शक्ति कम हो गई। जैसे—'सदा' के स्थान पर 'सदा-सर्वदा' कहे बिना जोर नहीं आता। वैसे ही 'अवश्य' के स्थान पर 'अवश्य ही' कहे बिना तृप्ति-सी नहीं होती। १४ और १५ संख्या के उदाहरणों में 'केवल' शब्द पूर्व प्रसङ्ग का परामर्शक है। इसलिए नहीं खटकता।

कहीं कहीं 'ही' अर्थ पर बल देने के अतिरिक्त 'हीनता' या 'उपेक्षा' का भाव भी सूचित करता है। जैसे—

(क) चार ही रुपये न!
(ख) अब वह मिल ही जाए तो क्या होगा?
(ग) हां, यह भी अच्छा ही है, आदि।

'भी'

किसी, कोई, कहां, कभी, कहीं, किन्हीं, जो, जितना, हरगिज, जब, जैसे, आदि शब्दों के साथ 'भी' का प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे—

१ किसी (भी) आदमी को भेज दो।

२ वह कहीं (भी) नहीं गया था।

३ मैं हरगिज (भी) नहीं समझ सकता।

४ चाहे जैसे (भी) हो, तुम वहाँ जाओ आदि। परन्तु उपेक्षा' या 'आग्रह' का भाव सूचित करने के लिए 'भी' का प्रयोग अवश्य होता है। जैसे (क) 'चलो, जाने भी दो (उपेक्षा)'। (ख) 'तुम कुछ देर बैठो भी तो (आग्रह)'।

'सा'

'सा' अव्यय के दो अर्थ हैं सादृश्य और परिमाण। 'सा' इन दोनो अर्थों में कुछ हीनता या निश्चय का भाव भी सूचित करता है। जैसे (क) 'एक छोटा-सा मकान बनवालो (हीनता)' '(ख) इनमें से तुम कौन-सा लो गे (निश्चायक)'। इसलिए 'आप मुझे अपना छोटा-सा भाई समझें' 'अब मैं वहाँ कौन-सा मुँह लेकर आऊँ' आदि लिखना और बोलना ठीक नहीं। आशा है अब आप इनका व्यर्थ प्रयोग न करके इन्हें सच्चे अर्थ में 'यन्न व्येति तदव्ययम्' बनाएँगे।

——

७

"सम्भव-व्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणमर्थवत्"

संज्ञाओं की विशेषता या पहचान बतानेवाले शब्द 'विशेषण' होते हैं। निष्प्रयोजन विशेषण पर विशेषण रखते जाना अपनी मूर्खता प्रगट करना है। विषयलम्पट प्राणियों के लिए 'योगिराज' 'त्यागमूर्ति' 'ब्रह्मनिष्ठ' 'भक्तराज' आदि लिखकर विशेषणों का महत्त्व कम करने के साथ-साथ अपना भी महत्त्व कम करना है। किसी काले-कलूटे व्यक्ति को 'कर्पूरगौरं' कहने से कैसी प्रसन्नता ? कुछ सम्भव तो होना चाहिए, मनुष्य को 'सींगोंवाला' कहना क्या अच्छा लगेगा ? आकाश को 'फूलोंवाला' कहने से क्या लाभ ? काणे को 'एक आँख से काणा' कहने का क्या अर्थ ? जब 'काणा' एक आँखवाले को ही कहते हैं, तब 'एक आँख से' (विशेषण वाक्य) ने कौन-सी विशेषता प्रगट की ? एवं——ठंडी बरफ, गरम आग, मृत आत्मा, कहने का क्या मतलब ? 'बाबूजी झटपट गले में कोट डाल कर चल पड़े'। क्यों जी ! गले के अतिरिक्त भी कहीं कोट डाला जाता है ? यदि नहीं तो 'गले में' का क्या मतलब ? गले में तो अंगुलि डालने मात्र से वमन हो जाती है। धन्य हैं योगिराज बाबूजी, जिन्हें चार-पाँच सेर ऊन का कोट गले में डालने पर भी कुछ नहीं हुआ। क्यों न इसके स्थान पर सीधा-सादा और निर्भ्रान्त 'कोट पहन कर चल पड़े' रख दिया जाए। एवं–'कानों में कुण्डल डाले हैं' कहना या लिखना भी ठीक नहीं। क्योंकि कुण्डल धारण ही कानों में किए जाते हैं। इस वाक्य से तो एक दूसरा ही अर्थ निकलता या निकल सकता है कि 'कुण्डल भी बादामरोगन या तेल की तरह कानों में उँड़ेल लिए गए हैं। इसलिए इसके स्थान पर कुण्डल धारण कर रक्खे हैं, लिखना या बोलना ही ठीक है ['गले में' 'कानों में' प्रयोग भी अब नहीं खटकते। इस

'में' चिह्न का समाधान पहले कर आए हैं ।] सुनते हैं कि महर्षि वशिष्ठ ने अपने सौ पुत्रों से तो हाथ धो लिया, पर विश्वामित्र को 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा । आशा है आज से आप भी सोच-समझकर ही विशेषण रखेंगे । नहीं तो कोई कठोर सत्य का पक्षपाती आपको भी 'खुशामदी टट्टू' कह डालेगा । सच भी है, विशेषण सार्थक तो होने ही चाहिए । उनकी सार्थकता तब होगी; जब हमारी दृष्टि ठीक 'सम्भव-व्यभिचाराभ्याम्' पर रहेगी ।

विशेषणों के अनेक भेद, उपभेद और अवान्तर भेद होते हैं । जो आपने हिन्दी व्याकरण में पढ़ ही लिए होंगे । स्थूल रूप से विशेषणों के दो भेद हैं; एक उद्देश्य-विशेषण और दूसरा विधेय-विशेषण । 'लम्बे कानोंवाला' 'धोती बाँधे हुए' आदि 'विशेषण-वाक्यांश' कहे जाते हैं । उद्देश्य-विशेषण विशेष्य के पहले रखा जाता है और विधेय-विशेषण विशेष्य के बाद । जैसे—'पण्डित हिरण्यकान्त जी आए' 'गौरांग पण्डित है' । पर अवस्था विशेष के कारण (भय आदि में) इसका उलटा भी हो जाता है 'साँप ! साँप !! काला' । जिन विशेषणों का क्रिया से सम्बन्ध होता है वे 'क्रियाविशेषण' कहे जाते हैं । जैसे—'वायु धीरे-धीरे चलती है' आदि । जिसकी विशेषता प्रगट करनी हो उसी के पहले विशेषण रखना चाहिए । जैसे—'कुछ अशुद्ध प्रयोगों के उदाहरण' और 'अशुद्ध प्रयोगों के कुछ उदाहरण, पहले वाक्य का अर्थ है कि ऐसे थोड़े-से अशुद्ध प्रयोग हैं ; जिनके उदाहरण दिए जा रहे हैं । दूसरे वाक्य का अर्थ है कि अशुद्ध प्रयोग हैं तो बहुत ; पर उनमें से कुछ-एक प्रयोग दर्शाए जा रहे हैं । एवं—'गाड़ी की बड़ी खिड़कियाँ' 'बड़ी गाड़ी की खिड़कियाँ । 'नई दुनिया की कहानियाँ' 'दुनिया की नई कहानियाँ' 'पुराने कपड़े के व्यापारी' 'कपड़े के पुराने व्यापारी' आदि । अर्थ के अनुसार विशेषण बहुत ही अवधानता-पूर्वक यथास्थान रखने चाहिए । व्याकरणों में अनिश्चित-संख्यावाचक विशेषण का 'सारे नगर' और 'अनिश्चित परिमाण-वाचक का 'सब धन' उदाहरण दिया रहता है, जो ठीक नहीं जँचता । 'सब' शब्द नित्य बहुबचन है और 'सारा' शब्द संख्या वाचक नहीं 'पूर्णता' वाचक है । इसलिए 'सब धन' के स्थान पर 'सारा धन' और 'सारे नगर' के स्थान पर 'सब नगर' ही लिखना या बोलना चाहिए । 'मेरी पुस्तक' और 'अपनी पुस्तक' के अर्थों में भी कुछ अन्तर है । 'मेरा' शब्द के अर्थ में सम्बन्धमात्र का बोध होता है और 'अपना' शब्द के अर्थ में सम्बन्ध के साथ-साथ आत्मीयता का भाव भी लगा रहता है । जैसे—'मेरी अपनी पुस्तक' आदि ।

विशेष वक्तव्य—'अपना' शब्द का सम्बन्ध सीधा कर्ता से तथा सम्बन्ध षष्ठी से ही होता है । जैसे—'मेरा नौकर अपने भाई के यहाँ गया है' यहाँ

अपना शब्द का सम्बन्ध 'गया है' क्रिया के कर्ता 'नौकर' से ही है, कहनेवाले से नहीं। 'मैंने नौकर को अपने भाई के यहाँ भेजा है', में 'अपना' शब्द का सम्बन्ध 'भेजनेवाले' 'मैंने' कर्ता से ही है, जानेवाले नौकर से नहीं। 'वह डाकिया जो अपनी नित्य यहाँ आकर चिट्ठियाँ दे जाया करता था' में कर्ता 'डाकिया' है। उसी का सम्बन्ध 'अपनी' शब्द से होगा। इसलिए 'अपनी' के स्थान पर 'हमारी' होना चाहिए। यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से 'मेरे विचार मैं पहले ही प्रगट कर चुका हूँ' या 'मेरी माता की मृत्यु हो जाने पर मैं मेरे पिता के पास सोता था' अशुद्ध नहीं। फिर भी जो 'तादात्मता' यहाँ अपेक्षित (इष्ट) है, वह 'मेरा, मेरी, मेरे' से व्यक्त नहीं होती। इसलिए लिखना चाहिए कि 'अपने विचार मैं पहले ही प्रगट कर चुका हूँ' 'अपनी माता की मृत्यु हो जाने पर मैं अपने पिता के पास सोता था' आदि ('मेरे' 'मेरी' आदि की पुनरुक्ति भी नहीं रही।) 'मेरी आँखों पर * अपना विश्वास नहीं' का अर्थ होगा अपना = विश्वास का। क्योंकि 'कर्ता' विश्वास है, 'अपना' शब्द से सदा 'कर्ता' का तथा 'अपना' शब्द के पूर्व आगत सम्बन्धी का ही ग्रहण होता है, जैसे—'तुम अपने हाथों अपने पाँवों कुल्हाड़ा क्यों मारते हो'। किंतु 'मेरी आँखों पर मेरा विश्वास नहीं' लिखना भी निष्प्राण वाक्य है। होना चाहिए 'अपनी आँखों पर मेरा विश्वास नहीं'। सपनों पर भी निज का विश्वास न होना ही तो आश्चर्य की बात है। या 'मेरी आँखों पर मेरा अपना विश्वास नहीं' आदि।

अनुपयुक्त विशेषणों के कुछ उदाहरण

१—वह सुन्दर (शोभा सुन्दर ही नहीं, बहुत सुन्दर होती है) शोभा धारण कर रहा था।

२—दो दिन के बादलों के पीछे (बाद) आज सूरज निकला है।

३—आटे का भाव गम्भीर (विकट) रूप धारण कर रहा है।

४—राजा पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था (राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था।

५—यह पुस्तक बड़ी (बहुत) अच्छी है।

६—मुझे उस समय भारी (बहुत या अत्यन्त) भूख लगी।

७—उनका धैर्य समाप्त (नष्ट) हो गया।

८—मेरे भाई ने यह पुस्तक आपको समर्पण (समर्पित) की है।

---

*'अपना' शब्द के पूर्व 'मेरा' शब्द का अध्याहार करना चाहिए।

९—इस विषय में निश्चय रूप से (निश्चित रूप से) कुछ कहा नहीं जा सकता।

१०—तुम सब से सुन्दरतम हो (तम या सबसे)

११—इस विषय की सम्भावना प्रकट (प्रकट व्यर्थ है) हो रही है।

१२—उन्होंने एक निरीह बालिका का चित्रण उपस्थित (उपस्थित व्यर्थ) किया।

१३—आकाश से भीषण (बूँदें भीषण नहीं होतीं) बूँदें पड़ रही हैं।

१४—साहित्य और जीवन का घोर (अत्यन्त या घनिष्ठ) सम्बन्ध है।

१५—उनके घोर (बहुत) आग्रह करने पर यह पत्र लिखा गया था।

१६—उनकी मृत्यु से नगर में भीषण (अत्यन्त या महान्) शोक छा गया।

१७—उन्होंने अपनी भयानक (महान् या अदम्य) शक्ति का परिचय दिया।

१८—रचना में अश्लीलता अत्यन्त भयंकर (अक्षम्य) दोष है।

१९—नवीन लेखक जान-बूझकर बीहड़ (जटिल या कठिन) शब्द देते हैं।

२०—उनकी रचना वैसी ही विकृत हो जाती है जैसी भयंकर (भद्दी और भोंड़ी) नाक से शूर्पणखा की आकृति।

२१—उसकी प्रतिकूल (कटु आलोचना) समालोचना भी सब कर सकते हैं।

२२—इसका कोई (कुछ) अर्थ नहीं।

२३—आपकी अधिकांश बातें (अधिकतर) ठीक हैं।

२४—अधिकांश (अधिकतर) लोगों का यही विचार है।

२५—महीनों से रुग्ण-शय्या (रोग-शय्या) पर पड़े हुए हैं।

२६—दिल्ली में लगभग (प्रायः) शान्ति।

२७—वह पुस्तकें विशेष पढ़ता था। (वह विशेषतः पुस्तकें पढ़ता था)।

२८—उसका भारी (बहुत) अनुरोध है।

२९—छात्र दृढ़ (दृढ़ता से) संघटित हों।

३०—जैसे (जिस प्रकार) मन में कुछ निकटता जरूरी है, उसी प्रकार दूरी भी।

३१—जितना (जो) अंश देख गया हूँ, वह मुझे बहुत उपयोगी जँचा है।

३१—जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, मुझे राज्य-तिलक से कोई सम्बन्ध नहीं (जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक मेरा राज्य-तिलक से कुछ सम्बन्ध नहीं)।

३२—**सारन्धा**—उधर मत देखो स्वामी ! अस्तगामी सूर्य का दृश्य बहुत भयंकर होता है (अस्त होते हुए सूर्य का दृश्य वा देखना अशुभ होता है) आदि।

कई पुस्तकों में 'गुप्त रहस्य' 'पुरानी परम्परा' ऐसी सम्भावना' 'दयनीय दुर्दशा' 'उचित न्याय' आदि में भी विशेषणों को अनुपयुक्त माना है। परन्तु 'रहस्य' का एक अर्थ 'भेद' भी होता है। भेद गुप्त और प्रगट दोनों प्रकार हो सकता है। 'परम्परा' भी 'पुरानी और नई' हो सकती है। पूर्व परामर्शक 'ऐसी' शब्द का 'सम्भावना' के साथ प्रयोग हो सकता है। 'दुर्दशा' भी दो प्रकार की होती है—एक 'दयनीय' तथा दूसरी 'अदयनीय' अच्छे लोगों की 'दुर्दशा' दयनीय होती है तथा बुरे लोगों की दुर्दशा पर दया नहीं आती। लोक में कहावत है कि, चोर को खाते हुए न देखे, उसे पिटते हुए देखे।

हमें आँखें मूंद कर भेड़िया-धसान नहीं करना चाहिए। अपनी ईश्वरदत्त बुद्धि से भी कुछ काम लेना चाहिए। नीचे लिखे अशुद्ध-रूपों से बचते रहिए।

कुछ-एक अशुद्ध रूप

सतोगुण (सत्त्वगुण), सृजन (सर्जन), जागृत, जाग्रत् (जागरित), सौजन्यता (सुजनता या सौजन्य), रुदन (रोदन) धैर्यतापूर्वक (धीरतापूर्वक), छठवां (छठा), उज्वल (उज्ज्वल) क्रोधित (क्रुद्ध) निरपराधी (निरपराध), व्यापित (व्याप्त), ग्रसित (ग्रस्त), सशंकित (सशंक या शंकित), वैद्युतिक (वैद्युत) निराकांक्षी (निराकांक्ष), आवश्यकीय (आवश्यक), संपर्कित (संपृक्त), त्रसित (त्रस्त), गौरवित (गौरवान्वित), अनुमानित (अनुमित), निर्मोही (निर्मोह), निर्दयी (निर्दय) आदि। अन्तिम तीन शब्दों का तो चलन भी हो गया है। 'निर्मोही' 'निर्दयी' अतिशय अर्थ में बनते भी हैं। ['सृजन' 'जागृत' 'रुदन' 'क्रोधित' 'ग्रसित' 'त्रसित' 'अनुमानित' आदि रूपों का भी प्रचलन हो गया। हिन्दी ने अपना लिए हैं।]

इसलिए हमारा प्रत्येक विशेषण किसी न किसी विशेष अभिप्राय से ही यथास्थान प्रयुक्त होना चाहिए। अभिप्राय तभी निकलेगा जब हमारी दृष्टि 'सम्भव-व्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणमर्थवत्' पर रहेगी।

——

८

"ज्ञानं भारः क्रियां विना"

व्याकरण में जैसे नाम को 'संज्ञा' कहते हैं; वैसे काम को 'क्रिया' कहते हैं। यद्यपि प्रत्येक पदार्थ में केवल छह क्रियाएँ होती है,—१ पैदा होना, २ होना, (सत्ता) ३ बदलना, ४ बढ़ना, ५ घटना और ६ नष्ट होना। वास्तव में मनुष्य के सारे जीवन की दौड़-धूप इतने में ही समाप्त हो जाती है। फिर भी मनुष्य के काम अनन्त हैं। इसलिए उसकी क्रियाएँ भी अनन्त हैं। इन क्रियाओं का जान लेना ही पंडिताई है, यथार्थ-दर्शिता है, भाषा पर अधिकार है, भाषा का हृदय छूना है। यदि हम बहुत-कुछ पढ़ करके भी यह नहीं सीखे तो हम कुछ भी नहीं सीखे, हमारा ज्ञान अधूरा है, हम असूक्ष्म-दर्शी हैं, हम अन्धे हैं; वह ज्ञान ज्ञान नहीं, भार है। किसी ने सत्य ही कहा है कि 'ज्ञानं भारः क्रियां विना'।

'बोलना' एक सामान्य क्रिया है। ध्वनि के द्वारा भाव प्रगट करना इसका अर्थ है। जब ध्वनि में क--ख आदि वर्णों का स्पष्ट उच्चारण होता है तब हम कहते हैं 'बोलता है'। यदि यह बोलना अनुचित तथा अधिकार से बाहर होता है तो हम कहते हैं 'बकता' है। यदि यह बकना दो या अधिक जनों में हो तो हम कहते हैं 'झगड़ते' हैं। यदि झगड़ने के साथ-साथ हाथा-पाई भी हो जाए तो हम कहते हैं, 'लड़ते हैं'। जब स्पष्ट ध्वनि के साथ-साथ आँसू भी हों तो हम कहते हैं 'विलाप करता है'। यदि केवल ध्वनि और आँसू हों तो 'रोता है'। यदि स्पष्ट उच्चारण तथा आँसू न हों तो 'गुनगुनाता है'। यदि यह अनिच्छा-पूर्वक हो तो 'बड़बड़ाता है'। जब पशु-पक्षी ध्वनि के द्वारा अपना भाव प्रगट करते हैं तो हम 'बोलना' न कहकर कहते हैं कि—

'सिंह गर्जता है, हाथी चिंघाड़ता है, घोड़ा हिन-हिनाता है, गौ रंभाती है, भैंस अरड़ाती है, ऊँट बुकता है, कुत्ता भूँकता या भौंकता है, बिल्ली मिमाती है=म्याऊँ म्याऊँ करती है, आदि पर 'कूँजें कुर्राती हैं, कोयल कूकती है, कौआ काँव-काँव करता है, चील चीखती है, चिड़ियाँ चहचहाती हैं, मोर केका करता है, पपीहा पीऊ-पीऊ रटता है, मेंढक टर्राते हैं, भ्रमर गुंजारते हैं, बादल गर्जते हैं, बिजली कड़ती, चमकती, और कौंधती है, आदि।

जब हम मनुष्येतर इन जड़-चेतन पदार्थों में भी मनुष्यत्व का आरोप कर लेते हैं तो ये भी बोलने लग पड़ते हैं—

'वीणा मधुर मधुर कुछ बोल' 'पापी पपीहा रे......पी-पी न बोल वैरी, पी-पी न बोल' आदि।

(हमारे यहाँ जब भैंस, गौ, घोड़े, कुत्ते, आदि को पानी पिलाते हैं तो क्रमशः 'हेयो-हेयो, छिही-छिही, त्वा त्वा, लक-लक कहते हैं। ये शब्द इनके पीने की ध्वनि के ही अनुकरण हैं।)

'खाना' का अर्थ है खाजा—भक्षण। हम अन्न खाते हैं, पशु घास खाते हैं, और सिंह मांस खाते हैं, सभी कुछ न कुछ खाते ही हैं, खाने के बिना तो जीना ही असम्भव है। यदि वह खाई जानेवाली चीज कुछ कड़क या सूखी हो, अथवा उसके खाने में कड़कड़ आवाज होती हो तो हम 'खाना' न बोलकर 'चबाना' ही बोलते हैं। 'चबाना' क्रिया में एक और बात होती है कि वह चबाई जानेवाली वस्तु हाथ से ही मुख में डाली जाती है, मुख से नहीं उठाई जाती। चबाने की क्रिया मनुष्य ही कर सकते हैं, दूसरे नहीं। 'हम चने चबाते हैं' 'घोड़ा चने खाता है' 'हम पान चबाते हैं' पर 'गधा पान (लतापत्र) खाता' ही है। मनुष्य के लिए 'पान खाता है' कहना ग्राम्यता है ' करोति खादनं पानम्' (काव्य-दीपिका)। कई एक आचार्य तो 'रेवड़ियां भी खाते हैं और चने भी खाते हैं'। यदि चने भीगे हुए हों तो खाए भी जा सकते हैं। 'चने खाता है' का तो अर्थ है कि वह चनों के अतिरिक्त कोई दूसरा अन्न ही ग्रहण नहीं करता। 'चूहा चने कुड़कता है', यदि कुड़कनेवाली चीज भक्ष्य नहीं तो 'चूहा किताब कुतरता है'। कुछ लोग कसम भी खाते हैं। पर हमें तो शपथ करना ही शोभा देता है। कुछ लोग कभी कभी हमारे कान भी खा ही जाते हैं। यह हुआ मुहावरा=मुखावरा (मुखम् आव्रियते येन) जो मुख में फिट फैठ जाए वह। कुछ लोग नित्य जुत्तियां भी खाते हैं। यद्यपि जुत्तियां खाने की चीज नहीं; पर वे जुत्तियों को ही जलेबियां समझते हैं। कुछ लोग भय के

मारे कभी कभी सौंह भी नहीं खाते [एक बनिए के सामने दो जाट लड़ पड़े। थानेदार ने उन्हें पकड़ लिया। दोनो अपने आपको निरपराध सिद्ध कर रहे थे। एक ने कहा कि उस बनिए से पूछ लीजिए—कौन अपराधी है ? जब बनिए से पूछा गया तो वह बोला—मैंने कुछ नहीं देखा। थानेदार ने कहा—अच्छा, 'सौंह खाओ ?'। बनिए ने उत्तर दिया। आज मंगलवार का व्रत है, कुछ नहीं खाता।] वानर चने चबाता भी है और खाता भी है। कारण कि वह 'वानर' है—विकल्प से नर है। हम दही खाते भी हैं और उसमें कुछ पानी मिलाकर पीते भी हैं। हम चाय-दूध पीते भी हैं, गरम हो तो सुड़कते भी हैं (घूँट-घूँट कर पीते हैं)। बीड़ी-हुक्का आदि भी पीते ही हैं (यहां बीड़ी-हुक्के आदि के धुएँ से मतलब है)। पीने का अर्थ है—कोई चीज साँस से खींचकर गले के तले उतारना, चाहे वह तरल पदार्थ हो, चाहे धुआँ। 'सर्पाः पिबन्ति पवनं नच दुर्बलास्ते'—साँप वायु पीते हैं। वायुरूप होने के कारण कुछ लोग हमारे प्राण भी पी जाते हैं।

'चलना' नाम गति का है। आधार पर से हम 'उठते हैं' सटी हुई चीज से एक ओर 'हटते हैं' यदि इसमें शीघ्रता हो तो 'दौड़ते हैं'। यदि यह क्रिया भय के कारण हुई हो तो 'भागते हैं'। यदि यही क्रिया आकाश में हो रही हो तो 'उड़ते हैं'। यदि वेग-पूर्वक अपने को आगे की ओर फेंकें तो 'कूदना' कहा जाएगा 'यदि ऊपर की ओर कूदें तो 'उछलना'। यदि यही क्रिया हम किसी दूसरे से (उस पर बैठकर या पीछे-पीछे चलकर) कराएँ तो 'चलाना' होगा। रथ, गाड़ी, मोटर, साइकिल आदि में या पर बैठकर उन्हें चलाते हैं। पर 'हल' पीछे-पीछे चलकर ही चलाते हैं। यदि हम पीछे न होकर किसी को अपनी ओर चलाएँ तो 'खींचना' होगा। बैल हल खींचते हैं, इञ्जन गाड़ी खींचता है, कभी कभी हम भी कोई न कोई चीज खींच ही लेते हैं, खाट-कुरसी आदि। वैद्यलोग 'अर्क' भी खींचते हैं। यदि हम अपनी ओर न खींचकर इसके बिलकुल विपरीत क्रिया करें तो 'ढकेलना' होगा। मोटर बिगड़ जाने पर थोड़ी दूर हम उसे ढकेलकर ले जाते हैं। कुली लोग लाइन पर गाड़ी के डब्बे प्रायः ढकेलते ही रहते हैं। उसी प्रकार 'होना' और 'रहना' में भी अन्तर है। 'होना' केवल सत्ता सूचित करता है, 'रहना' सत्ता के साथ-साथ भिन्नता भी द्योतित करता है।

क्रियाओं से शब्द बनते हैं। जब क्रियाओं का ही अर्थ ठीक ठीक ज्ञात नहीं, तब उनसे बननेवाले शब्दों का अर्थ ठीक ठीक कैसे ज्ञात हो सकता है। इसलिए आपको पुस्तक-माला स्थापन करनेवाले, गौरव उन्नत करनेवाले, चन्दा संकलित करनेवाले तो बहुत मिलेंगे, परन्तु प्रकाशित, अर्जित और जमा करनेवाले कम।

आँख, घड़ा, गिलास आदि फूटते हैं, हाथ टूटता है, कागज फटता है, कपड़ा फटता भी है और कटता भी। हाथ से फाड़ते हैं और कैंची से काटते हैं। इसी प्रकार घुमाना और मोड़ना में, चखना और खाना में, गिरना और पड़ना में, छोड़ना और त्यागना में, तानना और खींचना में, टोकना और चिड़ाना में, कहना और बतलाना में, घोटना और घोंटना में, लेटना और लोटना में, खोसना और खोंसना में, फूकना और फूँकना में, खपना और समाना में, खोदना और उखाड़ना में, ठोकना और जड़ना में, बढ़ाना और लम्बा करना में, भूलना और भुलाना में, गँवाना और निछावर करना आदि में भी अन्तर है।

रामचन्द्र वर्मा का मत है कि—(क) परीक्षा में उत्तीर्ण ही हुआ जाता है, परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की जाती। (ख) ग्रन्थ की रचना ही होती है, निर्माण नहीं। (ग) धनुष ताना ही जाता है, खींचा नहीं।

पर (क) 'सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कवर्तके केशवे' में तो पाण्डवों ने नदी ही उत्तीर्ण की है। यदि विद्यार्थी लोग भी परीक्षा-रूपी नदी उत्तीर्ण कर लें तो क्या आपत्ति ?

(ख) तार्किक चक्र—चूड़ामणि श्रीविश्वनाथजी तो 'निज-निर्मित-कारिकावली मतिसंक्षिप्त-चिरन्तनोक्तिभिः' में 'निजनिर्मित' ही लिख रहे हैं। यदि कुछ अतार्किक लोग भी ऐसा लिख जाएँ तो क्षन्तव्य ही समझने चाहिए।

'एव मिमे सर्वे वेदा निर्मिताः (गोपथ ब्रा. पू. २।१०।)

'निर्माय ग्रन्थनिचयम्' (कस्यचित् प्राचीनकवेः)।

'निर्माय नूतनमुदाहरणाय काव्यम्' (पण्डितराज जगन्नाथ

(ग) 'धनुष खींचा नहीं जाता' लिखकर तो वर्मा जी ने सन्देह में डाल दिया है। जब कि हिन्दी साहित्य के सूर्य गोस्वामीजी 'राम रमा-पति कर धनु लेहू—खैंचहु मोर मिटै सन्देहू' में धनुष खिचवाकर ही परशुरामजी का सन्देह मिटा रहे हैं।

श्री वर्मा जी ने 'खींचना' का लक्षण किया है कि 'खींचना में समतल पर किसी चीज को अपनी ओर बलपूर्वक लाने का भाव होता है' पर यह ठीक नहीं। कारण कि प्रतिदिन हम पीने के लिए कुएँ में से पानी खींचते हैं। फल खाने के लिए कभी कभी किसी ऊँचे वृक्ष की टहनी भी नीचे की ओर खींच लेते हैं। 'कूएँ में से पानी निकालते हैं' का तो अर्थ होगा कि कूआँ गन्दा हो गया है, पानी निकालकर उसे साफ करते हैं। हम लोग बाएँ से दाएँ और दाएँ से बाएँ तथा नीचे से ऊपर की ओर

और ऊपर से नीचे की ओर लकीर खींचते ही रहते हैं। इसी प्रकार अध-खिली कलियां कभी कभी हमारा मन भी खींच ही ले जाती हैं और बात बात पर खाल खींचनेवालों की भी कोई कमी नहीं। आप भी 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में **पीना**—तमाकू गाँजे आदि का धूआँ मुंह में खींचकर बाहर निकालना ही बतला रहे हैं। '**उच्छ्वास**' ऊपर को खींचा हुआ साँस' इन उदाहरणों में समतल वाली कोई बात नहीं। '**उद्भिज्ज**—वृक्ष, लता, या गुल्म जो भूमि को फोड़कर निकलता है' फोड़ना क्रिया तो सावकाश (अन्दर से पोली) वस्तु पर स्वयं उसके बाहर रहकर किसी साधन द्वारा की जाती है। जैसे—पत्थर से बादाम फोड़ता है, ईंट से घड़ा फोड़ता है और हाथ से गिलास तथा चूड़ियां फोड़ता है आदि। सावकाश न होने के कारण शीशा तोड़ा ही जाता है फोड़ा नहीं। इस लिए 'फोड़कर' के स्थान पर 'भेदकर' होना चाहिए, अथवा—जो भूमि में से 'फूटकर' निकलता है, लिखना चाहिए। '**उखाड़ना**—किसी जमी या गड़ी हुई वस्तु को हटा कर अलग करना'। 'हटाकर' के स्थान पर 'निकाल कर' होना चाहिए। हटाने और निकालने में बहुत अन्तर है। **ईख**—शर जाति की एक घास जिसके डंठलों में मीठा रस रहता है' के स्थान पर 'होता है' होना चाहिए। 'होना' और 'रहना' में अन्तर हम पीछे बता आए हैं। '**ईंट**—ढला हुआ मिट्टी का चौकोर टुकड़ा' में 'ढला' के स्थान पर 'पथा' होना चाहिए। 'ढलना' और 'पथना' तथा 'ढालना' और 'पाथना' में महान् अन्तर है।

आइए, दूसरे लोगों के उदाहरणों की भी कुछ बानगी देख लीजिए—एक स्थान पर लिखा है कि 'कहीं रेल गाड़ियाँ लड़ गईं' राम ! राम !! यह तो महान् अनर्थ हो गया। यह प्रवृत्ति रोकनी ही होगी। क्योंकि आज तो 'गाड़ियाँ' ही लड़ी हैं, कल साइकिलें भी झगड़ेंगी और इनकी देखा-देखी मोटरें भी कभी न कभी जरूर हाथा-पाई कर बैठेंगी।

'पुलिस तथा गाँववालों में काफी देर तक गोलियों का आदान-प्रदान होता रहा' (हिन्दुस्तान)। ठीक है, स्कूल की याद आ गई होगी, क्योंकि छुट्टी के समय छोटे-छोटे बच्चे खांड की हरी, पीली और लाल गोलियाँ दूकानदार से बार-बार बदलाते रहते हैं। एक समाचार का शीर्षक था 'पुलिस तथा गाँव वालों की भिड़न्त' ओहो ! बेचारों के सींग टूट गए होंगे। भिड़ने की क्रिया सिर से ही होती है। गाड़ी के इन्जन भी भिड़ते नहीं टकराते हैं। कभी कभी मनुष्यों में भी मुठभेड़ हो ही जाती हैं, 'भेड़' नहीं। जहाँ केवल 'भिड़' धातु का प्रयोग होता है, वहाँ लेखक या वक्ता का भाव उनका अनौ-

चित्य प्रगट करना होता है। जैसे—दिल्ली ने कहा—'यह बात करनी होगी' तो लखनऊ ने कहा—'यह बात करना होगा' भाव यह है कि दोनो भिड़ गए...' प्रकृत उदाहरण में ऐसा कोई भाव नहीं। केवल 'शीर्षक जोरदार बनाने के लिए ऐसा लिखा गया है। जीवन में हम एक ही काम सब कामों से अधिक करते हैं। क्या ? किवाड़ों का भिड़ना। वे भी दिन में बीसों बार भिड़ते हैं और बीसों बार खुलते हैं। 'अच्छी हिन्दी' में तो किवाड़ भी बन्द ही होते हैं।

"जिन्होंने स्वातन्त्र्य-युद्ध में अपने प्राण गँवाए हैं, श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। (हिन्दुस्तान १४-४-४६) भले ही दूसरों ने उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पित की हों, पर आपने तो उन्हें 'प्राण गँवाएँ कहकर सोलह आने बुद्धू बना दिया। अब मैं यह प्रकरण और उदाहरण देकर अधिक करना नहीं चाहता। इसलिए क्रियाओं का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए।

क्रियाओं का ज्ञान ही सबसे सूक्ष्म विषय है। इनका ज्ञान हो जाने पर इनसे बननेवाले शब्दों का ज्ञान स्वयं हो जाता है। हम तो बैठते ही हैं, पर कभी हमारा दिल भी बैठता है। हम तो रोते ही हैं और कभी कभी हमारा दिल भी रोता है। बस, दिल बैठना, दिल रोना, मुहावरा—(वाग्धारा या मुखावरा) बन गया। जब ऐसे ऐसे शब्द हमारे मुख पर चढ़ जाते हैं तो हम उन्हें मुहावरा (मुखावरा) कहने लग जाते हैं। 'मुँह पर चढ़ना' भी तो एक मुहावरा ही है। 'लोकोक्तियाँ और मुहावरे' आपने देख ही लिए होंगे। पर आप कितनी भी पुस्तकें पढ़ डालें, जब तक आपको क्रिया का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं तब तक आपको 'ज्ञानं भारः क्रियां विना' ही है!

———

६

"वाक्यं स्यात् योग्यताऽऽकाङ्क्षाऽऽसत्ति-युक्तः पदोच्चयः"

यहाँ तक हम शब्द, अर्थ, लिंग, विभक्ति, विशेषण, क्रिया आदि तो सीख आए हैं। पर अभी तक ये सब पद ही पद हैं। इनसे हमारा कोई विशेष अभिप्राय या विचार प्रगट नहीं होता। अपने भाव ठीक-ठीक प्रगट करने के लिए हम इनमें एक मेल बैठाते हैं। यही मेल 'अन्वय' या 'अन्विति' कहलाता है। अन्वय या अन्विति का अर्थ ही अनु=विचारों के अनुसार, अय=पदों का बैठना है। पदों का सम्बन्ध के अनुसार अन्वय कर देने पर भी हमारी आकांक्षा शान्त नहीं होती। 'राम का घोड़ा' कहने पर भी यह आकांक्षा बनी ही रहती है कि 'वह है, या गया' 'दौड़ता है या लोटता है' 'सुन्दर या असुन्दर' आदि। जब हम इनमें से कोई एक क्रिया का प्रयोग कर देते हैं; तब हमारी आकांक्षा शान्त हो जाती है। अर्थात्—हमारा कोई-एक भाव या विचार ठीक-ठीक प्रगट हो जाता हैं। अब इसे 'वाक्य' कहेंगे। वाक्य विचारों के प्रतिनिधि होते हैं। वाक्य ही भाषा का मुख्य अंग हैं।

'राम खाता है' 'राम पढ़ाता है' कहने पर भी हमारी यह जानने की आकांक्षा रहती है कि 'राम क्या खाता है ?' और किसको पढ़ाता है ? जो इस क्या और किसको का उत्तर हो, वह कर्म होता है। जैसे 'राम रोटी खाता है' 'राम देव को पढ़ाता है'। 'रोटी' और 'देव' कर्म हैं। जिस क्रिया के सम्बन्ध में 'क्या' और 'किसको' प्रश्न न हो सके वह 'अकर्मक' होती है। जैसे—राम सोता है, आदि। कभी कभी कर्ता, कर्म, और क्रिया के होने पर भी आकांक्षा बनी रहती है। जैसे—'मैंने राम को समझा'। क्या ? 'पण्डित'

'राम है' क्या ? 'विद्वान्'। सकर्मक क्रियाओं के योगी ऐसे शब्द 'कर्मपूरक' और अकर्मक क्रियाओं के योगी ऐसे शब्द 'कर्तृपूरक' कहलाते हैं। ऐसा व्याकरणों में लिखा रहता है। वास्तव में ये भी विधेय-विशेषण ही हैं।

जो क्रिया करे वह 'कर्ता', जिस पर क्रिया का फल पड़े वह 'कर्म', जो क्रिया में सहायता करे वह 'करण', जिसके लिए क्रिया की जाए वह 'सम्प्रदान', जहाँ से पृथक् हुआ जाए वह 'अपादान', जिसके साथ कोई नाता हो 'सम्बन्ध' और आधार तो 'अधिकरण' है ही।

कर्ता में (० या ने), कर्म में (० या को); करण में (से), सम्प्रदान में (को, के लिए, आदि), अपादान में (से), सम्बन्ध में (का, के, की, रा, रे, री) और अधिकरण में (में और पर) विभक्ति चिह्न लगते हैं।

जिसमें एक क्रिया हो वह 'वाक्य' होता है। 'है राम पढ़ता पुस्तक' में एक क्रिया तो है। पर यह 'वाक्य' नहीं। कारण कि इसमें अन्विति नहीं। यह नियम है कि साधारण अवस्था में पहले कर्ता फिर कर्म और अन्त में क्रिया आती है। जैसे—'राम पुस्तक पढ़ता है' आदि। 'राम आग से सींचता हैं' में एक क्रिया तथा अन्विति तो है, पर यह 'वाक्य' नहीं। कारण कि आग में सींचने की योग्यता ही नहीं।

'राम, घोड़ा, लड्डू, पूड़े और गांधी हैं' में एक क्रिया तथा अन्विति तो है, पर यह वाक्य नहीं। क्योंकि इसमें हमारी सुनने की आकांक्षा ही नहीं। यह तो केवल पागलों का-सा प्रलाप है।

'राम पुस्तक' एक-दो घंटे के बाद बोल दिया 'पढ़ता है' तो भी यह वाक्य नहीं होगा। क्योंकि इसमें आसत्ति (निकटता) नहीं। सारांश यह निकला कि 'जिसमें योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति वाले कर्ता कर्म करण आदि हों वह वाक्य होता है'।

वाक्य तीन प्रकार के होते हैं १—साधारण वाक्य, २—मिश्र वाक्य और ३—संयुक्त वाक्य। साधारण वाक्य में केवल एक उद्देश्य और एक विधेय होता है। जैसे 'घोड़ा दौड़ता है' घोड़ा 'उद्देश्य' है और दौड़ता 'विधेय' है। मिश्रवाक्य में एक प्रधान बात होती है और दूसरी गौण 'गोपाल कहता है कि भानु आज स्कूल नहीं गया'। यहाँ 'गोपाल कहता है' प्रधान बात है और 'भानु आज स्कूल नहीं गया' गौण। संयुक्त वाक्य में प्रधान बातें भी कई हो सकती हैं। जैसे 'मैं तो सो गया और वह बैठा-बैठा अपना पाठ याद करता रहा' आदि। आपने इनके अवान्तर भेद व्याकरण में देख ही लिए होंगे।

गड़बड़ तो तब होती है जब एक ही वाक्य में कर्ता, कर्म, करण आदि आ जाते हैं। साधारणतः यह नियम है कि पहले कर्ता फिर अधिकरण, अनन्तर अपादान, सम्प्रदान, करण और कर्म आते हैं। जैसे—'सीता वन में कुटिया से रावण के लिए हाथों से कन्द-मूल-फल लाई'। यदि अनेक अधिकरण आ जाएँ तो कालवाची अधिकरण पहले रखना चाहिए, जैसे—'वसन्त में वन-उपवन में फूलों की बहार है'' ये डाकू दिन में जंगलों में छिपे रहते हैं' आदि।

प्रश्नवाचक 'क्या' और 'कौन' जिसके विषय में पूछा जा रहा हो उसी के पहले आते हैं; जैसे—क्या मोहन गाता है?' 'मोहन क्या गाता है?' 'वह कौन आदमी है?' 'वह आदमी कौन है?' 'क्या' और 'कौन' का स्थानान्तरण कर देने से अर्थ में भी भेद हो गया है। जो जो जिस जिस कर्ता,कर्म करण आदि से सम्बन्ध रखता हो वह उसी के पहले रखा जाता है। नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसे—'उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न इलासुत पुरूरवा के पुत्र और शत्रुओं की आयु का संहार करने वाले आयु का यह बाण है' बताइए—उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न पुरूरवा है?

यह बात बोलचाल की साधारण अवस्था के सम्बन्ध में कही गई है। पर जब किसी बात पर जोर देना होता है या उसकी प्रधानता दिखानी होती है तब वही आगे-पीछे रखी जाती है। ऐसा करने से वाक्य का सारा क्रम (ढाँचा) ही बदल जाता है। जैसे—

कर्ता के पहले क्रिया—'जाना था' मुझे और गया वह। कर्ता के पहले पूर्व कालिक क्रिया—विद्वानों की संगति में 'रहकर' मूर्ख भी विद्वान् हो जाते हैं ऐसे स्थलों पर पूर्व-कालिक क्रिया कारण के अर्थ में आती है। (रहकर=रहने के कारण)।

कर्म के पहले क्रिया—मैंने 'बुलाया' एक को और 'आ गए दस'।

कर्ता के पहले कर्म—'मोहन को' मैं नहीं पहचानता।

कर्ता के पहले करण—'छुरी से' उसने टहनी काटी।

कर्ता के पहले सम्प्रदान—'आप के लिए' मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

कर्म के पहले सम्प्रदान—तुम 'बच्चों को' यह फल देना।

कर्ता के पहले अपादान—'घर से' ललुआ भागा तो सही, पर उसकी माता ने उसे पकड़ लिया।

सम्बन्ध के पहले सम्बन्धी—ये 'पुस्तकें' मेरी हैं। अपराध 'किसी का' और कोई दण्ड भोगे।

कर्ता के पहले अधिकरण—'मुंडेर' पर कबूतर हैं। 'तुझ में' शक्ति कहाँ! कर्म के पहले क्रियाविशेषण—वह 'भलीभाँति' रामायण पढ़ सकती है। विशेष्य के पहले विधेय-विशेषण—'चालाक' तो वह है ही। इसी प्रकार प्रयोगानुसार अन्य परिवर्तन भी समझ लेना चाहिए।

वाक्यों में होनेवाली व्याकरण-सम्बन्धी विशेष-विशेष भूलें और उनका सुधार—

१—हम लिख जाते हैं कि 'उन्होंने बैल, घोड़े और हाथियों के व्यापार से बहुत धन कमाया' यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि 'और' अव्यय, वाक्यों तथा शब्दों का समुच्चय करता है। जहाँ शब्दों का समुच्चय करता है वहाँ 'व्यस्त द्वन्द्व' होता है। जहां 'और' का लोप हो जाता है वहाँ 'समस्त द्वन्द्व' होता है। द्वन्द्व के अन्त में जो शब्द होता है उसका प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है। ऊपर के उदाहरण में 'व्यस्त द्वन्द्व' है और उसके अन्त में 'के' शब्द है, 'हाथियों' के साथ तो वह ठीक बैठ जाता है। पर 'बैल' और 'घोड़े' के साथ ठीक नहीं बैठता। क्योंकि 'बैल' और 'घोड़ा' शब्द का बहुवचन 'बैलों' और 'घोड़ों' होता है। इसलिए लिखना भी 'बैलों, घोड़ों और हाथियों के व्यापार से' चाहिए। यदि वस्तुतः एक बैल, एक घोड़ा और बहुत हाथी हैं तो 'बैल' 'घोड़े' लिखना ही ठीक होगा। यह तो हुई व्यस्त द्वन्द्व की बात। अब लीजिए समस्त द्वन्द्व की। समस्त द्वन्द्व में 'और' कभी नहीं आता। जैसे 'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सब भगवान् के प्यारे पुत्र हैं'। पर कभी कभी हम संक्षेप करने के लिए द्वन्द्व के अन्त में 'आदि' भी रख देते हैं। इसी के आगे विभक्ति चिह्न आते हैं और यह ज्यों का त्यों अविकृत रहता है 'व्याकरण आदि की टीका' (व्याकरण आदियों की टीका नहीं)। 'उर्वशी और चित्रलेखा आदि आकाश मार्ग से इन्द्रपुरी को चली गईं' 'यह पुकार मेनका, रम्भा और सहजन्या आदि अप्सराओं की थी' आदि वाक्यों में और अशुद्ध है, लुप्त होना चाहिए।

२—व्यस्त द्वन्द्व की अन्तिम क्रिया एकवचन में रखनी चाहिए या बहुवचन में? स्त्रीलिङ्ग में या पुलिंग में?

इस विषय में रामचन्द्रजी वर्मा का मत है कि 'वस्तुतः अन्तिम क्रिया का वचन वही होना चाहिए; जो उससे ठीक पहले आई हुई संज्ञा का हो' (लक्षण में यदि 'उससे' के स्थान पर 'उसके' होता तो और स्पष्टता आ जाती) लक्षण बिलकुल ठीक है। पर उदाहरणों के विषय में कुछ आवश्यक निवेदन करना है। उदाहरण—(१) उसके पास दो गौएँ और एक

घोड़ा है। (२) महाराज के साथ दो दासियां और पद्मावती भी थी। (३) राम और सीता आईं। भाषा की प्रकृति के अनुसार हम कह सकते हैं कि द्वन्द्व में (चाहे वह व्यस्त हो चाहे समस्त) छोटे शब्द ही पहले आते हैं। यद्यपि हम सब जानते हैं कि पहले फूल आता है और बाद में फल। फिर भी सब यही कहते हैं कि 'तुम फलते-फूलते रहो' या 'तुम खूब फलो और फलो'। क्योंकि 'फूल' से 'फल' की एक मात्रा कम है, हलका है। दस तक तो छोटी संख्या होने के कारण उच्चरित क्रम ही लिया जाता है। जैसे—'एक दो', आठ-नौ, पाँच-छह,। पर दस संख्या के बाद लाघव पर ही ध्यान दिया जाता है। दस-बीस, बीस-तीस आदि की तरह हम 'पचास-सौ' नहीं कहते 'सौ-पचास' कहते हैं। क्योंकि 'सौ' बड़ी संख्या होते हुए भी लघु है=वजन में कम है। इसलिए–'गौएँ' और 'घोड़े' की मात्राएँ बराबर होने पर भी एक होने के कारण 'घोड़ा' ही पहले आएगा (१) उसके पास एक घोड़ा और दो गौएँ थीं) दूसरे उदाहरण में तो 'पद्मावती' को बाद में रखकर दासियों से भी निकृष्टतर बना दिया गया है। वह तो रानी है और एक है, पहले ही बैठेगी। (२) महाराज के साथ पद्मावती और दो दासियां भी थीं 'राम और सीता आईं' लिखकर तो 'पितु र्दशगुणं माता गौरवेणाऽतिरिच्यते' को बिलकुल आँखों से ओझल कर दिया है। 'सीता और राम आए' ही ठीक है। कहते तो आप भी यही हैं कि 'ऐसे अवसरों पर पहले उसी चीज का नाम होना चाहिए, जो एक हो; और तब उन चीजों का जिक्र होना चाहिए, जो एक से अधिक हों'। इसलिए—'तीन झोपड़ियाँ और एक खेमा जल गए' या 'तीन खेमे और एक झोपड़ी जल गई' न रहकर 'एक खेमा और तीन झोपड़ियाँ जल गईं' या 'एक झोंपड़ी और तीन खेमे जल गए' ही कहना चाहिए।

३—हिन्दी में एक और प्रकार की भूल हो जाती है, जो संस्कृत में नहीं होती। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कृदन्ती कर्ता के आगे 'ने' चिह्न आता है और अकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता के आगे यह चिह्न नहीं आता। जब हम किसी एक ही वाक्य में सकर्मक और अकर्मक का गठ-जोड़ कर देते हैं; तब यह भूल हो काती है। जैसे—'जलूस कचहरी गया और वहाँ प्रदर्शन किया' 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और कहा'। इन दोनो उदाहरणों में 'और' के वाद 'उसने' सर्वनाम अवश्य आना चातिए। कारण कि 'करना' और 'कहना' क्रियाएँ सकमर्मक हैं। अथवा—'वह वहाँ जाकर बैठ गया और बोला' होना चाहिए।

४—व्याकरण का यह नियम है कि पूर्वकालिक क्रिया का कर्ता और गणी

क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न भिन्न नहीं। जैसे 'राम रोटी खाकर पाठशाला गया'। इसमें 'खा' और 'जा' धातुओं का कर्ता राम ही है, कोई दूसरा नहीं, इसलिए यह वाक्य शुद्ध है (जब क्रिया पर जोर देना होता है तब 'कर' के स्थान पर 'करके' लगाते हैं)। पर

(क) 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़के की मृत्यु हो गई' में दबता 'लड़का' है और होती है मृत्यु। इसलिए 'दबकर' के स्थान पर 'दबने से' होना चाहिए।

(ख) 'स्वतंत्रता लड़कर मिलेगी' में 'लड़ता' कोई है और मिलती 'स्वतन्त्रता' है। इसलिए 'लड़कर' के स्थान पर 'लड़ने से' होना चाहिए।

(ग) 'आँसूगैस छोड़कर उपद्रवी पकड़े गए' में 'छोड़े' कोई और जाते हैं और 'पकड़े' कोई और। इसलिए 'छोड़कर' के स्थान पर 'की सहायता से' होना चाहिए। अथवा—

(क) 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़का मर गया' एवं 'हम स्वतन्त्रता लड़कर ही लेंगे' होना चाहिए। संस्कृतवाले भी 'विष्णुचरणोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते' प्रतिदिन रटते रहते हैं, जो महान् अशुद्ध है। क्योंकि इसमें कर्ता 'जन्म' है, वह चरणोदक नहीं पीता।

५—एक ही प्रसंग में तू, तुम, मैं, हम, आप, आदि में से जिस शब्द का पहले प्रयोग किया हो, बाद में भी उसी का प्रयोग करना चाहिए, इसके विपरीत लिखना अशुद्ध है, जैसे– 'गुरुजी ने कहा कि यदि तूने फिर शरारत की तो मैं तुम्हें दण्ड दूँगा और तुम्हारे पिता को लिख दूँगा कि मनोहर हमारी आज्ञा नहीं मानता'। होना चाहिए 'गुरुजी ने कहा कि यदि तूने फिर शरारत की तो मैं तुझे दंड दूँगा और तेरे पिता को लिख दूँगा कि मोहन मेरी आज्ञा नहीं मानता।

६–'दो दिन के बाद' 'दो दिनों के बाद' आदि प्रयोग शुद्ध ही हैं। एक पक्ष में समास कर दिया है। दूसरे पक्ष में नहीं किया। समास में 'दो-दिन के बाद' इस प्रकार मिलाकर लिखना चाहिए। 'बहुत स्थानों पर' ऐसा देखा गया है कि 'स्थान' के आगे बहुवचन आता है। पर 'बहुत-सी जगह पर' नहीं भी आता। एवं—दर्शन, प्राण, आँसू, हस्ताक्षर आदि शब्द नित्य बहुवचनान्त हैं और इनका प्रयोग भी बहुवचनान्त ही होना चाहिए। पर 'जोड़ा' दो होने पर भी एकवचनान्त होता है। इसलिए लिखते समय इन बातों के ध्यान के साथ-साथ योग्यता, आकांक्षा, और आसत्ति युक्त पदों का भी ध्यान रखना चाहिए। नहीं तो वाक्य का कुवाक्य बन जाएगा।

———

१०

"किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्"

यदि हम पूर्व निर्दिष्ट मार्ग पर चलें और छोटे-छोटे साधारण (सरल) वाक्य लिखें तो अशुद्धियों के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। जब हम अपनी स्वाभाविकता छोड़कर दूसरों की नकल करने लग जाते हैं; तब हम उपहसनीय बन जाते हैं। स्वाभाविकता भी तो एक स्वतन्त्र अलंकार है। क्या कारण है कि किसी छोटे बच्चे को देखते ही हमारा मन नाच उठता है? यही तो कि उसमें स्वाभाविकता है, अकृत्रिमता है और सरलता है। इसीलिए हम उसे गोद में लेने के लिए लपक पड़ते हैं। यदि हमारा कोई बाह्य वेश या पद ऐसा करने में प्रति-बन्धक हो तो भी हम उसके खिले वदन पर मुख या हाथ लगाकर अपनी हार्दिक वत्सलता प्रगट कर ही जाते हैं। यह है स्वाभाविकता जो अलंकार ही नहीं सब अलंकारों की माँ भी है।

(चित्र में) पञ्चम जार्ज तथा उनकी पत्नी मेरी के साथ बैठे हुए राष्ट्रपिता गांधी जी, देशबन्धु मालवीय जी और भारतकोकिला सरोजिनी जी कैसी सुशोभित हो रही हैं। गांधीजी का वेश हमारे पूर्वजों की स्मृति ताजी कर देता है। मालवीय जी के ललाट पर लगा हुआ चन्दन का तिलक उन्हें भारत का तिलक ही बना देता है। यदि कहीं वे अपने गले पर नकटाई लगा या बाँध लेते तो भारत का नाक ही कट जाता और सरोजिनी जी की साड़ी ने तो आजकल की तितलियों को बिलकुल ही नगण्य बना दिया। इसलिए हमें अपनी स्वाभाविकता का सदा ध्यान रखना चाहिए।

यह बात दूसरी है कि पुराने जमाने की हमारी बूढ़ियां काम कम करने के लिए अपना कान-नाक और शरीर जगह जगह से बिंधा और गुदवा लेती

थीं, तथा अलङ्कारों से लदी रहती थीं। पर आज की हमारी देवियां तो अधिक काम करने के लिए अपने मस्तक पर एक लाल बिन्दी, कानों में हलके काँटे और हाथों में एक-एक चूड़ी ही अलं समझती हैं। पहले हमारी भाषा भी अलङ्कारों से अवश्य लदी हुई होती थी। पर आज तो उसने अपने सब कृत्रिम अलङ्कार उतारकर दूर फेंक दिए हैं। वह अब स्वाभाविकता की की ओर बढ़ रही है। इस स्वाभाविकता की दौड़ में हमारी लड़कियाँ तो इतनी आगे बढ़ गई हैं कि उनमें कुछ ही कमी रह गई है; नहीं तो गार्गी बनी ही पड़ी हैं। यह भी खुशी की बात होगी कि हम स्वतंत्रता की तरह अपना पुराना वैदिक काल भी अपनी आँखों देखते चलेंगे।

मेरी राय में नए लेखकों को अलङ्कारों के फेर में नहीं पड़ना चाहिए। अलङ्कार तो कहने की शैलियों का नाम है। अलंकार स्वयं आते हैं, लाए नहीं जाते। जहाँ हम उन्हें लाने की चेष्टा करते हैं। वहीं हमसे भूलें बन जाती हैं। 'उन लोगों को कुत्ते की तरह घसीटा गया' क्या जिस तरह कुत्ता किसी मुर-दार को घसीटता है, उस तरह ? अथवा 'जिस तरह मरे कुत्ते को घसीटते हैं उस तरह' ? पहला अर्थ तो हमारे अभिप्राय से बहुत ही दूर जा पड़ता है। दूसरा इसलिए ठीक नहीं कि नियम है 'उपमा में उपमान और उपमेय की समान संख्या (यदि हो) और समान लिंग होता है'। उपमेय (लोग) तो बहुत हैं, पर उपमान (कुत्ता) एक ही है। अतः होना चाहिए 'कुत्तों की तरह'। पर 'उन सब स्त्रियों के मुख चाँद के समान है' में 'चाँदों के' नहीं हो सकता। क्योंकि लोक में चाँद एक ही प्रसिद्ध है।

उपमा अलंकार सब से सुगम और सबसे कठिन है। यह एक ही अलंकार नट की तरह वेश बदल कर भाषा में बार-बार आता रहता है। जब हम इसके स्थान पर कोई दूसरा अलंकार बैठा देते हैं; तब अलंकारविद् हमारी इस अज्ञता पर हँस देते हैं।

"किंसुक मुकुल सुजान जिय परत भौंर शुक तुण्ड।
सोऊ जामुन भ्रांतिसों गहन चहत अलिमुण्ड ॥"

यह भ्रांतिमान् अलंकार का उदाहरण है।

'भ्रांतिमान्' अलंकार में द्रष्टा को अवश्य हँसी आती है और उसमें भ्रांति, आशंका आदि कोई शब्द नहीं होना चाहिए। देखिए—

एक दिन कनुआ भैया मक्खन चुराने के लिए एक गोपी के घर में जा घुसे। घर में कोई नहीं था, जा बैठे सरकार आसन पर और लगे मक्खन उड़ाने। खाते भी जाते हैं और साथ-साथ इधर-उधर ताकते भी जाते हैं।

अचानक सामने के शीशे पर दृष्टि जा पड़ी। जिसमें निज का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा। बस, गुड़ गोबर बन गया। लगे सोचने—गोपी इसे मक्खन की रखवाली के लिए यहाँ बैठाकर चली गई है। यह गोपी को बतला देगा, गोपी मैया से कह देगी और मैया मुझे खूब मारेगी-पीटेगी। हाय ! मुझे अब क्या करना चाहिए ? चतुर—शिरोमणि तो हैं ही, लगे उससे मित्रता गाँठने।

'लो' मित्र ! तुम भी मक्खन खाओ, हम-तुम एक-से ही तो हैं, हमारी तुम्हारी खूब पटेगी। आज से हम-तुम साथ-साथ चोरी करने जाया करेंगे। (लो, खाओ, उसके मुख पर मक्खन लगाते हैं, पर मक्खन नीचे गिर जाता है)। प्यारे ! तुम रूठ क्यों गए, थोड़ा है तो और ले लो। देखो मित्र ! मैं तुम्हारी 'हा हा' खाता हूँ और तुम्हारे पाँव पढ़ता हूं। गोपी को नहीं बताना, गोपी मैया से कह देगी और मैया मुझे मारेगी-पीटेगी और हौए-वाली अँधेरी कोठड़ी में बन्द कर देगी'।

गोपी एक ओर छिपी-छिपी यह सारी लीला सुन और देख रही है। बताइए, गोपी के मुख पर क्या होगा ? मुस्कराहट।

दूसरा उदाहरण—तीन यात्री जा रहे थे। एक था नाई, दूसरा था वैज्ञानिक और तीसरा था गंजा। जंगल में उन्हें रात पड़ गई। वैज्ञानिक ने समय विभाग बनाया कि दस से बारह तक नाई, बारह से दो तक मैं और दो से चार तक गंजा पहरा देगा। थके तो थे ही, सो गए। नाई जागता रहा। उसे भी झपकी आने लगी। उसे एक युक्ति सूझी। उसने अपना उस्तरा लिया और वैज्ञानिक का सिर तरबूज जैसा बना दिया। गरमी का समय था। ठंडे पानी के स्पर्श से वैज्ञानिक और भी गाढ़ निद्रा के वश हो गया। इतने में पहरे का समय भी हो गया। नाई ने उसे जगाया और कहा साहब ! उठिए अब मैं सोता हूँ। साहब उठे मुँह और सिर पर हाथ फेर कर बोले 'ऊँह ! नाई बहुत ही मूर्ख है समय था मेरा और जगा दिया गंजे को'।

३—छोटा बच्चा तालाब के किनारे बैठा-बैठा एक लड्डू खा रहा था। आधा खा लिया था। आधा पानी में गिर गया। पानी में बच्चे ने हाथ मारा तो लड्डू नहीं मिला। बच्चे ने सोचा, हैं ! यहां दिखाई तो कोई दे नहीं रहा। फिर लड्डू कौन ले गया ? हो-न-हो, कोई पानी में जरूर बैठा होगा। जब वह पानी में औंधा झाँका तो उसे एक बच्चा दिखाई दिया। लड़का रोता-रोता अपने बाबे के पास गया और बोला—बाबा, वहाँ एक लड़का बैठा है, उसने मेरा लड्डू छीन लिया। बूढ़ा

गुस्से में भरकर तेजी से उसे डाँटने के लिए गया। जब बूढ़े ने पानी में देखा तो उसे बच्चे के स्थान पर एक बूढ़ा दिखाई दिया। बूढ़ा बोला–"तेरे मुंह पर सफेद दाढ़ी आई है। तुझे शर्म नहीं आती, बच्चे के साथ ठिठौली करता है।

४—वातानुकूलित शौचालय के किबाड़ पर शीशा जड़ा हुआ था। एक भाई साहब, पेशाब करने के लिए शौचालय की ओर गए। क्या देखते हैं कि एक आदमी उसमें खड़ा है। वे लौट आए। जब जब वे वहां गए तब तब उन्होंने उसे वहीं खड़ा पाया। पेशाब का जोर, गुस्से का जोर, स्टेशन पर रेलगाड़ी रुकते ही वे गार्ड के पास गए और बोले देखिए साहब, एक ऐसा बेवकूफ आदमी टट्टी में घुसा है कि निकलता ही नहीं। गार्ड बोला—चलिए अभी मैं उसे पुलिस के हवाले करता हूँ। जब गार्ड ने देखा–दाढ़ी मूछ है, काली टोपी एवं काला कोट वे पहने हुए है तो गार्ड बोला–यह रेलवे का आदमी है इसे हम कुछ नहीं कह सकते।

आप इसे अलंकार मानें या न मानें। हमें इससे कोई मतलब नहीं। पर जैसा विषय हो वैसी भाषा भी होनी चाहिए और उसमें स्वाभाविकता का होना परम आवश्यक है। जैसे–हम छोटे बच्चों को 'लला या ललुआ', बराबर वालों को 'श्रीमान्' और बड़ों को 'आप' बोलते हैं, वैसे ही लिखना भी चाहिए। यह विषयान्तर है कि कुछ लोग 'तांगेवाले ! दुपट्टा उड़ा जाय रे, भी बोलते-फिरते हैं।

मतलब यह कि भाषा स्वाभाविक तथा शुद्ध होनी चाहिए। स्वाभाविकता तथा शुद्धता अलंकारों का भी अलंकार है। जिस स्त्री की नाक बहती हो और शरीर पर मन मन मैल जमी हो तो उस पर अलंकार क्या शोभा देंगे ? वनवासिनी शकुन्तला ने वल्कल के अतिरिक्त दूसरा कौन-सा अलंकार धारण किया था ? जिससे अनेक अलंकृत रमणियों से सेवित दुष्यन्त भी यह कह ही उठा कि 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' अर्थात् वह कौन-सी चीज है, जो स्वाभाविक सुन्दर लोगों के सम्पर्क में आकर मण्डन (अलंकार) नहीं बन जाती ? अर्थात् सभी बन जाती हैं।

———

११

"वाक्याऽपकर्षका दोषाः"

जो किसी प्रकार से हमारे वाक्यों का महत्त्व कम कर दें वे दोष कहलाते हैं। पहले हम जितने उदाहरण दिखा आए हैं, वे सब-के-सब दोष-युक्त हैं। पर वे सब एक तरह के नहीं। यदि हम उनका अलग-अलग नाम रखना चाहें तो इस प्रकार रख सकते हैं।

१—च्युत-संस्कारता

व्याकरण की दृष्टि से किसी पदका अशुद्ध होना 'च्युत-संस्कारता' दोष है। व्याकरण सम्बन्धी स्खलनवाले सभी पद या वाक्य इसके उदाहरण हैं। प्रायः नए लेखकों की भाषा में यही दोष सब से अधिक आता है। वे लोग व्याकरण देखे बिना ही अपनी मनमरजी से प्रयोग घड़ते चले जाते हैं। जैसे—

१—'मैंने रो दिया'।
२—'मैंने हँस दिया'।
३—'मैंने सो दिया'।
४—'मैंने जाग दिया'।
१—मैंने बढ़ा।
६—मैंने डर गया।

७—'मैं मर लिया, आदि अशुद्ध प्रयोग हैं। कारण कि अकर्मक धातुओं के बाद सकर्मक धातु का प्रयोग नहीं होता। 'मर' 'रो' 'हँस' आदि अकर्मक धातुओं के बाद सकर्मक 'दे' धातु का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किंतु अकर्मक 'जा' 'पड़' आदि का ही प्रयोग करना चाहिए। सकर्मक धातु के

भूतकालिक रूप के प्रयोग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है। इसलिए 'मैं रो पड़ा' 'मैं हँस पड़ा' 'मैं जाग पड़ा या जाग गया' 'मैं डर गया' 'मैं मर चुका' आदि होना चाहिए 'मैं मर लिया' लिखना या बोलना अशुद्ध है। क्योंकि अकर्मक 'मर' धातु के बाद सकर्मक 'ले' धातु का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

'राम ने खाना है' 'राम ने जाना है' रूप अशुद्ध हैं। क्योंकि योग्यता इच्छा आदि अर्थक 'खाना' 'जाना' आदि के योग में कर्ता में 'को' चिह्न आता है। यह 'को' उपपद चतुर्थी का है।

'भगवान् का स्मरण करके पुनर्जन्म नहीं होता' लिखना और बोलना गलत है। क्योंकि 'कर' या 'करके' आदि कृदन्ती प्रयोग का तथा गणी क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। यहां स्मरण का कर्ता मनुष्य है तथा 'हो' धातु का कर्ता जन्म है। अतः अशुद्ध प्रयोग है। होना चाहिए—'स्मरण करने से'। 'मैं खाना खाकर पाठशाला जाऊँगा' लिखना-बोलना शुद्ध है। क्योंकि जो 'खा' धातुका कर्ता है वही 'जा' धातु का कर्ता है।

२—अवाचकता

जब हम कोई ऐसा शब्द रख जाते हैं; जो हमारा मनोनीत अर्थ प्रगट नहीं करता, तब 'अवाचकता' दोष आ जाता है। जैसे—

१—पूजो देश के धवल चरण।

२—अपने भावों को सुन्दर ढंग से सुन्दर भाषा में प्रकट करने का नाम ही 'लेखन कला' है। आदि।

यहां 'धवल' शब्द 'पवित्र' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर 'धवल' शब्द पवित्रता का वाचक नहीं। अतः 'अवाचकता' दोष है। 'सुन्दर भाषा में' सुन्दर शब्द 'शुद्ध' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर 'सुन्दर' शब्द 'शुद्धता' का वाचक नहीं। यह दूसरी बात है कि शुद्ध वस्तु में भी सुन्दरता रहे। 'टट्टी घर' सुन्दर तो हो सकता है, पर 'शुद्ध' नहीं। अतः इसमें उक्त दोष है।

३—पुनरुक्ति

जब एक ही वाक्य में कोई शब्द दो बार आ जाता है, या एक अर्थ के वाचक दो शब्द आ जाते हैं, तब 'पुनरुक्ति' हो जाती है (शब्द-पुनरुक्ति और अर्थपुनरुक्ति)। शब्द-पुनरुक्ति के कुछ उदाहरण—

१—आपमें जिन 'आवश्यक' गुणों की 'आवश्यकता' है।

२—मुसलमान 'लोगों' में जो 'लोग' अत्यंत धर्मपरायण थे।

३—दो वर्षों के 'बीच' भारत और ब्रिटेन के 'बीच' जो कटुता हुई है।

४—इस 'प्रकार' वह अनेक 'प्रकार' के बहाने बनाने लगा।

५—यही वे **कारण** हैं जिनके **कारण** हैदराबाद में अशान्ति बढ़ रही है।

६—भारत सरकार ने एक **आदेश** निकाल कर उन्हें यह **आदेश** दिया है।

अर्थ पुनरुक्ति—

१—**इधर आजकल** यह देखने में आ रहा है।

२—**सारे** देश **भर** में यह बात फैल गई।

३—मैं **पूरी** शक्ति **भर** यह काम करूँगा।

४—**सिवा** आपको **छोड़कर** कोई ऐसी बात नहीं कहता।

५—उसके मनकी **थाह** का **पता** नहीं चलता।

६—किसी **और दूसरे** आदमी को वहाँ भेजो।

७—इससे **मर्यादा** की **सीमा** टूट गई।

८—आप अपनी **ताकत के बल** पर यह काम करना चाहते हैं।

९—**लेकिन** (परन्तु या पर) **फिर भी** मैं आपकी बात मान लूँगा।

१०—मैं आज **प्रातः काल के समय** वहाँ गया था।

११—वे **परस्पर एक दूसरे** को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।

१२—वह इस बात की **व्यवस्था** का कोई **प्रबन्ध** नहीं कर सकता।

१३—हमारे **तरुण नवयुवकों** की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध नहीं।

१४—**कृपया** यह बतलाने का **अनुग्रह** करें।

१५—उन्हें अपने **अहंकार** का **गर्व** है।

१६—उन्हें **मृत्युदंड की सजा** मिली है।

१७—यह एक ऐसा कार्य है जो मुझ से **सम्भव** नहीं **हो सका।**

१८—यह काम **क्योंकर** और **कैसे** हुआ?

१९—**व्यर्थ** रुपए देने से कोई **लाभ नहीं**?

२०—इसके **बाद फिर** यह हुआ।

२१—थोड़ी देर बाद वे **वापस लौट** आए।

२२—वे सब काल **चक्र के पहिए** के नीचे पिस गए।

२३—वहाँ **प्लेग** के **खतरे** का डर है।

लड़ाई-झगड़ा, धन-दौलत, मार-पीट, भगदड़, आदि प्रचलित शब्दों में यह दोष नहीं होता।

जहाँ उद्देश्य-प्रतिनिर्देश्य-भाव हो; वहाँ शब्द परिवर्तित नहीं करने चाहिए—

१—१० **मनुष्य** मरे और १७ **आदमी** घायल हुए।

२—आपकी बुद्धि ठीक **राह** छोड़कर गलत **रास्ते** पर चलने लगी है।

३—चालाक लोग काम पड़ने पर **गधे** को भी बाप बना लेते हैं और काम हो जाने पर बाप को **खर** समझने लगते हैं।

दोनो स्थानों पर दोनो शब्दों में से एक एक ही शब्द रखना चाहिए।

पहले उदाहरण में यदि 'इधर' शब्द को देश का वाचक मान लें एवं कालका वाचक न मानें, नवम उदाहरण में 'लेकिन' शब्द को अस्वीकारार्थक मान लें तथा सोलहवें उदाहरण में 'मृत्यु-दण्ड और सजा' में भेद की कल्पना कर लें (जैसे–सोमवार के दिन आऊँगा) तो पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाएगा।

४—भग्न-प्रक्रमता

जब हम किसी वाक्य का आरम्भ एक प्रकार से करते हैं और समाप्ति किसी दूसरे प्रकार से ; तब यह दोष वाक्य में आ जाता है। जैसे–

१–'मैं आप को यह पत्र लिख रहा हूँ उसका कारण यह है'। 'यह' शब्द से उठाया है और 'वह' शब्द से समाप्त किया है। इसलिए वाक्य दूषित हो गया। 'उसका' के स्थान पर 'इसका होना चाहिए, या 'यह' के स्थान पर 'जो'।

२–'मैंने आप को वह पत्र, जो उस रूप में लिखा था, इसका कारण यह था कि...' 'इसका' नहीं 'उसका' होना चाहिए।

३–'हम लोगों का कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके गरीबों की सहायता की जाए' में 'हम' उत्तम पुरुष से वाक्य आरम्भ हुआ है और उत्तम पुरुष से ही समाप्त होना चाहिए। 'हम लोगों का कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके गरीबों की सहायता करें' आदि।

५--अधिक पदता

जहाँ जिस पद के निकाल देने पर भी अर्थ में कोई कमी न आए, वहाँ उस शब्द के रहने पर 'अधिक-पदता' दोष हो जाता है। जैसे–

१–इस काम के लिए वही आदमी जाना चाहिए जो **किसी समय** इस पद पर रह चुका हो।

२–वे अपनी प्रतिज्ञा **के शब्दों** पर दृढ़ रहें।

३–आप ऐसी बात कह रहे हैं जिसका **कि** मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था।

४–यह ऐसा सिद्धान्त है जिसकी **कि** सत्यता निश्चित है ।

५–आप चाहें यहाँ रहें **और** चाहे वहाँ जाएँ ।

६–या तो आप बैठे रहें **और** या आप चले जाएँ ।

७–एक घर जो खाली पड़ा था, **उसे** जला कर राख कर दिया गया ।

८–कुछ पशु खेती के काम में आने के सिवा **वे** धर्म की दृष्टि से भी पूज्य हैं ।

९–उसकी अवस्था इतनी खराब हो गई है कि **उसे** कहा नहीं जा सकता अथवा **वह** कही नहीं जा सकती ।

११–उसकी आवाज कान में सुनाई पड़ी । 'कान में' या 'सुनाई' होना चाहिए ।

११–वह **खाने पीने के** व्यंजन बनाने में मदद दे रही थी ।

१२–तुम कभी तीज-त्यौहार पर भी नहीं आते **हो** ।

१३–मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता हूँ ।

१६–साहित्यिक रचना **(भी)** इस नियम का अपवाद नहीं **है** ।

गुजराती में 'नहीं को 'नथी' बोलते हैं और 'है' को 'छे' । मुझसे एक व्यक्ति ने पूछा कि 'शास्त्री जी ! मारी चोपडी अहियां छे ? (मेरी पुस्तक यहाँ है ?) मैंने उत्तर दिया 'नथी छे'=नहीं है । सुननेवाले सब हँस पड़े । अनन्तर सोचते सोचते मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि 'नहीं' के साथ 'हो' धातु के वर्तमान तथा विध्यर्थक रूप नहीं आने चाहिए । हाँ, भूत और भविष्यत् आ सकते हैं । जैसे—'वह वहाँ नहीं था' 'वह वहाँ नहीं होगा । आदि । जैसे 'हां या ना' 'हो न हो' तो होता है । पर 'ना या हां' 'न हो हो' नहीं होता । वैसे—'है नहीं' तो हो सकता है । पर 'नहीं है कभी नहीं हो सकता ।

६ न्यूनपदता

जहाँ जिस पद की जरूरत हो वहाँ उसे न रखना 'न्यूनपदता' दोष होता है । जैसे—

१—'देश की जितनी दुर्दशा हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी' में 'आज' पद न्यून है ।

२–'संस्कृत में जो स्थान वाल्मीकि की रामायण का है, वही तुलसीकृत रामायण का भी है' । 'हिन्दी में' पद न्यून है ।

३–'तुम्हारे भाई ने कल घर पर जो किया था वही तुम कर रहे हो' । 'यहाँ आज' पद न्यून है ।

४—'वहाँ जंगली फल और झरने का पानी पीकर हम आगे बढ़े' में फल के आगे 'खाकर' होना चाहिए।

७ संदिग्धता

जिस वाक्य में कर्ता, कर्म आदि का निश्चय न हो सके वहाँ 'संदिग्धता' दोष होता है।

१—'प्रधान अध्यापक लड़के चुनेंगे'। प्रधानाध्यापक लड़कों को चुनेंगे ? या लड़के प्रधानाध्यापक को चुनेंगे ? संदिग्ध है।

२—'अमेरिका भारत को जर्मनी से दूना अन्न देगा'। अमेरिका जितना अन्न जर्मनी को देगा, उससे दूना ? या जर्मनी भारत को जितना अन्न देगा, उससे दूना ? संदिग्ध है।

३—'वह बैल के मारने से मर गया'। बैल ने मारा इस लिए मर गया ? या बैल की हत्या के पाप से मर गया ? संदिग्ध है।

४—'श्रीहित-हरिवंश जू के प्रशंसात्मक छप्पय की टीका'। क्या वह छप्पय हित-हरिवंश जी का बनाया हुआ है ? या उनकी प्रशंसा में किसी दूसरे ने बनाया है ?

५—यह ऐसी पुस्तक है जिसे सब को देखना चाहिए। पुस्तक सब को देखे ? या पुस्तकको सब देखें ? संदिग्ध है।

८ विरोधिता

जहाँ एक ही वाक्य में दो विरोधी पदार्थों को रख दिया जाए वहाँ 'विरोधिता' दोष होता है।

१—**तब शायद** काम **जरूर** हो जाएगा।

२—**प्रायः** ऐसे अवसर आते हैं जिनमें लोगों को **कभी कभी** अपना मत बदलना पड़ता है।

३—वे बिलकुल **चुप** हैं और **कहते** हैं कि हम इस झगड़े में नहीं पड़ेंगे।

४—आज-कल इसका प्रचार बहुत **अधिक कम** हो गया है।

५—यह चीज सपने में भी **मिलना दुर्लभ** है।

[चौथे उदाहरण में 'अधिक' और 'कम' को अन्योन्य विरुद्धार्थक माना है। परन्तु 'अधिक' शब्द यहाँ संस्कृत के 'तर' प्रत्यय का वाचक है। इसे किसी के साथ जोड़ दें उसी की उत्कृष्टता प्रगट कर देगा। जैसे—'लघुत्तर=अधिक छोटा 'बृहत्तर'=अधिक वड़ा। हमारे मत से इसमें दोष नहीं।]

९--गर्भितता

किसी पद या वाक्यांश को अपने स्थान पर न रखकर दूसरे पदों के बीच जा रखना '**गर्भितता**' दोष कहलाता है। जैसे—

१–इस लाठी से जितने तेरे हिमायती हैं, उन सब के सिर फोड़ दूँगा। (तेरे जितने हिमायती हैं, उन सब के सिर इस लाठी से फोड़ दूँगा)।

२–यह कह कर मैंने जितने आदमी दूकान में बैठे थे, उन सब को देखा। (यह कह कर मैंने उन सब आदमियों की ओर देखा जो उस दूकान पर बैठे थे)।

३–हम उनका मुँह उन्हें सौ-रुपए देकर बन्द करना चाहते हैं। (हम उन्हें सौ रुपए देकर उनका मुंह बन्द करना चाहते हैं)।

४–उन लोगों ने जिस समय मैं बात कर रहा था, शोर मचाना शुरू किया। (जिस समय मैं बातें कर रहा था उस समय उन लोगों ने शोर मचाना शुरू किया)

५–रास्ते में लेटरबक्स में मैंने जो पत्र लिखा था, वह छोड़ दिया। (मैंने जो पत्र लिखा था, वह रास्ते में लेटरबक्स में छोड़ दिया) आदि।

१०--समाप्त-पुनरात्तता

वाक्य पूरा हो जाने पर क्रिया के बाद कोई फिर शब्द बैठा देना, 'समाप्त-पुनरात्तता' दोष है। जैसे—

१–हम और तुम चलेंगे, साथ में।

२–मैं आजकल पुस्तक पढ़ रहा हूँ, अच्छी।

३–इतना पण्डितों की सेवा में उपस्थित किया गया, थोड़े में।

४–अन्यत्र सन्धि करना न करना ऐच्छिक है, लिखने में।

११--विधेयाविमर्श

वाक्य में पहले अनुवाद्य (उद्देश्य) और बाद में विधेय होता है। अथवा जिस बात पर जोर देना हो वह पहले रखी जाती है। जब इसके अनुसार वाक्य नहीं होता तब उसमें 'विधेयाविमर्श' दोष हो जाता है।

१—आप जहाँ तक हो सके इस बात का प्रयत्न करें। (जहाँ तक हो सके आप इस बात का प्रयत्न करें)।

२—मैंने जबतक सम्भव था, तबतक उन्हें कष्ट नहीं दिया)। (जब तक सम्भव था, तबतक मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया)।

३—वह अभी कहीं बैठ पाया नहीं। (वह अभी कहीं नहीं बैठ पाया)।

४—एक दिन बुड्ढे होने पर कूए पर बैठा था। (बुड्ढे होने पर एक दिन कूए पर बैठा था।)

५—यह बात हृदय से सम्भव है वे न मानें। (सम्भव है यह बात वे हृदय से न मानें।)

६—उसके पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने गोविंद से पूछा। (गोविन्द के पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने उससे पूछा।) सर्वनाम सदा संज्ञा के बाद ही आते हैं, पहले नहीं।

अंग्रेजी ढंग के कारण भी यह दोष आ जाता है।

१–न केवल यही बल्कि वे वहाँ से चले भी आए। (यही नहीं, बल्कि वे वहाँ से चले भी आए।)

२—यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा, ऐसी हमें आशा है। (हमें ऐसी आशा है कि यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा।)

३–आप कल वहाँ जाएँगे, ऐसा मैं समझता हूँ। (मैं समझता हूँ कि कल आप वहाँ जाएँगे।)

४–वह समय काम निकालने का होने से मैं चुप रहा। (वह समय काम निकालने का था, इसलिए मैं चुप रहा।)

५–हम वहाँ नहीं गए थे, क्योंकि उन्होंने हमें नहीं बुलाया था (उन्होंने हमें नहीं बुलाया था, इसलिए हम वहाँ नहीं गए)।

६–'उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया' का तो यही अर्थ होगा कि मुकदमा किसी दूसरे पर चलाया गया है, उस पर नहीं। इसलिए 'उस पर' होना चाहिए।

७–पूर्व इसके कि कोई हँसे हम स्वयं हँस पड़ते हैं। (किसी के हँसने से पहले हम स्वयं हँस पड़ते हैं।)

८–बिना किसी की सहायता के यह काम नहीं हो सकता। (किसी की सहायता के बिना यह काम नहीं हो सकता।)

९–इसके बदले कि आप यहाँ आएँ मैं ही आपके यहाँ आऊँगा। (आपके यहाँ आने के बदले मैं ही आपके यहाँ आऊँगा।)

१०–अच्छा हो कि आप पुस्तकें दे दें। (आप पुस्तकें दे दें तो अच्छा हो।)

१२--ऊँटहिलोरा

जिसके उच्चारण करने में ऊँट के हिलोरों का-सा धक्का लगे, वह 'ऊँटहिलोरा' दोष होता है। जैसे—

१—आजकल के स्कूलों के नवें-दसवें दरजों के विद्यार्थियों के हित के लिए।

२—बोल-चाल या समझ के क्षेत्र के बाहर के हैं।

३—वह परकीया जो अपने प्रिय के मिलन के स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी हो।

४—दैनिक समाचार पत्र के साप्ताहिक संस्करण के सम्पादक मण्डल के एक उत्साही सज्जन के दिमाग में यह बात आई।

५—इतने में कोई चमक कर आकर धक्का देकर निकल गया, आदि।

एक ही वाक्य में कोई प्रत्यय दो से अधिक बार नहीं आना चाहिए। यदि इनके बीच में 'और' आ जाए तो भी यह दोष नहीं होता। क्योंकि 'और' के आ जाने से हमारी जीभ को कुछ आराम मिल जाता है।

इसलिए हमें अपने वाक्य सदा इन दोषों से बचाते रहना चाहिए। क्योंकि ये वाक्यों का महत्व कम कर देते हैं।

———

१२

"वाच्या दोषा गुरोरपि"

अध्ययन करना दूसरे की आँखों देखना है और मनन करना अपनी आँखों। इसलिए विद्यार्थियों के मनन के लिए मैं उन निबन्धों की भाषा के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ, जिनके सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने कहा है कि "**यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो 'निबन्ध' गद्य की कसौटी है। खेद है कि समास शैली पर ऐसे विचारात्मक निबन्ध लिखनेवाले–जिनमें बहुत ही चुस्त भाषा के भीतर एक पूरी अर्थ-परम्परा कसी हो–अधिक लेखक हमें न मिले'** (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)। आइए थोड़ा मनन कीजिए–

१–'बड़े बड़े सूक्ष्य भावों का अभिव्यञ्जन कर देती है' 'बड़ा और 'सूक्ष्म' दो पारस्परिक विरोधी पदार्थ हैं। फिर तेज और अन्धकार को एक साथ कैसे बैठा दिया? इसके स्थान पर होना चाहिए 'सूक्ष्म से सूक्ष्म' भावों का।

२–'दोनों प्रकार के निबन्धों के बीच की रेखा बड़ी क्षीण है' में भी ऊपरवाली बात है।

३–'बड़े सुन्दर नीति के दोहे लिखे हैं' में प्रश्न होता है कि वह कौन-सी छन्दः पुस्तक है, जिस में बड़े दोहों का लक्षण आता है? हमने तो सभी दोहे चौबीस चौबीस मात्राओं के ही देखे हैं। यदि 'बड़े' को सुन्दर का विशेषण मान लिया जाए तो भी उद्धार नहीं। क्योंकि सुन्दरता में बड़ा-छोटापन नहीं होता। भले ही उसमें न्यूनाधिकता का भाव होता हो।

४–'गाजर-मूली की तरह नष्ट होते नहीं देख सकते' नष्ट (नाश) में सदा अदर्शन का ही भाव रहता है। यहाँ तो गाजर-मूली के टुकड़े स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसलिए 'कटते नहीं देख सकते' होना चाहिए।

५–'चित्रलेखा आदि कुशल चित्रकर्त्रियों का......' में अपनी ओर से तो पुनरुक्ति से बचने की पूरी पूरी चेष्टा की गई। पर एक दोष के स्थान पर दूसरे दो दोष आ ही गए। पहले तो 'चित्रकर्त्रियों' में 'श्रुतिकटु' दोष है। दूसरे—चित्रों का 'अंकन' 'लेखन' या 'बनाना' ही होता है। 'करना' नहीं। इसलिए 'अवाचकता' दोष है। 'आज चमेली में न चन्द्रकिरणों से चित्र बनाऊँगी' की तरह कहना या लिखना शोभा देता है। 'चित्रकार' शब्द की ओर मत देखिएगा। वह तो अब चल पड़ा है। उसमें की खटक दूर हो गई है। यहाँ तो 'चित्र-लेखा आदि कुशल लेखिकाओं का' लिखने में ही कुछ लावण्य है, तथा लकारानुप्रास भी। 'चित्रकार' की देखा-देखी 'कहानीकार' लिखना भी ठीक नहीं। क्योंकि कहानी या तो लिखी जाती है या कही जाती है, की नहीं जाती।

६–'काव्य का अध्ययन निरापत्तिजनक है' में भी दो विरोधी भाव एक-साथ आ गए हैं। 'निर्' अभाव का वाचक है और 'जनक' भाव का। फिर एक वाक्य में ही नहीं, एक ही पद में दोनों का गठ-बन्धन कैसा ? दूसरे यदि 'निरा' के साथ सवर्णदीर्घ मान लिया जाए तो अर्थ का ही अनर्थ हो जाएगा। इसलिए इसके स्थान पर छोटा, हलका और अभ्रामक 'निरापद' पद ही लिखा जाना चाहिए।

७–'हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं' में के 'स्त्री' शब्द ने किस की व्यावृत्ति की ? कौन-सी विशेषता पैदा की ? केवल व्यर्थ और अधिक है। 'लेखिकाएँ' तो स्त्रियाँ ही होती हैं, पुरुष नहीं।

८–'डाक्टर मुल्कराज, आनन्द, और सज्जाद आदि लेखक प्रवर्तक हुए' में 'और' नहीं होना चाहिए।

९–'मीरा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है' 'आदरपूर्वक' लिया जाना चाहिए।

१०–'जयशंकर प्रसाद पर पाँच ग्रन्थ लिखे गए हैं' ठीक है, भोज-पत्र पर जैसे लिखते हैं, वैसे लिखे भी जा सकते हैं। 'प्रसाद' के स्थान पर 'प्रासाद' हो तो कोई झगड़ा ही नहीं। पर यहाँ तो 'पर' का 'सम्बन्ध' या 'विषय' अर्थ मानकर काम चला लेंगे। पर

११–'हाल ही में विहारी के ऊपर एक पुस्तक निकली है'।

१२–'आधुनिक कवियों के ऊपर कई सुन्दर ग्रन्थ निकल चुके हैं'।

१३–'सूरदासजी के ऊपर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक बहुत उत्तम ग्रन्थ लिखा है' आदि में क्या करेंगे ? 'ऊपर' का तो आधार के

साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। आइए, ऊँट के हिलोरों का भी मजा लूटिए।

१४–'विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में।

१५–'गुप्तजी के राम देवताओं के हित के लिए नहीं वरन् आर्यों के आदर्शों के फैलाने के लिए अवतरित (अवतीर्ण) हुए'।

१६–'कई लोग अलंकारों को भी साधु की गाय की टाँग की भाँति लगा देते हैं।

१७–'हमको इतिहास की शुष्क भाषा की तोता रटन्त की आवश्यकता नहीं'।

१८–'तुलसीदासजी भी इन्हीं के सम्प्रदाय के बाबा नरहरिदास के शिष्य थे'।

१९–'तुलसीदासजी की स्त्री रत्नावली की कविता की भी चर्चा हो चली है' आदि में 'के' और 'की' की छटा देखते ही बनती है। यहाँ तक तो हुई बाह्य आकृति की बात। अब लीजिए, अन्तःप्रकृति—

२०–'चन्दवरदाई आदि महाकवि लेखनी के ही शूर न थे वरन् तलवार के भी वीर थे। भग्नप्रक्रमता हो गई, जिससे 'शूर' और 'वीर' भिन्नार्थक-से प्रतीत होते हैं। दोनो स्थानों पर एक ही शब्द होना चाहिए 'शूर' या 'वीर'। पुनरुक्ति से न डरिएगा, वह तो उद्देश्य-प्रतिनिर्देश्य को छोड़कर ही होती है।

२१–'समास शैली इतनी कठिन न होनी चाहिए कि रचना पढ़नेवालों को लोहे के चनों की भाँति कठिन बन जाए'। एक तो 'कठिन' शब्द की 'पुनरुक्ति'। दूसरे लोहे के चने कठिन बनते नहीं—होते ही हैं। इसलिए होना चाहिए 'रचना लोहे के चने न बन जाए'।

२२–'वह चोट ऐसी होती है जो होती तो सुनार की तरह धीमी लेकिन काम लुहार की चोट से भी अधिक करती है'। हाँ, वह सुनार अधिक बैठने के कारण धीमे-धीमे चलता होगा। होना चाहिए 'सुनार की चोट की तरह हलकी'।

२३–'सफल लक्ष्यवेध करनेवाले अर्जुन की भाँति कहानीकार भी अपनी दृष्टि को केन्द्र से बाहर नहीं जाने देता। वह चिड़िया को नहीं, चिड़िया के सिर को देखता है'। 'चिड़िया' शब्द की पुनरुक्ति। 'सफल लक्ष्यवेध करने वाले' विशेषण-वाक्य से प्रसिद्ध अर्जुन से किसी दूसरे अर्जुन की प्रतीति। अर्जुन ने चिड़िया का सिर कब काटा? 'कहानीकार' लिखना भी ठीक नहीं। होना चाहिए 'कहानी लेखक भी अर्जुन की भाँति अपनी दृष्टि लक्ष्य पर ही टिकाए रहता है, उसे मछली नहीं, किन्तु उसकी आँख ही दिखाई देती' है'।

२४--'वास्तव में सुदर्शन जी, कौशिक जी और प्रेमचन्दजी के साथ कहानी लेखकों की 'बृहत्त्रयी' में रखे जा सकते हैं'। यह तो 'बृहद्द्वयी' ही हुई। इनके रखने पर ही 'बृहत्त्रयी' होगी। यदि आप सुदर्शनजी को भी 'बृहत्त्रयी' में ही मान रहे हैं तो रखेंगे किसको? वे तो पहले ही उसमें विद्यमान हैं। दूसरी बात यह है कि आपको इस बृहत् को उठाने में भी कष्ट होगा। अतः इनका नाम ही रख दीजिएगा, आदि।

हमें भी लिखते समय अपनी दृष्टि चतुरस्र रखनी चाहिए। नहीं तो हमारी भाषा में भी ऐसे सैकड़ों दोष न चाहने पर भी आ जाएँगे। आशा है आज से आप अपनी माँ के पवित्रतम शुद्ध स्वरूप की रक्षा करने का व्रत ले ही लेंगे।

———

१३

नमस्तुभ्यम्

छाया मपहरति कविः, शब्दं कुकविः, पदानि तु चौरः ।
सर्व-प्रबन्ध-हर्त्रे कविताकर्त्रे नमस्तुभ्यम् ।।

एक कवि दूसरे कवि की छाया का अपहरण कर लेता है, कुकवि=क्षुद्र-कवि दूसरे कवि के शब्द का अपहरण कर लेता है तथा तस्कर कवि दूसरे कवि के पदों का अपहरण कर लेता है। परंतु आपने तो सारे-का-सारा ग्रन्थ ही हथिया लिया। इसलिए हे कवि-पद-लांछन ! आपको बार-बार नमस्कार है।

महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक की छाया महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' नाटक में ले ली है। कालिदासने 'महाभारत' से आख्यान लिया और भवभूति ने 'वाल्मीकि रामायण' से। जैसे शकुन्तला परित्यक्ता होकर कश्यप के आश्रम में शरण लेती है; वैसे ही सीता भी परित्यक्ता होकर वाल्मीकि के आश्रम में शरण लेती है। जैसे वन में दुष्यन्त को अपनी पत्नी की प्राप्ति से पहले अपने पुत्र भरत की प्राप्त होती है; वैसे ही वन में राम को भी अपनी पत्नी की प्राप्ति से पहले अपने पुत्र लवकुश की प्राप्ति होती है। परित्यक्त जनों को साधु लोग सदा शरण देते आए हैं। यह हुआ 'छाया' का अपहरण। अस्तु—

मैं अपने आपको राष्ट्रभाषा का पतंजलि मानता हूँ। परंतु मासिक पत्र-पत्रिकाओं के बहुत-से वाक्य मेरी समझ में नहीं आते। इसका मैं कारण ढूँढ़ रहा था कि डा० बदरीनाथ कपूर की 'आजकल की हिन्दी' नामक पुस्तिका मेरे हाथ लग गई। इससे विदित हुआ कि ये सब तो हिन्दी के

प्रत्ययों की पोशाक पहने हुए अंग्रेजी के ही वाक्य हैं। अच्छा! यह बनारसी साड़ी पहने क्रीतक-हृदय-विलासिनी लन्दन-निवासिनी गौरांगना है जो भारत की बिन्दीरूप हिन्दी का स्थान छीनना चाहती है। जिसके लिए आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल ने हार्दिक चिन्ता व्यक्त की है—

"मासिक पत्रिकाओं में बहुत-से लेखों को उठाकर देखिए तो उनमें व्याकरण की अशुद्धियाँ भरी मिलेंगी। हमारे सुयोग्य सम्पादक-गण यदि इस ओर ध्यान दें तो मुझे विश्वास है कि यह बुराई दूर हो सकती है। खैर, यह बुराई तो दूर हो जाएगी। पर हमारी भाषा का स्वरूप ही विकृत करने वाली एक प्रवृत्ति बहुत भयंकर रूप में बढ़ रही है—वह है अंग्रेजी के चलते वाक्यों और मुहावरों को शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद करके रखना। 'दृष्टिकोण' 'प्रकाश डालना' आदि तक तो खैरियत थी। पर जब उपन्यासों में इस तरह के वाक्य भरे जाने लगेंगे; जैसे—

(१) उसके हृदय में अवश्य ही **एक ललित कोना** होगा जहाँ रतन ने स्थान पा लिया होगा।

(२) वह उन लोगों में से न था जो **घास को थोड़ी देर भी अपने पैरों तले उगने देते हैं।**

तब हमारी भाषा अपना कहाँ ठिकाना ढूँढ़ेगी।"

('चिन्तामणि' दूसरा भाग, पृष्ठ २३६)।

यह विषय व्याकरण की अपेक्षा भी अधिक महत्त्व का है। इसलिए मैं ऐसी भूलों से सावधान करने के लिए 'आजकल की हिन्दी' का कुछ अंश साधिकार उद्धृत करता हूँ।

"तीस-पैंतीस वर्ष पहले की बात है। पं० केशवप्रसाद मिश्र किसी आधुनिक कवि की कविता के चरण 'मेरे जीवन के अन्तिम पाहन' का आशय समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पास गए और उनसे पूछा* "महाराज, यह क्या है?"

* 'मिश्रजी गए और उनसे पूछा' के स्थान पर 'मिश्रजी गए और उनसे पूछने लगे' अथवा—'मिश्रजी गए और उन्होंने उनसे पूछा' होना चाहिए। कारण कि अकर्मक धातुओं के भूतकालिक प्रयोग में कर्ता में विभक्ति चिह्न नहीं आता, परंतु सकर्मक धातुओं के प्रयोग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है। इसलिए जहाँ दोनों प्रकार की धातुओं का एक साथ प्रयोग हो—एक ही कर्ता हो वहाँ ऐसी भूल हो जाती है। 'उन्होंने' शब्द का—कर्ता का—आक्षेप या अध्याहार नहीं हो सकता। क्योंकि वाक्य में कर्ता पड़ा है।

शुक्ल जी ने धीरे से कहा, 'देवता, यह प्रयोग अंग्रेजी के 'दी लास्ट माईलस्टोन ऑफ माई लाईफ' की छाया है।'

पं० केशवप्रसाद जी मिश्र की विद्वत्ता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। वे हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के भी अच्छे-खासे जानकार थे। परन्तु क्या यह आवश्यक है कि अपने वाक्यों का अर्थ लगाने के लिए हम अंग्रेजी के पण्डित ही हों? क्या हमारी सोच अंग्रेजी के ज्ञान के बिना पंगु रहेगी?

अंग्रेजी शासन-काल में अंग्रेजी के अध्यापक अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे कि यदि अंग्रेजी में लिखना चाहते हों तो अंग्रेजी में सोचो। अब आज हिन्दी लेखकों से हम कहते हैं कि यदि आप हिन्दी में लिखना चाहते हों, तो हिन्दी में ही सोचिए। हमारे अधिकतर लेखक तथा कवि विदेशी लेखकों की रचनाएँ पढ़ते हैं और उनके नए-नए विचार और नए नए प्रयोग भी आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि हमारे लेखक ऐसे नए प्रयोगों से भी प्रभावित होते हैं, जो ठीक से उनकी समझ में नहीं आते परन्तु जो आकर्षक शब्दों में सजे हुए होते हैं। हमारा विवश लेखक ऐसे शब्दों का उलथा अपने सामर्थ्य के अनुसार करता है और होता यह है कि उसकी चोरी पकड़ी जाती है। हमारे कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिनका अध्ययन-अध्यापन अंग्रेजी में ही हुआ है और जो विशुद्ध राष्ट्रप्रेम से हिन्दी में लिखने लगे हैं। ऐसे लोगों का अंग्रेजी में सोचने का अभ्यास ही बन गया है। अधिक अवस्था के कारण ऐसे लोगों का अभ्यास तो नहीं बदल सकता, फिर भी उन्हें जागरूक तो रहना ही चाहिए।

"जैसा राजा वैसी प्रजा' यह लोकोक्ति प्रस्तुत प्रसंग में भी अपनी चरितार्थता सिद्ध करती है। मुसलमानी शासन-काल में यहाँ की प्रजा मुसलमानी रंग-ढंग का अनुकरण करती रही और अंग्रेजी शासन-काल में अंग्रेजियत में अपने को रंगती रही। कुछ दुर्भाग्य ऐसा है कि मुसलमानी शासन-काल का अन्त हुए सौ से अधिक वर्ष हो गए, फिर भी अब तक हम अपनेको उसके रंग-ढंग से मुक्त न कर सके। अंग्रेजी शासन तो अभी कल की बात है और उसकी लादी तो हम स्वभावतः बहुत दिनों तक ढोएँगे ही। निश्चय ही अंग्रेजी समृद्ध भाषा है और उसके अध्येता पर उसकी छाप पड़ना भी स्वाभाविक है, परन्तु उसकी छाप हमारा आशय ही गोल कर जाए अथवा हमारी भाषा की प्रकृति को ही बिगाड़ दे, यह तो कोई बात न हुई।

हिन्दी वाटिका में सुन्दर पौधों के साथ लगे हुए परकीय झाड़-झंखाड़ भी हैं। प्रयत्न कीजिए कि ये अधिक फैलने न पाएँ और अन्ततोगत्वा कहीं हिन्दी वाटिका का रूप ही लुप्त अथवा दूषित न कर दें। यहाँ हम यह भी कहना आवश्यक समझते हैं कि हिंदीवालों की अपेक्षा अन्य भाषाभाषी अपनी-अपनी भाषा की प्रकृति की रक्षा के लिए अधिक सचेष्ट रहते हैं। प्रसिद्ध चेक लेखक स्मेकेल ने ठीक ही कहा है—'मुझे ऐसा लगता है कि हिंदीभाषी अपनी मातृभाषा से उतना प्रेम नहीं करते, जितना प्रेम दूसरे लोग अपनी मातृभाषा से करते हैं।'

अंग्रेजियत से ओतप्रोत नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं और साथ ही उनके हिंदी रूप भी दिए जा रहे हैं।

१—हमारे गृह मंत्री महोदय ने उसे ही विराम-अर्धविराम बिना बदले ज्यों का त्यों सुना दिया है।—**आज** (दैनिक)

'विराम' और 'अर्धविराम' शब्द अंग्रेजी के 'फुल स्टाप' और 'कामा' के प्रभाव के द्योतक हैं। उक्त वाक्य का हिंदी रूप होगा—बिना बिन्दु-विसर्ग बदले हमारे गृहमंत्री ने उसे ज्यों का त्यों सुना दिया।

२—प्रतिष्ठा की दौड़ से कोई भी मुक्त न था।—**दिनमान**

'रेस फार हाइ पोजीशन' के लिए सम्भवतः प्रतिष्ठा की दौड़' आया है। 'दौड़ से...मुक्त न था' भी विचित्र प्रयोग है, जो अंग्रेजी रंग में रंगा है। उक्त का बोधगम्य और बढ़िया रूप होगा—प्रतिष्ठा के लिए होड़ लगी थी।

३—उनकी अवस्था अभी तक चिंता का कारण बनी है।

—**आकाशवाणी**

उक्त वाक्य अंग्रेजी के 'इट इज स्टिल दि काज आफ एंग्जाइटी' का ही उल्था है, जिसे हिंदी में इस प्रकार सामान्यतः व्यक्त किया जाता है—उनकी अवस्था अभी तक चिंताजनक है।

४—क्या विश्वविद्यालय सामाजिक नेतृत्व देने में सफल रहे हैं?
—**धर्मयुग** (डॉ० हरिनारायण त्रिपाठी)

'नेतृत्व देना' सम्भवतः 'गिविंग दि लीड' से आया है, जो सामान्य हिंदी भाषी की समझ में आने लायक भी नहीं। 'नेतृत्व करना' ही हिंदी की प्रकृति के अनुसार ठीक होगा और वाक्य का सरल रूप होगा—क्या विश्वविद्यालय समाज का नेतृत्व कर पाए?

५—उन दिनों स्वराज्य का नाम लेना अपने आप में राजद्रोह समझा जाता था—**आकाशवाणी**

'अपने आप में' अंग्रेजी के 'इन इटसेल्फ' का अनुवाद हैं, जो हिंदी की दृष्टि से प्रायः निरर्थक है। हम उक्त वाक्य को अधिक जोरदार ढंग से इन शब्दों में कह सकते हैं: 'उन दिनों स्वराज्य का नाम लेना ही राजद्रोह समझा जाता था'।

६—जब हम मंत्रों की शक्ति का वर्णन पढ़ते हैं, तब इतने आश्चर्य-चकित हो जाते हैं कि उसे असम्भव की कल्पना कह जाते हैं।—**साप्ताहिक हिन्दुस्तान** (गोविंद शास्त्री)

'असम्भव की कल्पना' और कुछ नहीं है 'कांसेप्सन ऑफ दि इम्पासब्रिल' की ही छाया है। उक्त का सहज और स्पष्ट रूप होगा '.........कि उसे कोरी कल्पना कह जाते हैं।'

७—संसार के दूसरे छोर से गोष्ठी के समस्त सदस्यों को नमस्कार भेजता हूँ।—**डा० ब्रजमोहन**

'नमस्कार भेजना' अंग्रेजी के 'सेण्डिग ग्रीटिंग्स' की ही छाया है, जो हमारी परम्परा के अनुकूल नहीं है। उक्त के दो अच्छे रूप हो सकते हैं:—

(क)...समस्त सदस्यों को मेरा नमस्कार स्वीकार हो।

(ख)......समस्त सदस्यों को मेरा नमस्कार।

लाघव सिद्धान्त के अनुसार (ख) वाक्य अधिक उपयुक्त है।

८—तुम लोगों के यहाँ की नई गाड़ी भी इसके सामने खड़ी नहीं हो सकती।—**आज**

'खड़ी नहीं हो सकती' की जगह 'ठहर नहीं सकती' अधिक उपयुक्त तथा हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है।' 'खड़ी नहीं हो सकती' तो 'कैन नॉट स्टैण्ड' की जूठन है।

९—ताशकन्द घोषणा के बाद अब यह कोशिश की जा रही है कि दोनो दलों के बीच के सम्बन्ध बेहतर हों और पाँच अगस्त का मौसम फिर से वापस आ जाए।—**दिनमान**

जब लेखक महोदय उक्त वाक्य लिख रहे थे, तो उस समय उनके ध्यान में अंग्रजी का 'सीजन' शब्द था। 'सीजन' का एक अर्थ यह भी है—ऐसा समय, जिसमें कोई चीज बढ़ती, पनपती या फलती-फूलती हो। परन्तु 'मौसम' शब्द का आर्थी क्षेत्र इतना व्यापक नहीं, इसलिए उक्त वाक्य में वह खटक रहा है। उक्त वाक्य की खटक तभी दूर

---

* यह छाया-अनुवाद नहीं; किंतु काया-अनुवाद है।

हो सकती है, जब 'पहले के मौसम' के स्थान पर 'पहले वाला समय' अथवा 'पहले की-सी स्थिति' हो।

१०—इस भाँति जनभाषा हिन्दी के मूल को इतिहास में गहरा गया हुआ भी देखा जाता है।—**जैनेन्द्र कुमार**

क्या इतिहास में भी कोई चीज जाती है? इतिहास खोह या गुफा नहीं होता। यह वाक्य तो बिल्कुल नए सिरे से ही लिखने लायक है। अंग्रेजी के वाक्य 'इटस रूट हैंज गॉन डीप इन दि हिस्ट्री' का प्रेत ही उक्त वाक्य को चिपटा हुआ है।

११—समिति अनुभव करती है कि...वर्तमान जन-क्षोभ कोई अप्रिय मोड़ न ले ले।—**आज**

उक्त वाक्य लिखते समय लेखक के मस्तिष्क में अंग्रेजी का यह वाक्य चक्कर लगा रहा होगा—'दि प्रेजेण्ट पब्लिक एजीटेशन माइट टेक ऐन अनहैपी टर्न'। हिन्दी रूप होगा—'वर्तमान जन-क्षोभ उग्र रूप भीधारण कर सकता है।'

१२—सरकार ने इस विषय में सदन को विश्वास में नहीं लिया।—**आकाशवाणी**

'विश्वास में नहीं लिया' वस्तुतः 'डिड नॉट टेक इन टू कान्फीडेंस' का शब्दानुवाद है, जिसे बिना अंग्रेजी पढ़ा-लिखा कोई आदमी किसी तरह समझ ही नहीं सकता। हिन्दी रूप हो सकता है—सरकार ने इस विषय में सदन को विश्वास पात्र नहीं समझा।"

*

श्री साधुबेला-आश्रम के टेलीफोन के पास एक छोटी-सी पुस्तिका पड़ी थी। मैंने वह उठाई और देखी। उस पर लिखा था 'संस्थान विचार डाइजेस्ट'। मैंने यह नाम बाँचकर पुस्तिका वहीं रख दी। बीस दिन बाद मैंने फिर वही पुस्तिका उठाई [कारण कि आज भोजन में विलम्ब था, इसीलिए समय का सदुपयोग करना चाहता था] और मैं उसे बाँचने लगा। राष्ट्रभाषा-विषयक विचारों का इतना अच्छा संग्रह किया है कि सारी पुस्तिका बाँचकर ही दम लिया। इस पर लिखा है कि 'यदि हमारा राज्य अंग्रेजी में चला तो अंग्रेजी के बोझ के कारण हमारे नवयुवकों की बुद्धि, शक्ति और प्रतिभा क्षीण हो जाएगी। हमारी संस्कृति भ्रष्ट हो जाएगी। ऐसा करना प्रजा के साथ द्रोह होगा'—महात्मा गांधी।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर फड़कते हुए शीर्षक हैं। उनमें से कुछ शीर्षक ये भी हैं—

१—अंग्रेजी लादने का कुचक्र।

२—भारत से अंग्रेज गए; पर अंग्रेजियत नहीं गई।

३—अंग्रेजी शोषण और लूट का हथियार।

४—अंग्रेजी की वकालत करनेवालों से।

५—अंग्रेजी की दासता से मुक्ति आवश्यक।

६—अंग्रेजी से लगाव क्यों ?

यहाँ भाषा के अच्छे-बुरे होने का प्रश्न ही नहीं। प्रश्न तो है—भारत के प्रजाजनों के विचारों का प्रतिनिधित्व कौन-सी भाषा करती है ? किस भाषा के द्वारा हम जनता के निकट-निकटतर पहुँच सकते हैं ? कौन-सी भाषा को अधिक से अधिक लोग समझते और बोलते हैं ? वह है भारत की अपनी भाषा हिन्दी।

मेरा 'संस्थान' के संपादकों से सप्रेम पूछना है कि 'स्वाधीनता पर्व' की समर्थक इस पुस्तिका का 'विचार डाइजेस्ट' नाम उचित है ? 'जुलाई' शब्द को 'जौलाई' लिखते चले जाना क्या राष्ट्रभाषा की एकरूपता में सहायक है ?

मैंने आश्रम के मुन्शी जी से पूछा—मुन्शीजी, 'डाइजेस्ट' शब्द का क्या अर्थ है ? उत्तर मिला—'पचाना'। परन्तु मुझे यह अर्थ पचा नहीं। इसलिए डा० बदरीनाथ कपूर से पूछा—भाई, 'डाइजेस्ट' शब्द का क्या अर्थ है ? उन्होंने उत्तर दिया—'सार संग्रह'। मैंने सोचा कि 'विचार सार-संग्रह' क्या बुरा नाम है ? क्या 'डाइजेस्ट' शब्द से हमारी मानसिक पर-तन्त्रता प्रगट नहीं होती ? क्या यह अंग्रेजियत नहीं ? दासता नहीं ? लगाव नहीं ? हे ईश्वर ! हमें इस दासता से मुक्त कीजिए।

१४

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"

संसार में ज्ञान के बराबर कोई दूसरी वस्तु पवित्र नहीं—ऐसा स्वयं भगवान् ने अपने श्रीमुख से कहा है। है भी ऐसी ही बात। ज्ञान के कारण ही सब वस्तुओं का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि गुड़ सामने पड़ा हो। गुड़मारी जड़ी खाने के कारण उसमें की मधुरता का ज्ञान हमें न हो तो गुड़ गुड़ ही नहीं रहता गोबर बन जाता है। हमारे पासमें बैठे हुए अपने निकट सम्बन्धी का यदि हमें ज्ञान न हो तो वह भी पराया बन जाता है। बिना ज्ञान के प्रतीति नहीं होती। प्रतीति के बिना प्रीति की बात ही कैसी? सबसे अधिक प्रीति सबको अपने में ही होती है। क्योंकि वे सभी ज्ञान स्वरूप हैं। जो भी अपने को 'मैं' कहता है या व्यक्त वाणी के अभाव से 'मैं' का अनुभव करता है। वह ज्ञान स्वरूप ही है। 'मैं सुखी हूँ' में 'हूँ' सत्ता का वाचक है, 'सुख' आनन्द का वाचक है और 'मैं' चित् का। चित् संवित् का नाम ही ज्ञान है। हूँ=सत्, 'मैं'=चित् एवं 'सुख'=आनन्द, अर्थात् 'मैं सच्चिदानन्द हूँ' परमार्थ हो चाहे व्यवहार हो बिना ज्ञान के काम नहीं चलता। ज्ञान नित्य है। सबको सदा-सर्वदा प्राप्त है। क्यों कि जहां हम हैं या जो हम हैं वह सब ज्ञान ही है। ज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती। यदि कोई ज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध कर ही दे तो भी वह ज्ञान से ही उत्पत्ति सिद्ध करेगा। 'घड़े का ज्ञान पैदा हो गया' तथा 'घड़े का ज्ञान नष्ट हो गया' में जो ज्ञान के उत्पत्ति-विनाश प्रतीत हो रहे हैं वे भी वास्तविक नहीं। 'घड़े का ज्ञान उत्पन्न हो गया' का अर्थ है 'घड़ा हमारे ज्ञान का विषय हो गया' तथा 'घड़े का ज्ञान नष्ट हो गया' का अर्थ है कि 'घड़ा हमारे ज्ञान का विषय नहीं रहा'। इतना होने पर भी निर्भ्रान्त

ज्ञान 'शब्द' से ही पैदा होता है। शब्द भी ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं करता; किन्तु अभिव्यक्ति करता है। नित्य प्राप्त की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध होता है 'शब्द' में अचिन्त्य शक्ति है जो सोए हुए को जगा देता है। मन्त्रों के रूप में विष उतार देता है। शब्द ही जुत्तियां या जलेबियां खिलाता है।

'बातै हाथी पाँव हैं, बातै हाथी पाव"।

शब्द की इस महिमा का कारण है कि शब्द सब चर-अचर से सूक्ष्म है एवं सबसे बड़ा है। सूक्ष्म इसलिए है कि इसका बाप ही ऐसा है—न उसका स्पर्श होता है, न उसका रूप है, न उसमें रस है और न उसमें गन्ध हैं। बेटे से ही बाप की सत्ता का बोध होता है। बेटा है शब्द और बाप है आकाश। बड़ा इसलिए है कि सृष्टि के उत्पत्ति-क्रम में 'शब्द' की सबसे पहले उत्पत्ति होती है। इस सूक्ष्म और बड़े के कारण ही बड़े बड़े राष्ट्रों के झगड़े खड़े हुए हैं। केवल हुए ही नहीं, हैं और होंगे भी। शब्द की मार का कोई उपचार नहीं। यदि है तो वह शब्द ही होगा। किसी छटपटाते-तड़फते व्यक्ति को देखकर सूरशब्द के मर्मज्ञ ने पूछा—"किधौं सूर को पद लग्यो ?"। इधर देखिए—वह तो स्वयं बता रहा है—"सबद की चोट लगी मोरे मनमें–बेधि गयो तन सारा"। ऐसी दुश्चिकित्स्य चोट से बचाने के खिए प्रकृति देवी ने या भगवान् ने इस शब्द के छोड़ने का साधन भी ऐसा बनाया कि न उसमें हड्डी और न नस। फिर भी उसे बत्तीस के पहरे में रखा। उस पर भी दो किवाड़ लगा दिए। 'निगमवाणी' या 'निगम गीता' का कहना है कि

"हाड़-विहीन बिना नसके,
हरिने यह कोमल जीभ बनाई।
दाँत की पाँत में कैद बनाकर
होठ कपाट तराजू लगाई॥
कोमल बोलिए, सोच के बोलिए,
तोल के बोलिए, बोल सुहाई।
'हंस' सुवंश विनाश-करी,
इस जीभ को हाथमें राखिए भाई॥"

× × × ×

समझने-समझाने के लिए शब्द का प्रयोग अत्युत्तम साधन है। परन्तु एक ऐसा भी फिरका है जो शब्द सूंघकर उसके पेट की बात बता देता है। उसे 'पण्डितजन' कहते हैं। "अनुक्त मप्यूहति पण्डितो जनः' अभी-अभी एक पण्डित ने 'पद्म श्री' शब्द को सूंघा और बताया कि 'देखो, पद्म का

पर्याय है कमल और कमल का स्त्रीलिंग है 'कमला'। कमला थी नेहरू की धर्म पत्नी। उसकी यादगार के लिए यह 'पद्मश्री' पदवी बनाई गई।

परन्तु हमारी समझ में 'पद्मश्री' का 'अनन्तश्री' सीधा अर्थ है। क्योंकि सबसे बड़ी संख्या का नाम 'पद्म' है। 'वेदानन्द' की स्तुति-निन्दा से निगमानन्द को हर्ष-शोक कैसा? अथवा पद्म-कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। निर्मलता एवं निर्लेपता इसका गुण है। इसलिए मुख-कमल, नेत्रकमल, करकमल, चरणकमल, हृदयकमल आदि रूपों का प्रयोग होता है।

शब्द की विचित्र महिमा है। यद्यपि भगवान् ने हमें पुरुष ही बनाया था, पशु नहीं। फिर भी अंग्रेज लोग हमें पशुओं की कोटि में गिनते थे। जब पुण्यश्लोक कालिदास की 'शकुन्तला' का उन्हें पता चला तब वे हैवान तो क्या इन्सान से भी दो कदम आगे 'उत्तम इन्सान' समझने लगे। ठीक तो है, समाज और साहित्य का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। भले ही वाणी के आँखें न हों फिर भी जहाँ तक आँख नहीं देख सकती वहाँ तक यह देख लेती है। जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि और जहाँ न जाए कवि वहां जाए अनुभवी। इसलिए अनुभवियों का कहना है कि "यावन्न भाषते किञ्चित् तावच्च शोभते नरः" जब तक कोई कुछ बोलता नहीं तब तक शोभा देता है और जब बोला, तब तौला। 'क्योंकि "बेवकूफ का दिल उसकी जबान में रहता है और बुद्धिमान् की जबान उसके दिल में रहती है।" इसलिए चाणक्य ने कहा है—"बुद्धिस्तु मागान्मम"। सब लोग चले जाएँ—मेरा साथ छोड़ दें; परन्तु एक बुद्धि मेरा साथ न छोड़े। ये वे ही चाणक्य हैं जिनकी जीभ भी उनके दिल की बात नहीं जानती थी। परन्तु हम तो बात जानना और जतलाना चाहते हैं। इसलिए शब्दों के अर्थों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

'सलोना' शब्द का केवल 'सुन्दर' पर्याय देकर आगे बढ़ जाना ठीक नहीं। जहाँ वल्लभाचार्यजी "वदनं मधुरम् अधरं मधुरं" गाते-गाते नहीं अघाते। वहां गोपियां केवल 'श्याम सलोना' कह देना ही पर्याप्त समझती हैं। 'सलोना' का अर्थ है—रुचिवर्धक—जिससे कभी अरुचि ही न हो। 'मिले रहत मानो कबहूँ मिलेना' हो। माघ के शब्दों में "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति" हो—नित्यप्रति नूतन हो। वह है 'सलोना'=नमकीन।

एक विधवा महारानी ने अपने कुमार को बहुत ही लाड-प्यार से पाला-पोसा। समय आने पर वह राज्यसिंहासन पर बैठा। जब वह एक दिन माता के भवन में गया, तो माता ने पूर्व प्रसंग की—लालन-पालन की

चर्चा करने के बाद पूछा—महाराज, मुझे आप कैसी समझते हैं ? नरेश ने उत्तर दिया नमक-सी। माता ने फिर पूछा—पटरानी को कैसी समझते हैं ? नरेश बोला—मिसरी-सी। यह सुनते ही राजमाता का चेहरा उतर गया। नरेश भी समझ गए कि माँ को यह बात बुरी लगी। नरेश ने कर्मचारियों को आदेश दिया कि राजमाता को आज से बढ़िया—बढ़िया मिठाइयों के अतिरिक्त और कुछ मत देना। दो-चार दिनों के बाद राजमाता ने प्रार्थना की कि महाराज, कम से कम मेरा नमक तो बन्द मत कीजिए। नरेश ने कहा—माँ, इसीलिए मैंने कहा था कि पटरानी को मैं मिसरी-सी समझता हूँ एवं तुम्हें नमक-सी।

नमक ऐसी चीज है कि रोज रोज खाने पर भी उससे जी नहीं ऊबता। यह 'सलोना' शब्द का भाव है।

सच पूछिए तो यदि आप इस प्रकार शब्दों के पेट को टटोलने लग जाएँगे—आप अच्छे सिद्ध या खासे ज्योतिषी बन जाएँगे।

किसी राजा के यहाँ एक सत्या नाम की ब्राह्मणी भोजन बनाया करती थी। आज जब राजा साहब घूमने गए तो एक झोंपड़ी में बैठे कवि के मुख से श्लोक सुन आए। अपने भवन में आकर उसकी आवृत्ति करने लगे—

"मालती-मुकुले भाति, गुञ्जन्-मत्त-मधुव्रतः।
प्रयाणे पञ्चबाणस्य, शंखमापूरयन्निव"॥

—मालती के कुड्मलपर बैठा मत्त भौरा गुंजार करता हुआ बहुत ही शोभा दे रहा है। मानों कामदेव की चढ़ाई का शंख फूँक रहा हो।

—यह सुनते ही ब्राह्मणी बोली—महाराज, जिसने यह श्लोक बनाया है वह अन्धा है। राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कारण कि सचमुच वह कवि अन्धा ही था। दूसरे दिन राजा कवि के पास पहुँचा और बोला कि हमारे यहाँ के एक व्यक्ति ने यह श्लोक सुनते ही बता दिया कि कवि अन्धा है। कवि ने तपाक से उत्तर दिया कि 'वह विधवा है'। अब तो राजा के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। क्योंकि ब्राह्मणी बालविधवा थी। राजा ने ब्राह्मणी से पूछा—बेटी, तुमने कैसे जाना कि कवि अन्धा है ? सत्या ने उत्तर दिया—महाराज, शंख मुँह के सामने होता है, बहुत जोर लगाकर बजाएँ तो मुँह से कुछ ऊँचा हो जाता है। मालती का कुड्मल नीचे होता है और भौरा उसपर बैठता है। अन्धे के बिना आँखों वाला ऐसी भूल नहीं कर सकता। राजा के प्रश्न का समाधान हो गया। जब कवि जी से पूछा कि आपने कैसे बताया कि आपको 'अन्धा' बताने वाला आदमी नहीं, किन्तु स्त्री है और वह भी

विधवा ? कवि ने उत्तर दिया कि जन्मजात कामकला-प्रवीरा अशिक्षितपटु नारी ही होती है। जो इतनी सहृदया एवं विदुषी है—विवाहित तो होगी ही। परन्तु वह विधवा है, कारण कि उसने कभी विपरीत रति नहीं की। यदि विपरीत रति की होती तो उसके ध्यान में यह भी आ जाता कि "काम-देव के प्रयाण में कभी कभी उलट-पुलट भी हो जाता है।"

ऊरुओं को कदली स्तम्भ की उपमा देना भी किसी अवस्था-विशेष में संगत हो सकता है। नहीं तो कदलीस्तम्भ नीचे से मोटा होता है और ऊपर से पतला तथा ऊरु ऊपर की ओर मोटा होता है एवं नीचे की ओर पतला। अतः सादृश्य नहीं बनता।

× × ×

'रामचरित मानस' के रचयिता गोस्वामी बाबा तुलसीदास जी महाराज कहाकवि तो थे ही; परन्तु महान् क्रान्तिकारी भी थे। उन्होंने पहली क्रान्ति शैवों और वैष्णवों की पारस्परिक कटुता दूर करने में की। जितनी सफलता इस विषय में गोस्वामीजी को मिली है उतनी सफलता आजतक किसी भी धार्मिक एवं राजनैतिक नेता को नहीं मिली।

दूसरी क्रान्ति उन्होंने संस्कृत को हिन्दी की भाँति निर्विभक्तिक लिखने की की थी। जैसे—हिन्दी में—

"सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेहु मुनि नाथ।
हानि, लाभ, जीवन, मरण, जस, अपजस विधि हाथ॥

वैसे ही संस्कृत में—

'इति वदति तुलसीदास, शंकर शेष मुनि मन रंजनम्।
मम हृदय कन्ज निवास कुरु कामादि खलदलगंजनम्॥

'तुलसीदास' 'निवास' आदि निर्विभक्तिक रूप हैं। परन्तु संस्कृत का व्याकरण अत्यन्त सशक्त है। इसलिए यह क्रान्ति फलीभूत नहीं होने पाई।

तीसरी क्रान्ति उन्होंने अर्थव्यतिरेककी की है। उसमें वे शतप्रतिशत सफल हुए हैं। जैसे—

'सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहत न आना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर परिताप सुसन्त पुनीता॥

आदि अनेक अर्थव्यतिरेक बहुत ही चमत्कार पूर्ण हैं।

चौथी क्रान्ति उन्होंने 'य' को 'ज' एवं 'व' जो 'ब' लिखने में की। परन्तु खड़ी बोली हिन्दी ने इसमें वैज्ञानिक सुधार कर लिया। जहाँ कहीं अर्थ भ्रम नहीं होता वहाँ वैसेका वैसा संस्कृत तत्सम शब्द ले लिया जैसे—वेद, विप्र आदि। गोस्वामीजीने सर्वत्र 'बेद' 'बिप्र' ही लिखा है। तद्भव—शब्दो में खड़ी बोली ने भी 'ब' को 'व' बना लिया है। जैसे—वार्ता की बात, आदि। गोस्वामीजीने सर्वत्र 'श' को 'स' तथा 'ये' को 'ए' लिखा है। खड़ी बोली भी 'शिर' को 'सिर' 'दश' को 'दस' तथा 'गयी' को 'गई' लिखने की पक्षपाती है। क्योंकि इन वर्णों के उच्चारण में दुष्करता है—तालु से जीभ चिपटती है। गोस्वामीजी सर्वत्र 'स्थाई' 'कैकेई' आदि लिखेंगे। परन्तु खड़ी बोली संस्कृत के तत्सम शब्दों को उनके मूलरूप में लिखने का आग्रह रखती है। परंतु तद्भव शब्दों को यथाश्रुत ही लिखेगी।

पाँचवी क्रान्ति—गोस्वामीजीने आद्यानुप्रास की की है। संस्कृत में अन्त्यानुप्रास की बहुलता है। परंतु गोस्वामीजी का आद्यानुप्रास मानस में मोतियों की भाँति चमकता है। अर्थात् गोस्वामीजी आद्यानुप्रास के आद्याचार्य हैं। इनकी वाणी में जैसा शब्दसख्य, जैसी वर्णमैत्री मिलती है। वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। जैसे—

(क)

१—काई कुमति कैकेई केरी।
२—काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
३—कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।
४—किंकर कञ्चन कोह कामके।
५—जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू।
६—कहि कहि कोटिक कपट कहानी।
७—काल नेमि कलि कपट निधानू।
८—कनक कसिपु कलिकाल।
९—काम-कोह कलिमल करिगन के।

कुछ शब्दों के पारिभाषिक अर्थ

पर्यायों एवं एकार्थक-से प्रतीत होने वाले शब्दों को यों ही बैठाते नहीं चले जाना चाहिए। प्रत्येक वैद्य की रोगी-नाम-पञ्जिका में आपको यह लिखा मिलेगा 'आयु-बारह वर्ष'। परंतु 'आयु' और 'उमर' शब्द पर्याय एवं एकार्थक नहीं। 'उमर' नाम अवस्था—वय का है और 'आयु' नाम जन्म से

लेकर मरने तक के समय का है। इसलिए 'आयु' के स्थान पर अवस्था,' 'उमर' या 'वय' लिखना चाहिए। जब कोई छोटी अवस्था में मर जाए तो उसके लिए लिखना कि 'उसने छोटी अवस्था पाई थी' गलत होगा लिखना चाहिए कि 'उसने छोटी आयु पाई थी'।

भेदक का नाम 'विशेषण' है। भेदक कहिए या व्यावर्तक दोनों का एक ही अर्थ है। जैसे—'विशेषण' भेदक होता है; वैसे 'लक्षण' 'उपलक्षण' 'उपाधि' भी भेदक होते हैं। एक के स्थान पर दूसरे को नहीं रख सकते। इनकी प्रयोग भूमि पृथक् पृथक् है। भले ही ये चारो भेदक या व्यावर्तक हों।

विशेषण—सदा अपने सजातीय पदार्थों से ही व्यावर्तन करता है। अथवा जहां हम सजातीय पदार्थों से भेद दिखाना चाहते हैं वहां हम 'विशेषण' जोड़ देते हैं। विजातीय पदार्थों से व्यावर्तन—भेद करने के लिए 'विशेषण' का उपयोग नहीं होता। कारण कि जहां सम्भव और व्यभिचार हो वहीं विशेषण का उपयोग होता है। 'आग ठंडी है' कहना बनता नहीं। 'आग है' कहने में न कहीं व्यभिचार आता है। सम्भव और व्यभिचार से ही विशेषण की सार्थकता है। कई एक लड़कों में से जब हम किसी एक लड़के को बुलाना चाहते हैं तब 'लड़के को बुलाओ' इतना कह देने से काम नहीं चलेगा। कारण कि लड़के तो बहुत-से हैं किसको बुलाएँ? दूसरे लड़कों में प्रयोग का व्यभिचार होता है। 'सींगवाले' को भी नहीं कह सकते। क्योंकि 'सींग' की लड़के के सिर पर सम्भवता ही नहीं। तब 'काले लड़के को बुलाओ' ऐसा कहेंगे। 'काला' शब्द ने दूसरे गोरे लड़कों से इसका भेद कर दिया। अतः 'काला' शब्द यहां भेदक है व्यावर्तक है। दूसरों से व्यावर्तन कर दिया इसलिए। भेदक को 'विशेषण' कहते हैं। 'काला' शब्द लड़के का विशेषण है।

लक्षण—सजातीय एवं विजातीय सभी पदार्थों से व्यावर्तन करता है। गौ की अन्य गौएँ सजातीय हैं और भेड़, बकरी, भैंस, गधा आदि विजातीय हैं। जब सजातीयों से अलग करना चाहेंगे तब 'कपिला गौ को लाओ' आदि कहेंगे तथा जब भैंस, बकरी आदि से गौ मात्र को अलग करना चाहेंगे तब कहेंगे 'सास्ना=गलकम्बलवाली गौ होती है'। 'कपिला' शब्द विशेषण है तथा 'गलकम्बल' लक्षण है। लक्षण अपने लक्ष्यमात्र में घटना चाहिए। यदि लक्षण अपने लक्ष्य के एक देश में ही घटता है—लक्ष्य के एक देश को ही व्याप्त करता है दूसरे को व्याप्त नहीं करता तो लक्षण की उस कमी का नाम 'अव्याप्ति' दोष है। जब लक्षण अपने लक्ष्यमात्र में घट करके दूसरों में—

अलक्ष्य में भी चला जाता है तब लक्षण में 'अति व्याप्ति' दोष आ जाता है। जैसे—'सींगवाली गौ होती है' यह लक्षण भैंस, बकरी आदि में भी चला जाता है। जब लक्षण लक्ष्य में ही सर्वथा न घट सके तो 'असम्भव' दोष समझना चाहिए। जैसे—'एक खुरवाली गौ होती है' कहना। एक खुर गधे-घोड़े आदि के होता है। अर्थात्—जब हम सजातीय एवं विजातीय सभी पदार्थों से व्यावर्तन करना चाहते हैं तब 'लक्षण' का उपयोग करते हैं। क्योंकि लक्षण स्वरूप का बोधक होता है।

'उपाधि' भी व्यावर्तन करती है तथा विशेषण भी व्यावर्तन करता है। विशेषण साथ रह करके व्यावर्तन करता है तथा उपाधि अलग रह करके व्यावर्तन करती है। 'काले लड़के को बुलाओ' में 'काला' विशेषण है वह साथ ही आएगा। 'एक गज कपड़ा ले आओ' या 'सेरभर दूध ले आओ' में 'गज' और 'सेर' ने क्रमशः दूसरे कपड़े एवं दूध से कपड़े और दूध का व्यावर्तन तो कर दिया। पर स्वयं साथ नहीं आए। कपड़े के साथ गज या मीटर तथा दूध के साथ सेर या किलो नहीं आता। इसलिए 'गज' और 'सेर' विशेषण नहीं 'उपाधि' हैं। क्योंकि उपाधि अलग रहकर भेदक=व्यावर्तक होती है और विशेषण साथ रहकर भेदक=व्यावर्तक होता है।

'उपलक्षण' इन तीनों से थोड़ा विलक्षण है। इसे विशेषण नहीं मान सकते। क्योंकि यह साथ रहकर अलग नहीं करता। इसे लक्षण भी नहीं कह सकते; क्योंकि लक्षण तो सदा-सर्वदा साथ ही रहता है तथा लक्ष्य के स्वरूप का बोधक होता है। इसे उपाधि भी नहीं कह सकते; क्योंकि उपाधि का साथ रहकर नहीं, पास में रहकर अलग करना नियम है। परंतु उपलक्षण में ऐसा कोई नियम नहीं। वह पास में रहे या न रहे। जैसे किसी ने पूछा—'राम का घर कौन-सा है?' उत्तर मिला जिस पर कौआ बैठा है वह राम का घर है। 'कौआ' शब्द ने दूसरे घरों से राम के घर को अलग कर दिया। यदि कौआ अब उड़ भी जाए तो भी पूछने वाला 'राम के घर' पहुँच जाएगा। 'कौआ' सदा साथ में नहीं रहता। अर्थात्—घर का असाधारण धर्म नहीं, अतः यह 'लक्षण' भी नहीं। यह साथ में रहकर भेदक=व्यावर्तक नहीं, अतः विशेषण भी नहीं। यह उपाधि की भाँति पास में भी नहीं रहता। अतः यह 'कौआ' शब्द घर का 'उपलक्षण' है। लक्षण स्वरूप का बोधक होता है। किंतु उपलक्षण स्वरूप का बोधक नहीं होता।

'प्रत्यक्ष' पद में का 'अक्ष' शब्द इन्द्रियों का वाचक है। इन्द्रियों के सम्मुख रहनेवाले पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है या वे पदार्थ प्रत्यक्ष कहे जाते हैं। आँख, कान, नाक, त्वचा, और जीभ पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं। इनसे प्रत्यक्ष

होता है। आँख से होने वाला चाक्षुष प्रत्यक्ष, कान से होनेवाला श्रावण प्रत्यक्ष, नाक से होनेवाला घ्राणज प्रत्यक्ष, त्वचा से होने वाला त्वाच प्रत्यक्ष तथा जीभ से होनेवाला रासन प्रत्यक्ष कहलाता है।

जब ये पदार्थ इन्द्रियों के सम्मुख न होकर इनसे ओझल रहते हैं तब ये 'परोक्ष' कहलाते हैं।

परंतु सुख-दुःख आदि को हम परोक्ष नहीं कह सकते। क्योंकि इनका अनुभव हो रहा है। इन्हें प्रत्यक्ष भी नहीं कह सकते; क्योंकि सुख-दुःख पाँचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं। सुख-दुःख को न देख सकते हैं, न सूँघ सकते हैं, न छू सकते है, न सुन सकते हैं एवं न चख ही सकते हैं। इसलिए सुख-दुःख आदि न परोक्ष हैं और न प्रत्यक्ष हैं, किन्तु 'अपरोक्ष' हैं।

[कुछ लोग 'अपरोक्ष' शब्द को 'प्रत्यक्ष' शब्द का पर्याय मानते हैं। क्योंकि वे वाचस्पति मिश्र के अनुयायी हैं। मिश्र जी 'मन' को इन्द्रिय मानते हैं।]

'मैं हूँ' जो आप बोल रहे हैं यह कौन-सा अनुभव है ? इसे प्रत्यक्ष नहीं कह सकते; क्योंकि यह किसी इन्द्रिय का विषय नहीं। इसे परोक्ष भी नहीं कह सकते; क्योंकि प्रतीत हो रहा है। इसे अपरोक्ष भी नहीं कह सकते; क्योंकि मेरे प्रकाश के बिना जड़ मन मुझे क्या प्रकाशित=बोधित करेगा। वेद भगवान् ने कहा—'साक्षात् अपरोक्षात् ब्रह्म'। 'मैं हूँ' यह अनुभव 'साक्षात् अपरोक्ष' कहलाता है। सुख-दुःख केवल अपरोक्ष मात्र हैं, साक्षात् अपरोक्ष नहीं और 'मैं' यह 'साक्षात् अपरोक्ष' है और यही 'ब्रह्म' है। वेद-व्यासजीने कहा कि सबसे गुप्त और सबसे बड़ी बात कहता हूँ सुनो—"गुह्यं ब्रह्म तदेतद् ब्रवीमि, न मानुषात् श्रेष्ठतरं किञ्चित्" मनुष्य से बढ़कर कुछ श्रेष्ठ नहीं। परंतु यह अनुभूति बिना साधना एवं सत्संग के कभी नहीं होती।

× × ×

लम्बाई—पूर्व से पश्चिम।

चौड़ाई—उत्तर से दक्षिण।

(पूर्व-पश्चिम दक्षिण-उत्तर लम्बाई चौड़ाई)

ऊँचाई—भूमि से आकाश की—ऊपर की ओर।

(गो) गुलाई—केन्द्र के चारो ओर समानान्तर रेखा।

× × ×

साहित्य दर्पण में से—

१—**निर्वेद**=तत्त्वज्ञान, विपत्ति, ईर्ष्या आदि के कारण अपने आपको धिक्कारना। इसमें हीनता, चिन्ता, आँसू, दीर्घश्वास, विवर्णता, उच्छ्वास आदि होते हैं।

२—**आवेग**=घबराहट। हर्ष से उत्पन्न घबराहट में शरीर संकुचित, उत्पात से जन्य घबराहट में शरीर ढीला, आग से जन्य धूएँ आदि से व्याकुलता, इष्ट से जन्य में हर्ष तथा अनिष्ट से जन्य में शोक होता है।

३—**दैन्य**=दुर्गति आदि से जन्य ओजस्विता का अभाव। इससे मलीनता आदि पैदा होते हैं।

४—**श्रम**=मार्ग चलने आदि से उत्पन्न खेद। इससे साँस फूलना, नींद आना आदि होते हैं।

५—**मद**=बेहोशी तथा आनन्द से मिश्रित अवस्था। जो मद्य आदि के सेवन से पैदा होती है। इसमें उत्तम पुरुष सो जाते हैं, मध्यम पुरुष हँसते और गाते हैं तथा नीच प्रकृति के लोग गाली-गलौज करते हैं।

६—**जड़ता**=इष्ट या अनिष्ट के दर्शन से या सुनने से उत्पन्न किंकर्तव्य विमूढ़ता का नाम है। इसमें टकटकी लगाकर देखते रहना, चुप हो जाना आदि होते हैं।

७—**उग्रता**=शूरवीरता एवं अपराध आदि से जन्य चण्डता। इसमे पसीना, सिर काँपना, तर्जन करना, ताड़न करना आदि होते हैं।

८—**मोह**=भय, दुःख, घबराहट, अतिचिन्ता आदि के कारण उत्पन्न चित्तव्याकुलता परेशानी। इसमें मूर्छा, अज्ञान, पतन, चक्कर आना दिखाई न देना आदि होते हैं।

९—**विबोध**=निद्राभंग करनेवाले कारणों से उत्पन्न चैतन्य लाभ का नाम विबोध है। इसमें जँभाई, अँगड़ाई, झपकी, निज अंग देखना आदि होते हैं।

१०—**स्वप्न**=नींद में डूबे पुरुष का वियषानुभव न करना स्वप्न कहलाता है। [बाह्य इन्द्रियों के अपने कारण में लीन हो जाने पर नई मानसिक सृष्टि रच लेना] इसमें क्रोध, आवेग, भय, ग्लानि, सुख-दुःख आदि होते हैं।

११—**अपस्मार**=भूत-आवेश आदि के कारण होनेवाले चित्तविक्षेप का नाम अपस्मार=(मिरगी) है। इसमें भूमि पर गिरना, काँपना, पसीना आना, मुँहमें से झाग और लार टपकना आदि होते हैं।

१२—**गर्व**=अपने प्रभाव, ऐश्वर्य, विद्या, कुलीनता आदि से उत्पन्न घमण्ड। इसमें दूसरे की अवज्ञा करना, आँख, अंगूठा आदि दिखाना, अविनीतपन करना आदि होते हैं।

१३—**मरन**=बाण आदि के लगने से प्राणों का वियोग हो जाना। इसमें शरीर गिर जाना आदि होते हैं।

१४—**आलस्य**=थकावट आदि से जन्य जड़ता। इसमें जँभाई, एक जगह बैठे रहना आदि होते हैं।

१५—**अमर्ष**=निन्दा, आक्षेप, अपमान, आदि से उत्पन्न चित्ताभिनिवेश का नाम है। इसमें आँख लाल, सिर काँपना, त्यौरी चढ़ना, डाँटना आदि होते हैं।

१६—**निद्रा**=परिश्रम, ग्लानि मद आदि से चित्त के सम्मीलन का (बाह्य इन्द्रियों से विषय अग्रहण का) नाम है। इसमें जँभाई, आँख मिचना, अँगड़ाई आदि होते हैं।

१७—**उत्सुकता**=इष्ट वस्तु की प्राप्ति में विलम्ब न सह सकने का नाम है। इसमें चित्तसन्ताप, शीघ्रता, पसीना आना, दीर्घ निश्वास आदि होते हैं।

१८—**उन्माद**=काम, शोक, भय आदि से उत्पन्न चित्तसम्मोह का नाम है। इसमें अकारण हँसना, रोना, गाना, प्रलाप आदि होते हैं।

१९—**शंका**=दूसरे की क्रूरता तथा अपने दोष आदि से अपने अनिष्ट की तर्कना का नाम है। इससे विवर्णता, कम्प, स्वरभंग, इधर-उधर ताकना, मुँह सूखना आदि होते हैं।

२०—**स्मृति**=समान वस्तु के देखने तथा चिन्तन आदि से पूर्व अनुभूत वस्तु के स्मरण का नाम है। इसमें भौंह चढ़ना आदि होते हैं।

२१—**मति**=नीति मार्ग का अनुसरण करने आदि से किसी बात की तह-तक पहुँच जाने का नाम है। इसमें मुस्कराहट, धीरता, सन्तोष, एवं आत्मा सम्मान होते हैं।

२२—**व्याधि**=बात, पित्त, कफ आदि से उत्पन्न ज्वर आदि का नाम है। इसमें धरती पर लोटने की इच्छा, कम्प आदि होते हैं।

२३—**त्रास**=बिजली की कड़क, बम्ब का धड़ाका, तारा टूटना आदि से होनेवाली चित्त की व्यग्रता का नाम है। इसमें कम्प, ठिठकना आदि होते हैं।

२४—**व्रीड़ा**=निम्न श्रेणी के आचार-व्यवहार से उत्पन्न होनेवाली धृष्ठता का अभाव। इसमें सिर नीचा होना आदि होते हैं।

२५—**हर्ष**=इष्ट वस्तु की प्राप्ति से होनेवाली मन की प्रसन्नता। इसमें आनंद के आँसू, गद्‌गदस्वर आदि होते हैं।

२६—**असूया**=औद्धत्य के कारण दूसरे की गुण-समृद्धि सहन न कर सकना। इसमें दोष कथन, नाक भौं सिकोड़ना, तिरस्कार, क्रोध, इशारा करना आदि होते हैं।

२७—**विषाद**=उपाय के अभाव से जन्य पुरुषार्थहीनता का नाम है। इसमें निःश्वास, उच्छ्वास मनस्ताप, सहायक ढूंढ़ना आदि होते हैं।

२८—**धृति**=तत्त्वज्ञान, इष्ट प्राप्ति आदि के कारण इच्छाओं की पूर्ति हो जाना। इसमें तृप्ति, आनन्दपूर्ण वचनावली, मधुर मुस्कान, बुद्धि विकास आदि होते हैं।

कालिदासने विकार के कारणों की उपस्थिति होने पर भी चित्त के अविकार का नाम 'धृति' कहा है। 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः'।

भागवत ने जीभ और जननेन्द्रिय पर विजय पाने को धृति कहा है

"जिह्वोपस्थजयो धृतिः"

२९—**चपलता**=मत्सर, द्वेष, आदि के कारण होनेवाली अवस्था का नाम 'चपलता' है। इसमें दूसरों को धमकाना, कठोर शब्द बोलना, उच्छृंखल आचरण करना आदि होते हैं।

३०—**ग्लानि**=परिश्रम, मनस्ताप, भूख-प्यास आदि से होनेवाली निर्बलता। इसमें कम्प, काम करने में अनुत्साह आदि होते हैं।

३१—**चिन्ता**=हितकारी वस्तु की अप्राप्ति से होनेवाला ध्यान। इसमें शून्यता, श्वास, ताप आदि होते हैं।

३२—**वितर्क**=सन्देह से होनेवाले विचार का नाम 'वितर्क' है। इसमें भ्रूभंग, सिर हिलाना, अंगुली उठाना आदि होते हैं।'

गीताकी मधुसूदनी टीका में से

१—**विषाद**=स्नेही बन्धुओं के विच्छेद की आशंका का कारण, शोक का दूसरा नाम। जो चित्त की व्याकुला है उसका नाम 'विषाद' है।

२—**प्रहास**=अनुचित आचरण प्रकाशित करके लज्जा पैदा कर देना 'प्रहास' कहलाता है।

३—**अभ्यास**=चारो ओर से चित्तको खींचकर एक ही विषय में बार-बार लगाने का नाम 'अभ्यास' है।

४—**हर्ष**=प्रिय वस्तु का लाभ होने पर जिससे रोमांच अश्रुपात आदि होते हैं ऐसे आनंद की अभिव्यञ्जक चित्तवृत्ति विशेष का नाम 'हर्ष' है।

[इष्ट वस्तु के दर्शन से प्रियता होती है, उसके मिलने से मोद होता है तथा उसके उपभोग से प्रमोद होता है।]

५—**अमर्ष**=दूसरे का उत्कर्ष सहन न कर सकने वाली चित्तवृत्ति 'अमर्ष' है।

६—**भय**=प्राण घातक के दर्शन के अधीन हुई चित्तवृत्ति का नाम 'भय' है।

७—**उद्वेग**='सब परिग्रहों से शून्य अकेला मैं इस निर्जन में कैसे जी सकूँगा' ऐसी व्याकुलतारूप चित्तवृत्ति 'उद्वेग' कहलाती है।

८—**निरपेक्ष**=भोगों के सब उपकरणों के स्वयं उपस्थित कर देने पर भी स्पृहा न होना निरपेक्षता है। जिसमें यह हो वह 'निरपेक्ष' है।

९—**शुचिता**=बाहर और अन्दर की पवित्रता।

१०—**दक्ष**=ज्ञातव्य और कर्तव्य के उपस्थित हो जाने पर जो झटपट जानने और करने में समर्थ हो वह।

११—**उदासीन**=जो किसी शत्रु एवं मित्र का पक्ष न ले वह तटस्थ।

१२—**क्षमावान्**=जो पीड़ा होने पर भी पीड़ा देनेवाले को पीड़ा न पहुंचाए वह। अर्थात् जैसे मुझे पीड़ा हो रही है ऐसे इसे पीड़ा न हो, यह विचारने वाला।

१३—**शरीर**=इन्द्रिय एवं अन्तःकरण सहित भोग का स्थान।

१४—**इच्छा**=सुख विषयक तथा उसके साधन विषयक 'ये मुझे मिल जाएँ' इस स्पृहारूप चित्तवृत्ति का नाम 'इच्छा' है।

१५—**द्वेष**=दुःख और उसके साधन विषयक 'ये मुझे न मिलें' इस स्पृहा विरोधी चित्तवृत्ति का नाम 'द्वेष' है।

१६—**मानिता**=अपने में वे गुण हों चाहे न हों, उन गुणों से अपनी श्लाघा करना।

१७—**दम्भ**=प्राप्ति, पूजा एवं प्रसिद्धि के लिए अपना धर्म प्रगट करना 'दम्भ है।

१८—**हिंसा**=मन, वाणी एवं काया से किसी प्राणी को पीड़ा पहुंचाना।

१९—**क्षान्ति**=चित्त को क्षुब्ध कर डालने वाले दूसरे के अपराध को निर्विकार चित्त से सह लेना।

२०—**स्थिरता**=अनेक प्रकार के विघ्नों के उपस्थित होने पर भी अंगीकृत कार्य को न छोड़कर बार बार उसमें और अधिक यत्न करना।

× × × ×

आराम = बगीचा, नगर के अन्दर लगाया हुआ।

उपवन = बगीचा; नगर के पास लगाया हुआ।

उद्यान = बगीचा, जहाँ पर चढ़कर पहुंचा जाता है।

श्रवण = युक्ति से—षड् विधलिंगों से किसी वाक्य के तात्पर्य का निश्चय करना श्रवण है।

मनन = उस निश्चित तात्पर्य की साधक एवं बाधक युक्तियों से-अनुमान आदि से उसीका चिन्तन करना मनन है।

निदिध्यासन = तद्भिन्नाकार वृ‍ि के व्यवधान से रहित तदाकार वृति की स्थिति ही निदिध्यासन है। निदिध्यासन की परिपक्व अवस्था का नाम ही 'समाधि' है।

पंजाबी लोग 'छे' और 'छी' बोलते हैं। 'छियालीस' 'छियासठ' 'छिहत्तर' 'छियासी' छियानवे' इसी 'छी' शब्द से बने हैं।

'छह' 'सोलह' 'छब्बीस' 'छप्पन' 'षष्-छह' शब्द के अपभ्रंश हैं।

इसी प्रकार दूसरे सभी शब्दों के विषय में भी अर्थ-चिन्तन कर लेना चाहिए।

ओं तत् सत्

———

परिशिष्ट

कहाँ कहाँ क्या

(क) भाग

पृष्ठ

१. मंगलाचरण।
२. श्रुति-महती संस्कृत...भाषा की श्रेष्ठता। ३
३. यम चार या बीस ? ५
४. 'पापेऽभिनिवेशः प्रयोग का समाधान। ५
५. 'सुभ्रु !' में प्रमाद। ६
६. 'पत्ये शेते' में कौन-सी चतुर्थी ? ६
७. 'वयं ब्रूमः' में किसका आदर ? ६
८. श्लोक में यथासंख्या का अभाव। ७
९. नीलोत्पला या नीलोपला ? ७
१०. प्रियाप्रियतम के नील-पीत वस्त्र क्यों ? ८
११. 'तरुणं सर्षप शाकं' श्लोक का कर्ता कोई पंजाबी। ९
१२. 'सुपर बाजार' किसी विशेष मस्तिष्क की देन। ११
१३. संस्कृत के विषय में गांधी तथा डा० रघुवीर, के विचार का उद्धरण। ११
१४. भगवान् गरुड़जी से बार बार कहते हैं। ११
१५. रेडियो से गलत प्रचार। १३
१६. उत्साहवर्धक सम्मतियां एवं पत्र। १३
१७. परिमाण वाचक शब्दों का परित्याग। १४
१८. स्वभाव की अपरिवर्तनीयता।
१९. 'जामाता' शब्द का अर्थ। १६
२०. 'नहीं है' या नहीं, ? १६
२१. 'गढ़ना' या घड़ना' ? १९
२२. 'चिढ़' या 'चिड़' ? १९
२३. 'टवर्ग' पहले या 'चवर्ग' ? २०
२४. 'मेजकी बाईं ओर या मेजके' ? २३ से ३२ तक
२५. 'और कोई' 'कोई और' 'और कुछ' 'कुछ और' में अर्थ भेद।

२६. 'दुपट्टा गले पर या गले में ?' २३
'अंगूठियाँ अंगुलियों पर या अंगुलियों में ?'
२७. 'छ' 'छ:' 'छे' या 'छह' ? २३
२८. 'मेरा जी चाहा या मेरे जी ने चाहा ?' २४
(ख) 'पूरब में या पूरब से ?'
(ग) 'तुम किस पर या काहे पर ?'
(घ) 'चिट्ठी लिखनी या चिट्ठी लिखना ?'
(च) 'कितनी दफे या कितनी दफा ?'
(छ) 'रिक्शा में या रिक्शे में ?'
(ज) 'सस्ता सिगरेट या सस्ती सिगरेट ?'
(झ) 'चिट्ठियाँ डाकघर में या डाकघर ?'
(ट) 'थैले स्टेशन या स्टेशन पर ?'
(ठ) 'मुझ जैसी, मेरी जैसी या मेरे जैसी ?'
(ड) 'क्रोध में भरकर, क्रोध में या क्रोध से ?'
(ढ) 'एक रुपए के या एक रुपए में ?'
(त) 'कौन-से होते हैं या कौन-से हैं ?'
(थ) 'किस या कौन-सी नदी के किनारे ?'
(द) 'जाने के लिए या जाने को ?'
२९. क्या हिन्दी किसी एक प्रान्त की भाषा है ? ३३
३१. राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में महापुरुषों के उद्‌गार। ३४
३१. भावात्मक एकता की जननी राष्ट्रभाषा। ३५
३२. हम अंग्रेजी पर मुग्ध हो गए। ३६
३३. द्विवेदी जी हिन्दी के 'आद्य आचार्य' ३७
३४. शिक्षा आयोग' का प्रतिवेदन। ३७
३५. बचपन के संस्कारों की प्रबलता। इसी आधार पर बाल-विवाह प्रचलित हुआ था। ३८
३६. वाजपेयी जी के साथ मेरा समान ख्यान। ४०
३७. 'उसको चार लड़के प्राप्त हुए' पर विचार। ४१
३८. 'राम को पढ़ना है' में कर्ता उपपद चतुर्थी विभक्ति है। उसका विशेष विवेचन। ४२
३९. 'को' प्रत्यय की प्रयोग भूमियाँ तथा निश्चित मत। ४३
४०. बच्चेवाली आदि तथा छोटे-छोटे आदि शब्दों के विषय में गलत धारणा। ४६
४१. 'है' सहायक क्रिया है या नहीं ? ४८

'है' केवल प्रत्यय ही है ? ४६
४२. 'लिखिए' आदि भाववाच्य क्रियाएँ हैं या नहीं ? ४६
४३. 'चाहिए' अव्यय है या भाववाच्य क्रिया या दोनों नहीं ? इस पर विशेष एवं विस्तृत विचार। ५१
४४. क्या 'बनाया' क्रिया भाववाच्य है ? इस पर विस्तृत एवं विशेष विचार। 'चाहिए' पर विशेष विचार। ५२
क्या 'बनाया' क्रिया भाववाक्य है ? ५६
४५. 'हो ओ' ठीक या 'हो' ५७
४६. 'सदाकाल' शब्द में पुनरुक्ति है या नहीं ? ५८
४७. 'अपढ़' या 'अनपढ़' ? ५८
४८. 'एक ही सा' या 'एक-सा ही' ? ५६
४६. 'दिया तले' या 'दिए तले' ? ६०
५०. 'के' 'रे' 'ने' क्या तद्धित प्रत्यय हैं ? ६०
५१. 'कश्यप और अदिति' या 'अदिति और कश्यप' ? ६२
५२. क्या 'भोजन करना' एक क्रिया है ? ६३
५३. 'चार घण्टों तक' या 'चार घण्टे तक' ? ६४
५४. क्या 'इच्छानुसार' अव्ययीभाव समास है ? ६४
५५. लिपि के विषय में उद्भट विद्वानों के विचार। ६६
५६. उच्चारण भेद तथा वर्तनीकी एकरूपता। ६६
५७. 'मानक हिन्दी व्याकरण पर एक दृष्टि' ७४
५८. 'को' विभक्ति की भिन्न भिन्न प्रयोग भूमियाँ सोदाहरण। ७६
५६. 'फिर' और 'फिर से' में अर्थभेद। ८४
६०. 'पढ़ता पढ़ता' तथा 'पढ़ते पढ़ते' में अन्तर। ८४
६१. 'बोलना लिखना' या 'लिखना बोलना' ? ८५
६२. 'मेरा' और 'अपना' की प्रयोग भूमि। ८५
६३. 'कलकत्ता' या 'कलकत्ते' ? ८६
६४. 'दिक् निर्देश' या 'दिशा निर्देश' ? 'कौए' का स्त्रीलिङ्ग 'कौई' नहीं बनता। ८७
६५. 'चिल्ल' शब्द का 'चिल्ला' नहीं बनता, किंतु 'चील बनेगा। ८८
६६. 'चक्कर' 'रस' क्या एक वचनान्त हैं ? ८८
६७. 'सन्तरा' 'सन्तरे' में वर्ण भेद या मात्रा भेद ? ८६
६८. 'हमको भी जीने का अधिकार है' में क्या सम्बन्ध में 'को' है ? ८६
६६. 'अपने पर विश्वास बैठाना चाहिए' पर विशेष वक्तव्य। ६०
७०. 'नहीं है' 'है नहीं' पर विशेष वक्तव्य। ६१

७१. 'इन्द्रियें' या 'इन्द्रियां' ? ९२
७२. 'बड़ा' शब्द पर विशेष वक्तव्य। ९२
७३. 'ध्वनि के साथ' या 'ध्वनिपूर्वक' ? 'हट गया' या 'उठ गया' ? ९३
७४. 'चार बजकर दस मिनट हुए हैं' आदि उदाहरणों पर विचार ९३
७५. 'दोनों भाई' या 'दोनो भाई' ? ९३
७६. वाक्य में 'आदि' शब्द से पहले 'और' शब्द रखना गलत है। ९४
७७. 'मैंने ग्रन्थ पढ़ा' 'मैं ग्रन्थ पढ़ चुका' पर विशेष वक्तव्य। ९६
७८. 'सहित' शब्द 'साथ' शब्द का पर्याय नहीं। ९६
७९. 'बैन' शब्द कैसे बना ? ९७
८०. 'तुम्हें करने हैं' 'तुम्हारे करने के हैं' का समाधान। ९७
८१. 'जिन्हें हमें' भ्रामक है।
८२. 'गँठ बंधन' या 'गठ बंधन' 'पँचमेल' या 'पचमेल' ? ९७
८३. 'रामको ज्वर है' में क्या 'है' सकर्मक है ? ९८
८४. 'मैंने हँस दिया' या 'मैं हँस दिया' ? विषयक विशेष वक्तव्य। ९८
८५. 'मेरा किया हुआ सम्मान' और 'मेरे द्वारा किया हुआ सम्मान में अर्थ भेद। ९९
८६. 'कण्ठ कर लिया या कण्ठस्थ कर लिया ?' १००

(ख) भाग

८७. हिन्दी शब्द विभाग। १०४
८८. 'बड़ा' शब्द की प्रयोग भूमि। १०६
८९. लिये या लिए ? १०८
९०. व्याकरण की उपयोगिता। ११०
९१. 'आपके इच्छानुसार' या 'आपकी इच्छानुसार' ? ११२
९२. 'हमने खाना है' यह पंजाबी ढंग नहीं। ११३
९३. पुनः शब्दों के तीन भेद-रूढ़, यौगिक और योगरूढ़। ११७
९४. मंगल भाषित। ११९
९५. उच्चारण भेद से अर्थ भेद। १२१
९६. विराम चिह्नों का महत्त्व। १२२
९७. कुछ शब्दों के अर्थों की भिन्नता। १२४
९८. अशुद्ध शब्दों के कुछ उदाहरण। १२७
९९. शब्दों के लिंग विषयक विचार। १२८
१००. कारक—सोदाहरण विभक्तियाँ। १३२
१०१. अव्यय। केवल, मात्र, भर, और भी। १४२

१०२. विशेषण और उस पर वक्तव्य । १४५
१०३. अनुपयुक्त विशेषणों के कुछ उदाहरण । १४७
१०४. कुछ अशुद्ध रूप । १४६
१०५. क्रियाओं के अर्थ और भेद । १५१
१०६. वाक्य लक्षण तथा वाक्यों के भेद । १५६
१०७. वाक्य में क्रिया कर्म का आदि का क्रम निर्धारण । १५८
१०८. वाक्यों में होनेवाली व्याकरण सम्बन्धी भूलें । १५६
१०६. स्वभावोक्ति स्वयं अलंकार है । १६२
११०. भ्रांति के चार उदाहरण । १६३
१११. दोष का लक्षण और दोषों के बारह भेदों के उदाहरण । १६६
११२. एक चुस्त भाषा का ढीलापन । १७५
११३. अंग्रेजी का अन्धानुकरण, डा० कपूरजी का लेख । १७६
२१४. ज्ञान की पवित्रता और शब्द का महत्त्व । १८६
११५. 'सलोना' शब्द का भावार्थ । १८८
११६. सत्या की सहृदयता । १८६
११७. गोस्वामी तुलसीदासजी की पाँच क्रान्तियाँ तथा आद्यानुप्रास के उदाहरण । १६०
११८. कुछ शब्दों के पारिभाषिक अर्थ । अर्थात्—विशेषण, लक्षण, उपाधि, उपलक्षण, प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, साक्षात् अपरोक्ष, लम्बाई, चौड़ाई उँचाई, और गुलाई । १६१
११६. निर्वेद आदि ३२ व्यभिचारीयों भावों के लक्षण । १६४
१२०. गीता की मधुसूदनी टीका में से विषाद, प्रहास, अभ्यास, हर्ष अमर्ष, भय, उद्वेग, निरपेक्ष, शुचिता, दक्ष, उदासीन, क्षमावान्, शरीर, इच्छा, द्वेष, मानिता, दम्भ, हिंसा, क्षान्ति तथा स्थिरता के लक्षण । १६७
१२१. आराम, उपवन, उद्यान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अर्थ तथा पंजाबी का संख्यावाचक 'छे' और 'छी' । १६६

---

२०० + २४ = २२४

राष्ट्रभाषा
का
शुद्ध रूप

राष्ट्रभाषा-पतंजलि
निगमानन्द परमहंस

प्रकाशक
शब्दलोक प्रकाशन
४७ लाजपत नगर
वाराणसी–२